BHIC-131

भारत का इतिहासः प्राचीनतम काल से लगभग 300 सी.ई. तक

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. मक्खन लाल
संस्थापक, निदेशक एवं प्राध्यापक
दिल्ली का विरासत अनुसंधान और प्रबंधन संस्थान
नई दिल्ली

डॉ. संगीता पांडे
इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. पी.के. बसंत
इतिहास और संस्कृति विभाग
मानविकी एवं भाषा विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

प्रो. डी. गोपाल
निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. कपिल कुमार (संयोजक)
अध्यक्ष, इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समंवयक : प्रो. नंदिनी सिंहा कपूर

पाठ्यक्रम संयोजन दल

प्रो. नंदिनी सिंहा कपूर **डॉ. अभिषेक आनंद** **डॉ. शुचि दयाल**

पाठ्यक्रम निर्माण दल

इकाई सं.	पाठ्यक्रम लेखक
1	डॉ. शुचि दयाल सलाहकार, इतिहास विभाग सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली डॉ. मिलिसा श्रीवास्तव सलाहकार पर्यटन, आतिथ्य एवं सेवा प्रबंधन विद्यापीठ इग्नू, नई दिल्ली
2	डॉ. दीपक के. नायर सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग एस.जी.एन.डी. खालसा कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
3, 4*	प्रो. बी.पी. साहू इतिहास विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली डॉ. मृत्युंज्य कुमार इतिहास विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली (स्व.) प्रो. एम.डी.एन. साही इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
5, 6**	प्रो. पी.के. बसंत इतिहास और संस्कृति विभाग मानविकी एवं भाषा संकाय जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
7,8,9***	प्रो. कुमकुम रॉय इतिहास अध्ययन केंद्र सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

इकाई सं.	पाठ्यक्रम लेखक
	(स्व.) प्रो. एम.एल.के. मूर्ती क्षेत्रीय अध्ययन केंद्र के पूर्व प्रमुख हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद डॉ. सुदेशना गुहा, इतिहास विभाग मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग शिव नादर विश्वविद्यालय गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
10,11****	प्रो. पी.के. बसंत, इतिहास और संस्कृति विभाग मानविकी एवं भाषा विभाग जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली प्रो. कुमकुम रॉय, इतिहास अध्ययन केंद्र सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली डॉ. टी.एन.राय प्राचीन इतिहास व पुरातत्व विभाग बनारस हिंदु विश्वविद्यालय, वाराणसी प्रो. पी. शनमुगम ओशियन इंजीनियरिंग विभाग, आई.आई.टी., चैन्नई
12	डॉ. शुचि दयाल सलाहकार, इतिहास विभाग सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली
13*****	प्रो. अजय दांडेकर, इतिहास विभाग निदेशक (मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ) शिव नादर विश्वविद्यालय गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश प्रो. अलोका पराशर सेन इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

इकाई सं.	पाठ्यक्रम लेखक	इकाई सं.	पाठ्यक्रम लेखक
14	डॉ. कविता गौर सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	15,16,17 ******	प्रो. राजन गुरूकुल, प्राध्यापक एवं निदेशक सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ महात्मा गांधी विश्वविद्यालय कोट्टयम, केरल प्रो. एच.पी. रे (सेवानिवृत्त) इतिहास अध्ययन केंद्र सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ जवाहरलाल नेहरू, नई दिल्ली प्रो. राघव वर्रियर इतिहास विभाग, कलीकट विश्वविद्यालय केरल

* ये इकाइयाँ **ई.एच.आई.-02 भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खंड 1 : पर्यावरण और अनुकूलन का आरंभिक स्वरूप** से ग्रहित की गई हैं।

** ये इकाइयाँ **ई.एच.आई.-02 भारत : प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खंड 2 : हड़प्पा सभ्यता** से ग्रहित की गई हैं।

*** ये इकाइयाँ **ई.एच.आई.-02 भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खंड 3 : प्राचीन भारतीय समाज का विकास : 2000 से 1000 ई.पू.** से ग्रहित की गई हैं।

**** ये इकाइयाँ **ई.एच.आई.-02 भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खंड 4 : भारत : छठी से चौथी शताब्दी ई.पू. तक** से ग्रहित की गई हैं।

***** ये इकाइयाँ **ई.एच.आई.-02 भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खंड 5 : राज्यतंत्र, समाज और अर्थव्यवस्था : 320 से 200 ई.पू. तक** से ग्रहित की गई हैं।

****** ये इकाइयाँ **ई.एच.आई.-02 भारतः प्राचीन काल से 8वीं सदी ईसवी, खंड 7 : दक्षिण भारत में राज्य एवं समाज 200 ई.पू. से 300 ई. तक** से ग्रहित की गई हैं।

सामग्री प्ररूप और भाषा संपादन : प्रो. नंदिनी सिंहा कपूर एवं डॉ. अभिषेक आनंद

अनुवाद
डॉ. मीनाक्षी
श्रीमती हेमलता
डॉ. अभिषेक आनंद

ग्राफिक्स
डॉ. शुचि दयाल

कवर डिज़ाइन
श्री संदीप मैनी
डॉ. अभिषेक आनंद
डॉ. शुचि दयाल
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पुनरीक्षण (Vetting)
डॉ. अभिषेक आनंद
डॉ. शुचि दयाल
प्रो. श्री कृष्णा

मुद्रण प्रस्तुति

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन), इग्नू, नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन), इग्नू, नई दिल्ली

अक्तूबर, 2019

ISBN : 978-93-89668-29-2

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी नई दिल्ली-110068 से अथवा इग्नू की आधिकारिक वेबसाइट www.ignou.ac.in से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

लेजर टाइप सेट- ग्राफिक प्रिंटर्स, मयूर विहार फेस 1, दिल्ली - 110091

मुद्रकः नोवा पब्लिकेशन एवं प्रिंटर्स (प्राइवेट) लिमिटेड, फरीदाबाद–121004, दूरभाष 0129–4317645

पाठ्य विवरण

पाठ्यक्रम परिचय

इतिहास का विषय आज एक परिवर्तित क्षेत्र है। इतिहासकार राजाओं, उनके राज्यों और उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियों के बारे में अध्ययन तथा लेखन से आगे बढ़ गए हैं। वे जाँच और अन्वेषण के नए क्षेत्रों की ओर बढ़ रहे हैं तथा समाज के विभिन्न पहलुओं और आयामों से संबंधित प्रश्न उठा रहे हैं, जैसे कि समाज कैसे विकसित हुआ और उसमें होने वाले परिवर्तन क्या थे? पिछले तीन दशकों में बड़ी मात्रा में नए तथ्य उजागर हुए हैं जिससे कई मामलों में नए विवेचन एवं दृष्टिकोण सामने आए हैं। वर्तमान पाठ्यक्रम **बी.एच.आई.सी.-131 : भारत का इतिहास : प्राचीनतम काल से लगभग 300 सी.ई. तक** में पहले के मान्य/वैध तर्कों को बरकरार रखते हुए ऐसे नए पहलुओं को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। इस पाठ्यक्रम का कालानुक्रमिक समय गुप्तकाल से पहले समाप्त हो जाता है।

अतीत की वैकल्पिक व्याख्याएँ हो सकती हैं। इतिहासकारों का यह कर्त्तव्य है कि वे इस बात को विनम्रता के साथ पहचानें कि जो सूचना पीढ़ी-दर-पीढ़ी सौंपी गई है वह स्थिर नहीं है। उन्हें ऐतिहासिक स्थितियों की व्याख्या करने में सक्षम होना चाहिए और ऐसे स्पष्टीकरण साक्ष्य एवं तर्क पर आधारित होने चाहिए। अतीत की अधिक सूक्ष्म समझ के लिए पुरातत्व जैसे साक्ष्य के नए स्रोतों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको उन चरणों से अवगत कराना है जिनके अंतर्गत भारत के इतिहास का प्राचीनतम् काल से लेकर लगभग 300 सी.ई. तक का खुलासा हुआ है। यह न केवल मौजूदा साक्ष्यों को देखने के नए तरीकों से छात्र/छात्राओं को परिचित कराता है बल्कि अतीत की मानवीय गतिविधियों और उनके अंतर्संबंधों को भी समझाने का प्रयास करता है। इस प्रकार, समाज अर्थव्यवस्था, राजनीति, धर्म, प्रौद्योगिकी आदि में प्राचीनतम् काल से लेकर लगभग 300 सी.ई. तक में होने वाले बदलाव इस पाठ्यक्रम के केंद्रबिंदु हैं।

पाठ्यक्रम **17 इकाइयों** में विभाजित है। प्रत्येक इकाई की विषयवस्तु एक प्रमुख विषय, प्रकरण या विकास की चर्चा करता है जिसे उपरोक्त अवधि के दौरान महत्वपूर्ण माना गया है। इस पाठ्यक्रम में एक चरण से दूसरे चरण में संक्रमण के दौरान विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं की विशिष्टताओं, क्षेत्रीय प्रतिरूपों के उद्भव आदि पर ज़ोर दिया गया है।

इकाई 1 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों से संबंधित है, क्योंकि यह जानने से पहले कि अतीत में क्या हुआ था उन स्रोतों के बारे में जानना अनिवार्य है जिनके आधार पर हम अपने अतीत का ''पुनर्निर्माण'' करते हैं। पुरातत्व एक महत्वपूर्ण स्रोत है, विशेष रूप से उस अवधि के लिए जिसके लिए कोई लिखित दस्तावेज़ नहीं हैं। कभी-कभी इसका उद्देश्य लिखित प्रमाणों की पुष्टि करता होता है परन्तु जहाँ यह लिखित प्रमाणों को परिपुष्ट नहीं करता वहाँ यह एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह तर्क भी दिया जाता है कि शिलालेख और साहित्यिक ग्रंथ अधिकतर अभिजात वर्ग जैसे राजाओं, ब्राह्मणों, दरबारी-कवियों आदि की आवाज़ का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए कभी-कभी पुरातात्विक स्रोतों को अधिक विश्वसनीय तथा प्रामाणिक माना जाता है क्योंकि वे सामान्य जन की भावनाओं और विचारों को आवाज़ दे सकते हैं कि उन लोगों ने क्या देखा, महसूस किया और जीया। एक इतिहासकार की व्याख्याओं की सहायता से पुरातात्विक और साहित्यिक साक्ष्यों की प्रकृति से उत्पन्न जटिलताओं से निपटना संभव हो जाता है। दोनों की यथातथ्य और त्रुटिहीन संपुष्टि संभव नहीं है क्योंकि पुरातात्विक साक्ष्य मूलतः मनुष्यों द्वारा छोड़ी गई सामग्री के रूप में कलाकृतियों/शिल्पकृतियों द्वारा गठित हैं जबकि पाठ्य आलेख अधिक अमूर्त हैं।

इकाई 2 एक स्रोत के रूप में पुरातत्व की प्रकृति, खुदाई और समन्वेषण के परिष्कृत तरीकों की चर्चा के साथ-साथ इस बात पर भी प्रकाश डालती है कि कैसे वैज्ञानिक विषयों की

तकनीकों का उपयोग पुरातात्विक आधार-सामग्री के विश्लेषण में किया जा रहा है। ये तकनीकें हमें पुरातात्विक साक्ष्य को दिनांकित करने के अलावा अतीत के मानव व्यवहार, बस्तियों, उत्पादन प्रक्रियाओं और प्राचीन प्रौद्योगिकियों, व्यापार और विनिमय, जीविका और आहार तथा सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति, धर्म तथा धार्मिक अनुष्ठानों, पद्धतियों आदि को समझने में सक्षम बनाती हैं। पुरातात्विक स्थल कैसे बनते हैं, क्षेत्र कार्य (field work) और दत्त-सामग्री संग्रहण (Data Collection) के तरीकों के साथ-साथ इस पाठ्यक्रम के द्वारा निरूपित अवधि के दौरान महत्वपूर्ण माने जाने वाले भारतीय उपमहाद्वीप के प्रमुख उत्खनन स्थलों के विवरण और व्याख्या जैसे मुद्दों पर भी चर्चा की गई है।

भूगोल और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं तथा घटनाक्रमों पर इसके प्रभाव को **इकाई 3** में समझाया गया है, क्योंकि किसी भी देश के इतिहास के अध्ययन के लिए उसकी भौतिक विशेषताओं की समझ और इस बात को जानना कि ये मानव संस्कृतियों और सभ्यताओं की उत्पत्ति और विकास को कैसे निर्धारित एवं प्रभावित करती है, परम आवश्यक है। अधिवास के प्रतिरूप (Settlement patterns), जनसंख्या घनत्व और व्यापार, क्षेत्रों के निर्माण आदि मापदंडों को उचित महत्व दिया है। पर्यावरणीय परिस्थितियाँ बदलती हैं और ऐसे परिवर्तन इतिहास के क्रमागत विकास को कैसे प्रभावित करते हैं यह अध्ययन का एक उपयुक्त विषय है। वृहत् क्षेत्रों के बीच और उनके भीतर विकास के असमान प्रतिमानों को संसाधन क्षमता की उपलब्धता या गेर-उपलब्धता तथा मानव और तकनीकी हस्तक्षेप के स्वरूप और प्रभाव के आधार पर समझा जा सकता है।

इकाई 4 के साथ हम पूर्व-ऐतिहासिक शिकारी-संग्रहकर्त्ताओं की शुरुआत के रूप में भारतीय इतिहास के आरंभ का वर्णन करना शुरू करते हैं। आपको उनके इतिहास के पुनर्निर्माण के विभिन्न तरीकों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। उनके जीवन निर्वाह के प्रतिरूपों, उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए उपकरणों, गुफ़ा-चित्रों के माध्यम से उजागर उनकी कला आदि जो उनके जीवन के कई पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं, को भी इस इकाई में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह इकाई कृषि के आगमन और फसलों की खेती, पशु-पालन की शुरुआत, ग्रामीण बस्तियों के आरंभ, धातुओं के निर्माण तथा नए प्रकार के उपकरणों के विनिर्माण, मिट्टी के बर्तनों के उपयोग आदि से भी संबंधित हैं।

इकाई 5 और **6** हड़प्पा सभ्यता के विस्तृत अध्ययन की पेशकश करती हैं। इसकी खोज, कालक्रम, भौगोलिक विस्तार एवं अधिवास के प्रतिरूपों (Settlement patterns) के जलवायु संबंधी पहलुओं, प्रसार और विघटन, मुख्य स्थल और भौतिक अवशेषों के रूप में उनकी विशेषताओं, इन स्थलों के भौतिक लक्षणों में एकरूपताओं, बाहरी दुनिया के साथ संपर्क की प्रकृति, व्यापार और विनिमय तंत्र, समाज तथा जीवन-यापन से संबंधित विशेषताओं, मुख्य व्यवसायों, शासक वर्गों की प्रकृति, वेशभूषा एवं खानपान संबंधी प्रतिरूपों, लिपि और भाषा, धार्मिक प्रथाओं, दफ़नाने के तरीकों, इसके पतन को समझाने में विद्वानों के सामने आने वाली समस्याओं और पतन के कारणों को स्पष्ट करने हेतु उनके द्वारा प्रतिपादित सैद्धांतिक विचारों का विवरण इन दो इकाइयों में किया गया है। यद्यपि कई छात्र इस सभ्यता से परिचित हैं, हमने इस बात पर ज़ोर दिया है कि इसकी कला और वास्तुविद्या, जल निकास प्रणाली, प्रारंभिक हड़प्पा से परिपक्व हड़प्पा तक संक्रमण, पतन के पश्चात भी इसके अस्तित्व और निरंतरता के प्रमाण आदि को देखते हुए यह सभ्यता भारतीय इतिहास की दृष्टि से कितनी महत्वपूर्ण थी।

इकाई 7 ताम्र पाषाण और लौह युग की संस्कृतियों की चर्चा करती है। इसमें हड़प्पा काल के बाद की मिट्टी के बर्तनों को बनाने वाली संस्कृतियों, जिन्हें पूर्व-लौह संस्कृतियों (जैसे

गेरुए चित्रित मद्भाण्ड संस्कृति) तथा लौह युगीन संस्कृतियों (जैसे चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति एवं उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्भाण्ड संस्कृति) के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, कि व्याख्या की गई है। लौह धातु ने चित्रित धूसर मृद्भाण्ड चरण में प्रवेश किया और बाद में यह उत्तर भारत के छठी शताब्दी संबद्ध शहरी चरण के साथ जुड़ा। यह इकाई दक्षिण भारत में प्रारंभिक कृषक समुदायों और महापाषाण संस्कृति के विशेष संदर्भ में उत्तरवर्ती लौह युग के विभिन्न पहलुओं की विवेचना भी करती है। कुछ ताम्र पाषाण कालीन बस्तियों को रेखांकित करने वाले स्थानीयता और क्षेत्र के परस्पर संबंध अनुवर्ती ऐतिहासिक परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण विशेषता बन जाते हैं।

इकाइयाँ 8 और 9 वैदिक युग पर प्रकाश डालती हैं। भारतीय इतिहास में पहली बार वैदिक ग्रंथकोष के रूप में हमें लिखित साक्ष्य मिलते हैं जिनका अध्ययन वैदिक काल के राजनैतिक तंत्र, अर्थव्यवस्था, समाज, धर्म आदि पर महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था मुख्यतः पशु-पालन से संबंधित थी तथा कृषि गौण महत्व रखती थी। समाज आदिवासी और मूल रूप से समतावादी था। कबीले और नातेदारी पर आधारित संबंध इसकी बुनियाद थे। हमें यह याद रखना चाहिए कि लगभग 1500-1000 बी.सी.ई. के दौरान समाज निरंतर विकसित हो रहा था तथा आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र में नवीन तत्व इसकी संरचना को बदलने का कार्य कर रहे थे।

उत्तर-वैदिक काल में जो परिवर्तन हुए वे राजा की बदलती स्थिति, स्पष्ट परिभाषित राजनीतिक एकांगों के उदय, समाज के स्तरीकरण, नई धार्मिक प्रवृत्तियों आदि में देखे जा सकते हैं। मध्य-सहस्राब्दि बी.सी.ई. का समाज *ऋग्वेद* में प्रमाणित एक पशु-पालक खानाबदोश जीवन शैली से एक बसे हुए स्थिर कृषक समाज के रूप में परिवर्तित हो रहा था परंतु लौह धातु का कृषि में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाना बाकी था। इस अवधि की एक समग्र/संपूर्ण तस्वीर प्राप्त करने के लिए साहित्यिक तथा पुरातात्विक, दोनों प्रकार के स्रोतों का एक साथ विवेचन करना अनिवार्य है।

छठी शताब्दी बी.सी.ई. **इकाई 10** की विषयवस्तु है जिसके दौरान भारतीय इतिहास में पहली बार उत्तर भारत में राज्यों, कुलीनतंत्रों और मुखियातंत्रों की स्थापना की ओर होते बदलावों को देखा गया। राजनीति में परिवर्तनों के साथ-साथ शहरीकरण हुआ और राज्यों के गठन के रूप में एक स्पष्ट संक्रमण दृष्टिगोचर हुआ। *महाजनपद* जो ऐसे क्षेत्रों के रूप में सामने आए जहाँ नए प्रकार के सामाजिक-राजनीतिक विकास हो रहे थे, वे अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्र में स्थित थे। उनमें से कई मध्य गंगा घाटी में स्थित थे जो चावल उगाने वाला क्षेत्र था। चावल का उत्पादन गेंहू के उत्पादन से अधिक होता था जिस वजह से जनसंख्या का अधिक घनत्व संभव था। मगध और *महाजनपद* के लिए धातु अयस्कों जैसे महत्वपूर्ण संसाधन आसानी से उपलब्ध थे जिसके कारण राजनीतिक-आर्थिक शक्ति के केंद्र के रूप में मध्य-गंगा घाटी का उद्भव हुआ। कि इस भौगोलिक क्षेत्र में इतने सारे *महाजनपद* एक दूसरे के संस्पर्शी थे इस बात का सूचक है कि एक महत्वाकांक्षी अधिनायक समृद्ध पड़ोसी भूखण्डों पर विजय प्राप्त कर सकता था, उन पर नियंत्रण रख सकता था और अपनी सत्ता को सुदृढ़ बना सकता था। अतएव, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उत्तरगामी समय में मगध सबसे शक्तिशाली राजतंत्र के रूप में उभरा।

इकाई 11 लगभग छठी शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान उत्तर भारत में नए धार्मिक विचारों की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि प्रदान करती है। स्थापित ब्राह्मणवादी रूढ़िवादिता तथा उससे उत्पन्न समाजिक अशांति के बीच परस्पर विरोध तीव्र हो गया जिसने बौद्ध धर्म, जैन धर्म, *आजीविका* संप्रदाय आदि जैसे वैकल्पिक धार्मिक आंदोलनों/प्रणालियों को जन्म दिया। इन नवीन धार्मिक अवधारणाओं ने मौजूदा वैदिक धर्म को सीधी चुनौती दी। इकाई उनके महत्व तथा

समकालीन समाज पर उनके प्रभाव को भी रेखांकित करती है। इन विधर्मिक विचारधाराओं ने लोगों की अभिवृत्ति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया तथा लोग अब ब्राह्मणवादी धर्म के सदियों पुराने वर्चस्व पर सवाल उठाने लगे।

इसी दौरान भारतीय इतिहास में बहुत पहले से आक्रमणकारियों का ध्यान आकर्षित करने वाला भारतीय उपमहाद्वीप का उत्तर-पश्चिमी भाग आकेमेनिड आरोहण का गवाह बना। आकेमेनिड प्रभुता 300 बी.सी.ई में मैसेडोन के सिकंदर द्वारा प्राप्त विजय के साथ समाप्त हुई। 327 बी.सी.ई. में भारत पर उसका आक्रमण एक महत्वपूर्ण चरण को दर्शाता है जिसके दौरान उत्तर-पश्चिमी भारत यूनानी प्रभाव का साक्षी बना। यही **इकाई 12** की विषयवस्तु है। इसमें आप जानेंगे कि एरियन के वश्तांत सिकंदर के अभियानों के मुख्य स्रोत हैं। उसने अपनी कृति *इंडिके* में भारत से संबंधित कुछ तथ्यात्मक और कुछ काल्पनिक सूचना का विवरण दिया है जो अन्य यात्रियों के वृत्तांतों पर आधारित है।

इकाइयाँ 13 और **14** मौर्यों के शासनकाल की व्याख्या करती हैं जो प्रारंभिक भारतीय इतिहास में मील का पत्थर साबित हुए। हम मगध राजतंत्र के भूखंडीय विस्तार की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं जो इस विषय की समझ प्रदान करेगी कि मगध के लिए ''साम्राज्य'' बनना कैसे और क्यों संभव था? तत्पश्चात् मौर्यों के मूल और वंशवादी इतिहास की चर्चा की गई है। राज्य के घटक, विशाल प्रशासनिक तंत्र और इसके विस्तृत ढाँचे के विभिन्न स्तरों की विवेचना की गई है। मौर्य राज्य की प्रकृति को समझने के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोतों को सहसम्बद्ध किया गया है। *अर्थशास्त्र* शासन से संबंधित आवश्यक मुद्दों को रेखांकित करता है, अशोक के शिलालेख इस महान सम्राट की शाही उद्घोषणाओं को उजागर करते हैं तथा मेगस्थनीज़ का वृत्तांत चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकालीन राज्य तथा समाज संबंधी कार्यप्रणालियों को दर्शाता है। पहले की अवधि की सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाएँ मौर्यकाल में जारी रहीं और विस्तारित हुईं। विशाल विषमरूप सम्राज्य को एक सूत्र में पिरोने तथा उसे संघटित करने के लिए तैयार की गई शाही नीतियों का ब्यौरा भी दिया गया है। नंद वंश की समाप्ति पर सिंहासन पर बैठने वाले चंद्रगुप्त मौर्य ने प्रथम भारतीय साम्रज्य की स्थापना की जिसने एक नए युग का आगाज़ किया। अशोक और उनकी *धम्म* नीति, उनके अभिलेख, उनकी कल्याणकारी विचार-पद्धति, उनकी राजधिराज-संबंधी सिद्धांत इस काल की पहचान बन गए। **इकाई 14** में विभिन्न प्रकार की रियासतों जैसे कि शुंग और कान्व, इंडो-ग्रीक, शक और पहलव तथा उत्तर-पश्चिम और उत्तर में कुषाणों के उद्भव पर भी प्रकाश डाला गया है। सिंधु और गंगा नदियों के बीच के मैदानी क्षेत्र में यौधेय तथा अर्जुनयान जैसे आदिवासी राजव्यवस्थाओं, प्राचीन ओडिशा तथा सतवाहन काल में दक्कन में राज्य गठन की प्रक्रिया एवं विविध और राजव्यवस्थाओं के काल के रूप में चित्रित की जा सकने वाले उत्तर मौर्य कालावधि की अर्थव्यवस्था एवं समाज का निरूपण भी किया गया है।

सतवाहन वंश का उदय जिसने दक्कन में सबसे पहले राज्य की स्थापना की तथा दक्षिण भारत *(तमिलहम/तमिलकम्)* के राज्य गठन **इकाई 15** का विषय है। *तमिलहम्* विभिन्न पर्यावरणीय क्षेत्रों (*तिनइ*) के द्वारा संगठित था। आप उन भौगोलिक क्षेत्रों के जीवन निर्वाह प्रतिमानों, राजनीतिक प्राधिकरण का कुल एवं रक्त-संबंधी आधार, राजनीतिक नियंत्रण के विविध स्तरों और मुखियावाद जैसे राजनैतिक गठन के विभिन्न विवरणों के बारे में जान पाएँगे। भूगर्भीय तथा समुद्री व्यापार तंत्र के विस्तार ने शासकों को अतिरिक्त राजस्व प्रदान किया और इस अवधि में संपूर्ण दक्कन में बड़ी संख्या में कस्बों और शहरों में आई सम्पन्नता का कारण बना। इसके बाद **इकाई 16** में दक्कन और दक्षिण भारत में लगभग 200 बी.सी.ई. से 300 बी.सी.ई. तक कृषक बस्तियों के प्रसार की चर्चा है। यह इकाई दक्षिण भारत के पृथक हिस्सों में प्रचलित जीवन यापन के भिन्न रूपों, भूस्वामित्व की प्रवृत्ति, कृषि से प्राप्त राजस्व एवं कृषक बस्तियों में संसाधनों के पुनर्वितरण, कृषक समाज के संगठन, नए तत्वों की

शुरुआत और परिवर्तन के आरंभ को भी वर्णित करती है। इस इकाई का उद्देश्य उपरोक्त समय के दौरान व्यापार और शहरी केंद्रों के विस्तार के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डालना भी है जो विनिमय की प्रकृति पर विशेष ज़ोर देते हैं जिसने प्रारंभिक प्रायद्वीपीय और दक्षिण भारत में कई स्तरों पर व्यापार के चरित्र को निर्धारित किया। यह इकाई सातवाहनों के साथ-साथ सुदूर दक्षिण में चेरों, चोलों और पांड्यों के राज्यों तथा कम महत्वपूर्ण नायकों/कबीले के सरदारों की राजव्यवस्थाओं पर भी केंद्रित है।

अंतिम इकाई **इकाई 17** को पढ़ने के बाद आपको तमिल भाषा एवं साहित्य की प्राचीनता, तमिल वीर कविताओं और उनकी प्रमुख विशेषताओं, उनकी रचना की तकनीकों, उनके वर्गीकरण एवं संकलनों के रूप में उनके संहिताकरण, उनके तिथि-निर्धारण की समस्याओं, उनके साहित्यिक गुणत्व तथा *संगम* कालावधि कहे जाने वाले लगभग दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. से तीसरी शताब्दी सी.ई. तक के समय की अन्य रचनाओं के बारे में पता चलेगा। एक और बिन्दु जिससे आप परिचित होंगे वह शास्त्रीय (Classical) तमिल के साहित्यिक एवं भाषाई विकास का स्तर है।

इकाई 1 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न को समझ सकेंगे:

- प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु विभिन्न प्रकार के स्रोत;
- साहित्यिक स्रोतों के उपयोग से जुड़ी समस्याएँ;
- प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों के बीच अंतर;
- विभिन्न प्रकार के धार्मिक और गैर-धार्मिक ग्रंथ और एक इतिहासकार के लिए उनकी उपयोगिता;
- भारतीय संदर्भ में पुरातात्विक स्रोत साहित्यिक स्रोतों से अधिक विश्वसनीय क्यों हैं?; और
- प्रारंभिक भारत में ऐतिहासिक चेतना और भारतीयों में इतिहास की भावना।

1.1 प्रस्तावना

इतिहास कहानी की तरह नहीं लिखा जाता। यह विभिन्न स्रोतों पर आधारित अतीत का वर्णन है। आज के कई प्रकार के स्रोत विभिन्न आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों, जैसे पूर्ण तिथि-

* डॉ. शुचि दयाल, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली; डॉ. मिलिसा श्रीवास्तव, सलाहकार, पर्यटन, आतिथ्य एवं सेवा प्रबंधन विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली।

निर्धारण विधियाँ (कार्बन-14 डेटिंग), पर्यावरण अध्ययन, भूवैज्ञानिक अध्ययन आदि पर आधारित हैं। ये सभी विभिन्न स्रोतों को सत्यापित या संबंधित करने के लिए एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। हाल ही की खोजों ने मिथकों की सत्यता को प्रमाणित करने में मदद की है। उदाहरण के लिए, प्राचीन शहर द्वारका के मामले में यह माना जाता था कि यह *महाभारत* में वर्णित एक मिथक है। हालाँकि, हाल ही में पानी के नीचे डूबे हुए अवशेषों की खोज करने वाले पुरातत्वविदों ने एक डूबे हुए शहर के अवशेषों का पता लगाया है जो प्राचीन द्वारका प्रतीत होता है। इसी तरह, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बागपत जिले में हाल ही में खुदाई किए गए एक पुरातात्विक स्थल सन्नौली में हुई 'रथ' की खोज *महाभारत* के पुरातत्व के नए आयाम को सामने लाती है। निश्चित रूप से अभी हाल में मिले स्रोतों को स्थापित करने और उनके अध्ययन की प्रक्रिया जारी है। फिर भी यहाँ यह महसूस करना महत्वपूर्ण है कि पुरातत्व हमारे अतीत के ज्ञान की वृद्धि कर रहा है। अब तक जिसे अज्ञात क्षेत्र माना जाता था, उसका अब वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा रहा है। स्रोत इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उन स्रोतों के आधार पर हम अपने अतीत का पुनर्निर्माण करते हैं। इतिहास लेखन के लिए एक इतिहासकार को स्रोतों की आवश्यकता होती है। इतिहासकार लगातार स्रोतों की खोज, पड़ताल, अन्वेषण, विश्लेषण, विचार और पुनर्विचार करके अतीत को जानने का काम करते हैं। अतीत का कोई भी अवशेष स्रोत के उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए हमारे पास विभिन्न स्रोत हैं। मोटे तौर पर, उन्हें दो मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः

- साहित्यिक
- पुरातात्विक

साहित्यिक स्रोतों के अंतर्गत वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य, महाकाव्य, *पुराण*, *संगम* साहित्य, प्राचीन जीवनियाँ, कविता और नाटक शामिल किए जा सकते हैं।

पुरातत्व के अंतर्गत हम पुरातात्विक अन्वेषणों और उत्खनन के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले पुरालेखों, मुद्राओं और स्थापत्य पुरातात्विक अवशेषों पर विचार कर सकते हैं।

भारतीय इतिहास में लिखित अभिलेखों की प्रधानता है। हालाँकि, मंदिर के अवशेष, सिक्के, घर के अवशेष, खंभों के गड्डे (Post Holes), मिट्टी के बर्तन, कोष्ठागार आदि के रूप में पुरावशेष भी साक्ष्य की एक महत्वपूर्ण श्रेणी का गठन करते हैं। भारतीय इतिहास के तीनों काल – प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक के लिए पुरातात्विक साक्ष्य बहुत महत्वपूर्ण है। पुरातात्विक साक्ष्य उन अवधियों के लिए अपरिहार्य हैं जिनके पास कोई लेखन नहीं था; उदाहरण के लिए, भारतीय इतिहास का प्रागैतिहासिक और आद्य-ऐतिहासिक काल। स्रोतों को प्राथमिक और द्वितीयक के रूप में भी विभाजित किया जा सकता है। सभी पुरावशेष; मंदिर से मिले अभिलेख और लिखित दस्तावेज़ों के रूप में *तालपत्र* (ताड़ के पत्ते की पांडुलिपियाँ); खंभों, चट्टानों, तांबे की तश्तरी, मृदमाण्ड आदि पर शिलालेखों को **प्राथमिक स्रोत** कहा जाता है। इतिहासकारों द्वारा इनका उपयोग लेख, किताबों या लिखित इतिहास के किसी भी रूप को लिखने के लिए किया जाता है जो बाद के शोधकर्ताओं द्वारा उपयोग किए जाते हैं और इसलिए ये **द्वितीयक स्रोत** कहलाते हैं। लिखित प्राथमिक स्रोत दो प्रकार के होते हैंः

- पांडुलिपि / शिलालेख
- प्रकाशित सामग्री।

1.2 साहित्यिक स्रोत

प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करते समय कुछ प्रश्नों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, उनकी रचना क्यों और किसके लिए की गई? उनका सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ क्या था? एक ग्रंथ एक आदर्श का प्रतिनिधित्व कर सकता है और उस समय जो हो रहा था उसका सटीक विवरण शायद नहीं हो सकता। जब कोई ऐतिहासिक जानकारी के लिए प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन कर रहा हो तब कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उपिंदर सिंह ने कहा है कि यदि एक विशेष अवधि में एक ग्रन्थ की रचना की गई थी, तो ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इसका उपयोग कम समस्यापूर्ण है। हालाँकि, यदि इसकी रचना लंबे समय तक चलती है, तो उसका काल निर्धारण करना अधिक जटिल हो जाता है। उदाहरण के लिए, महाकाव्यों में *महाभारत* को एक विशिष्ट समय के ग्रन्थ के रूप में देखना बहुत मुश्किल है। ऐसे मामलों में इतिहासकार को विभिन्न कालानुक्रमिक परतों का विश्लेषण करना पड़ता है और गंभीर रूप से विभिन्न परिवर्धन और प्रक्षेपों को देखना होता है। किसी ग्रन्थ की भाषा, शैली और सामग्री का विश्लेषण करना आवश्यक है। *रामायण* और *महाभारत* दोनों महाकाव्यों के महत्वपूर्ण संस्करण बनाए गए हैं जहाँ इन ग्रंथों की विभिन्न पांडुलिपियों का विश्लेषण किया गया और उनके मूल को पहचानने का प्रयास किया गया है। इस तरह के उपक्रमों ने इतिहासकारों की काफी मदद की है।

इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य की विश्वसनीयता को लेकर बहुत बहस हुई है। चूँकि अधिकांश प्राचीन भारतीय साहित्य की प्रकृति धार्मिक है; उदाहरण के लिए, वैदिक, उत्तरवैदिक, *पुराण* और महाकाव्य साहित्य आदि। कुछ विद्वानों ने दावा किया है कि प्राचीन भारतीयों के पास इतिहास की भावना ही नहीं थी। शुरुआती पश्चिमी विद्वानों को कालक्रम, साक्ष्य, एक साफ-सुथरी कथा और भारतीय ग्रंथों में तारीखों की तलाश थी। इसके बजाय उन्हें जो मिला वह दंतकथाएँ, अनुष्ठान, प्रार्थना आदि थे। हालाँकि, भारत की ऐतिहासिक परंपराओं के हालिया शोध ने यह स्पष्ट कर दिया है कि विभिन्न समाज अलग-अलग तरीकों से ऐतिहासिक चेतना को एकीकृत करता है। प्राचीन भारत में लिखित परंपरा के विपरीत एक मजबूत मौखिक परंपरा थी। उसमें हमें जो ऐतिहासिक चेतना झलकती है वह एक स्थापित चेतना थी जिसका विश्लेषण किया जाना मुश्किल था।

हमें चीनी तीर्थयात्री ह्वेनत्सांग के लेखन से पता चलता है कि भारत के प्रत्येक राज्य के पास आधिकारिक रिकॉर्ड के रखरखाव के लिए अपने स्वयं के अधिकारी और विभाग थे जो महत्वपूर्ण घटनाओं सहित राज्य के विभिन्न पहलुओं का लेखा-जोखा रखते थे। उसके बाद यह प्रथा लंबे समय तक जारी रही, जैसा कि बड़ी संख्या में भूमि-अनुदानों और स्थानीय ऐतिहासिक लेखों में देखा जा सकता है जो राजाओं की वंशावली और उनके कई पुण्य कार्यों को प्रकाशित करते हैं। चूंकि अधिकांश प्रारंभिक भारतीय साहित्य में धर्म, बह्मांड विज्ञान, जादू, अनुष्ठान, प्रार्थना और पौराणिक कथाओं से भरा हुआ है, इसलिए इन ग्रंथों के साथ काल-निर्धारण से जुड़ी समस्याएँ हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनकी रचना और संकलन की अवधि में एक व्यापक अंतर होता है। वे ईश्वर मीमांसा जैसे विषय से संबंध रखते हैं इसलिए उन्हें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से समझना मुश्किल है। *वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, शास्त्र* साहित्य, *सूत्र, पुराण* आदि मोटे तौर पर धार्मिक विषयों से संबंधित हैं। हालाँकि इन सीमाओं के बावजूद ऐसे ग्रंथों को अतीत को समझने के लिए फलदायी रूप से इस्तेमाल किया गया है।

अब हम भारतीय इतिहास के स्रोतों के रूप में प्राचीन भारतीय साहित्य की इन विभिन्न श्रेणियों का अध्ययन करेंगे।

1.2.1 वैदिक साहित्य

भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे पहला साहित्य वैदिक साहित्य है। *वेद* शब्द संस्कृत मूल के 'विद' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'जानने के लिए'। *वेद* का अर्थ है ज्ञान। *वेद* मौखिक साहित्य में उत्कृष्ट हैं। उन्हें पारंपरिक रूप से श्रुति यानि 'सुना' या प्रकट ग्रंथों के रूप में माना जाता हैः कहा जाता है कि शब्द पहले मनुष्य के कानों में भगवान बह्मा द्वारा कहे गए हैं। संस्मरण के रूप में उन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंप दिया गया। वैदिक साहित्य शास्त्रीय संस्कृत से अलग भाषा में है। इसे वैदिक संस्कृत कहा जाता है। इसकी शब्दावली में अर्थों की एक विस्तृत श्रृंखला है और इसमें विभिन्न व्याकरणिक उपयोग हैं। इसमें उच्चारण की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। ज़ोर देने से शब्दों का अर्थ बदल जाता है। यही कारण है कि *वेदों* के उच्चारण की विधा की सुरक्षा और संरक्षण के लिए एक विस्तृत साधन का विकास किया गया। घन, जट और अन्य प्रकार के पाठों के माध्यम से हम न केवल मंत्रों के अर्थ को निर्धारित कर सकते हैं, बल्कि उन मूल स्वर को भी सुन सकते हैं जिनमें ये हज़ारों साल पहले गाए गए थे। इन पाठों के कारण *वेदों* में कोई भी प्रक्षेप संभव नहीं था, क्योंकि मौखिक प्रसारण पर ज़ोर दिया गया था।

वैदिक साहित्य तीन रूप से वर्गीकृत हैः

क) **संहिता या संग्रह**, अर्थात् भजनों, प्रार्थनाओं, मंत्रोच्चार, मंगलकामना, बलिदान के सूत्र और निम्नलिखित चार वैदिक संहिताएँ हमें ज्ञात हैं:

1) ***ऋग्वेद* संहिताः** *ऋग्वेद* का संग्रह। यह प्रशंसा *(रिक)* के गीतों का ज्ञान है और इसमें 1028 श्लोक (सूक्त) हैं जो 10 पुस्तकों *(मंडल)* में संकलित हैं। मंडल 2 से मंडल 7 प्रारंभिक तिथि के हैं और मंडल 1, 8, 9 और 10 बाद के हैं। वे प्रथाओं, सामाजिक मानदंडों और संरचनाओं से संबंधित विभिन्न मुद्दों से निपटते हैं। *ऋग्वेद* की आनुष्ठानिक सामग्री के बावजूद इतिहासकार पशुपालन अर्थव्यवस्था, कबीले के प्रमुख (राजा), विश की स्थिति, भाग और बलि और सामाजिक वर्गों जैसे विषयों को सफलतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं।

2) ***अथर्ववेद* संहिताः** इसकी 20 पुस्तकों में कई विषयों को समाहित किया गया है, जिनमें से पहले सात मुख्य रूप से कविताओं, मंत्रों और छंदों से संबंधित हैं। इसमें से कुछ लाभार्थियों द्वारा बोले जाते हैं, जो उनकी ओर से विभिन्न बीमारियों और चोटों को ठीक करने के लिए व उपचार के लिए बोले जाते थे। 13-18 पुस्तकें संस्कारों पर प्रकाश डालती हैं जैसे सीखने (दीक्षा), विवाह और अंत्येष्टि में प्रवेश के लिए आदि। इसमें शाही अनुष्ठान और दरबार-पुजारियों के कर्तव्यों को भी शामिल किया गया है। इस प्रकार, इसकी सामग्री का अध्ययन वैदिक काल के सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। एक महत्वपूर्ण खंड दवा के रूप में जड़ी-बूटियों और प्रकृति-व्युत्पन्न औषधि के बारे में भी बात करता है।

3) ***सामवेद* संहिताः** *सामवेद* का संग्रह अर्थात् गीतों या धुनों (समन) का ज्ञान। भारतीय शास्त्रीय संगीत की जड़ें *सामवेद* के ध्वनि, संगीत, विशेष रूप से मंत्रों की संरचना और सिद्धांतों पर आधारित है। इन्हें कभी-कभी *ऋग्वेद* के संगीत संस्करण के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि संगीत की रचनात्मकता और मधुरता 75 छंदों में परिलक्षित होती हैं, बाकी *ऋग्वेद* से उधार लिए गए हैं। इसमें वीणा जैसे उपकरणों का भी उल्लेख है। विभिन्न वाद्ययंत्रों को बजाने के नियम और सुझाव को एक अलग संकलन में संकलित किया गया है, जिसे गंधर्व-*वेद* के नाम से जाना जाता है, जो एक उप*वेद* हैः *सामवेद* का पूरक या परिशिष्ट।

4) ***यजुर्वेद* संहिता:** *यजुर्वेद* का संग्रह पूजा-अनुष्ठानों के लिए यज्ञीय सूत्रों (यजु) का संकलन है। अग्निहोत्र (तीन प्राथमिक ऋतुओं – वसंत, मानसून और शरद ऋतु के स्वागत में अग्नि को मक्खन और दूध अर्पित करते हैं), वाजपेय और राजसूय (एक राजा और उसके राज्याभिषेक पर क्रमशः मक्खन और सुरा – एक मादक पेय – अग्नि को अर्पण करके) अग्निचयन (*वेदी* और चूल्हा बनाने के लिए मंत्रों का उच्चारण) आदि के लिए मंत्रों का संकलन है। यह कृषि, आर्थिक और सामाजिक जीवन पर भी महत्वपूर्ण जानकारी देता है। उदाहरण के लिए, शुक्ल यजुर्वेद[1] में एक महत्वपूर्ण कविता उन फसलों को सूचीबद्ध करती है जो उन समय में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं जैसे गेहूं, चावल, जौ, तिल, बाजरा, ज्वार, राजमा इत्यादि। यह प्राथमिक उपनिषदों का सबसे बड़ा संग्रह है – बृहदारण्यक *उपनिषद*, कथा *उपनिषद*, ईश *उपनिषद*, मैत्री *उपनिषद*, तैत्तिरीय *उपनिषद* और श्वेताश्वतर *उपनिषद* – जिनमें से हिंदू दर्शन के विभिन्न स्कूल विकसित और विकसित हुए हैं। उदाहरण के लिए, बृहदारण्यक *उपनिषद* में धर्म, कर्म और मोक्ष (इसका शाब्दिक अर्थ जीवन और मृत्यु के दुष्चक्र से मुक्ति है लेकिन यह दुःख, स्वतंत्रता या आत्म-प्राप्ति से मुक्ति के लिए भी लिया जाता है।) की हिंदू अवधारणा पर शुरुआती व्यापक चर्चाएँ हैं।

वेदों की उचित समझ के लिए छह *वेदांगों* (*वेदों* के अंग) का विकास किया गया। ये हैं:

- शिक्षा (स्वर विज्ञान),
- कल्प (अनुष्ठान),
- व्याकरण (व्याकरण),
- निरुक्त (व्युत्पत्ति),
- छंद (मैट्रिक्स), और
- ज्योतिष (खगोल विज्ञान)।

प्रत्येक *वेदांग* ने अपने चारों ओर एक विश्वसनीय साहित्य विकसित किया है, जो सूत्र रूप में है, अर्थात् उपदेश। यह गद्य में अभिव्यक्ति का एक बहुत संक्षिप्त और सटीक रूप है जो प्राचीन भारतीयों द्वारा विकसित किया गया था। पाणिनि की *अष्टाध्यायी* – आठ अध्यायों में व्याकरण पर एक पुस्तक – सूत्र (उपदेश) में लेखन की इस उत्कृष्ट कला की अंतिम परिणति है, इसमें प्रत्येक अध्याय सटीक रूप से परस्पर जुड़ा हुआ है।

वेदों के अलावा, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों जैसे ग्रंथों को भी वैदिक साहित्य में शामिल किया गया है और उत्तर-वैदिक साहित्य के रूप में जाना जाता है। *ब्राह्मण* ग्रन्थ वैदिक अनुष्ठानों पर विस्तार से बताते हैं, और *आरण्यक* और *उपनिषद* विभिन्न आध्यात्मिक और दार्शनिक समस्याओं पर प्रवचन देते हैं।

ख) ***ब्राह्मण*:** ये विस्तृत गद्य ग्रंथ हैं जिनमें धार्मिक विषय होते हैं, विशेष रूप से बलिदान पर टिप्पणियों और बलिदान संस्कार और समारोहों के व्यावहारिक या रहस्यमय महत्व।

ग) ***आरण्यक* और *उपनिषद*:** *आरण्यक वेदों* के अनुष्ठानों-बलिदानों से जुड़ी व्युत्पत्ति, पहचान, चर्चा, विवरण और व्याख्याओं का प्रतिनिधित्व करते हैं ताकि उनका उचित प्रदर्शन किया जा सके। उदाहरण के लिए, *ऐतरेय आरण्यक* में स्पष्ट है कि *वेद* का

[1] *यजुर्वेद* को "सफेद" या "उज्ज्वल" (शुक्ल) *यजुर्वेद* और "काला" या "डार्क" (कृष्ण) *यजुर्वेद* में विभाजित किया गया है। "शुक्ल" अच्छी तरह से व्यवस्थित और स्पष्ट छंद को दर्शाता है जबकि "कृष्ण" अनारक्षित, अस्पष्ट, मूक श्लोक का संदर्भ देता है।)

पालन करने वाले और देवताओं को सही ढंग से बलिदान करने वाले व्यक्ति देवों के निवास के अधिकारी हैं, जबकि उनका उल्लंघन करने वाले को सरीसृपों, कीड़ों आदि के अस्तित्व की निचली दुनिया प्राप्त होती हैं। *तैत्तिरीय आरण्यक* के अध्याय को प्रसिद्ध रूप से "सूर्य नमस्कार अध्याय" कहा जाता है जिसे बाद में योग-सूत्रों में वर्णित किया गया। इसके अतिरिक्त, *आरण्यक* जीवन के गहरे दर्शन में एक अंतर्दृष्टि भी प्रदान करते हैं। अरण्य शब्द का अर्थ है "जंगल" या बीहड़। यह माना जाता है कि जो लोग वानप्रस्थ को जाते हैं (वन-निवास के लिए सेवानिवृत्त), वे *आरण्यक* ग्रंथों का पाठ करते हैं, इसलिए इसलिए इसका नाम *आरण्यक* है। *उपनिषद* शब्द "उप" से बना है जिसका अर्थ है "पास/निकट" और नि-षद का अर्थ है "बैठ जाना" के जुड़ने से बना है। इस प्रकार, यह "निकट बैठने" को दर्शाता है। गुरु के पास बैठकर एक शिष्य आध्यात्मिक ज्ञान के मोती प्राप्त करता है। अन्य धारणाओं में "गूढ़ सिद्धांत", "गुप्त सिद्धांत", "रहस्यवादी अर्थ", "छिपे हुए संबंध" आदि शामिल हैं। मोनियर-विलियम्स अपने संस्कृत शब्दकोश में इसे "सर्वोच्च आत्मा के ज्ञान को प्रकट करके अज्ञानता को शांत करने" के रूप में परिभाषित करते हैं। उपनिषदों में हिंदू धर्म के कुछ प्रमुख दार्शनिक शब्द शामिल हैं – जैसे कि बह्म (उच्चतम सत्ता या अंतिम वास्तविकता) और आत्मन् (आत्मा या स्वयं) – जिनमें से कुछ का उल्लेख बौद्ध धर्म और जैन धर्म जैसे समानांतर विषम धार्मिक परंपराओं में भी किया गया है। उन्होंने प्राचीन भारत में आध्यात्मिक विचारों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई; अमूर्त दर्शन और अध्यात्म पर नए विश्वासों को वैदिक कर्मकांड से एक संक्रमण को *वे*दांत के रूप में जाना जाता है। *वे*दांत में "*वेदों* का सर्वोच्च उद्देश्य" भी है। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में उनके अनुवाद के साथ-साथ पश्चिमी विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने लगे। उनके दार्शनिक सिद्धांतों से रोमांचित आर्थर शोपेनहावर ने *उपनिषद* दर्शन को "उच्चतम मानव ज्ञान का उत्पादन" कहा। आरण्यकों को कर्मकांड के रूप में मान्यता दी जाती हैः कर्मकाण्ड क्रिया या वैदिक साहित्य के यज्ञ-खंड या बाह्य यज्ञ-अनुष्ठानों को सूचित करता है। जबकि उपनिषदों को ज्ञान-कांड, ज्ञान उत्पादन या वैदिक साहित्य के आध्यात्मिक-खंड के रूप में आंतरिक दार्शनिक सिद्धांतों के रूप में सूचित किया जाता है।

वसुधैव कुटुंबकम् – संस्कृत में 'वसुधैव कुटुंबकम' का अर्थ है "दुनिया एक परिवार है"। यह भारत की संसद के प्रवेश-द्वार पर अंकित है और इसे महा-*उपनिषद* से लिया गया है। "वसुधा" का अर्थ पृथ्वी से है, "एव" का अर्थ है "वास्तव" और "कुटुम्बकम" का अर्थ है परिवार। इसका उपयोग उस श्लोक में किया गया है, जो एक ऐसे व्यक्ति की विशेषताओं का वर्णन करती है, जिसने आध्यात्मिक उत्थान के उच्चतम स्तर को प्राप्त किया है और जो भौतिक संपत्ति और प्रलोभनों में जकड़े बिना अपने सांसारिक कर्तव्यों में भाग लेने में सक्षम है। यह माना जाता है कि गांधी के समग्र विकास की दृष्टि, जीवन के सभी रूपों के लिए सम्मान और अहिंसा पर आधारित *संघर्ष* संकल्प रणनीति इस प्राचीन भारतीय सूक्ति से ली गई थी।

अथितिदेवो भव – यह भारतीय मूल्य-प्रणाली में अतिथि-मेज़बान संबंधों की गतिशीलता का प्रतिनिधित्व करने वाला एक मंत्र, जिसका शाब्दिक अर्थ है "अतिथि देवता है", भारतीय आतिथ्य का प्रदर्शन करने वाला एक केंद्रीय विचार है। इसे तैत्तिरीय *उपनिषद* से लिया गया है। पारंपरिक हिंदू धर्म में किसी एक देवता की पूजा में पाँच चरण (पंचोपचार पूजा) शामिल होते हैं जो मेहमानों का स्वागत करते समय मानी जाने वाली पाँच औपचारिकताएँ होती हैः सुखद सुगंध (धूप) प्रदान करना, दीप (दीप) जलाना, तर्पण (नैवेद्य) अर्पित करना, तिलक (माथे पर धार्मिक निशान) और फूल (पुष्प) अर्पण।

सत्यमेव जयते – इसे "सत्य की विजय"/केवल सत्य विजित है" के रूप में अनुदित किया गया है, "सत्य अजेय है/सत्य, सत्य है", मुंडक *उपनिषद* से लिया गया एक वाक्यांश है। एक नारे के रूप में इसे लोकप्रिय बनाया गया और 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा व्यापक राष्ट्रीय उपयोग में लाया गया। इसे स्वतंत्रता के अवसर पर भारत का राष्ट्रीय आदर्श वाक्य घोषित किया गया था। यह हमारे राष्ट्रीय प्रतीक में अशोक चक्र पर अंकित है। हम इसे भारतीय मुद्रा के अग्रभाग पर भी पाते हैं।)

संपूर्ण वैदिक साहित्य को ईश्वर द्वारा प्रकट किया गया माना जाता है और इसलिए इसे पवित्र माना जाता है। कालक्रम में यह हज़ार साल तक फैला है, कुछ हिस्से जिसमें पहले की अवधि और कुछ बाद की अवधि के हैं। *ऋग्वेद* भारत का सबसे पुराना ग्रंथ है। *ऋग्वेद* की पुस्तकें II-VII सबसे प्राचीन हैं और इन्हें पारिवारिक पुस्तकें भी कहा जाता है क्योंकि प्रत्येक को ऋषि (ऋषियों) के एक विशेष परिवार द्वारा परंपरा के अनुसार बताया रचित किया गया। जब हम प्रारंभिक वैदिक साहित्य का उल्लेख करते हैं तो हम अनिवार्य रूप से *ऋग्वेद* की पुस्तकों II-VII का उल्लेख करते हैं, माना जाता है कि 1500-1000 बी.सी.ई. में इसकी रचना की गई थी। उत्तर वैदिक साहित्य में *ऋग्वेद* की पुस्तकें I, VIII, IX और X शामिल हैं; *सामवेद*; *यजुर्वेद*; *अथर्ववेद*; *ब्राह्मण*; अरण्यक और उपनिषद। ये लगभग 1000-500 बी.सी.ई. के बीच रचे गए थे।

हालाँकि, अधिकांश वैदिक साहित्य में गीत, प्रार्थना, धर्मशास्त्रीय और धार्मिक मामले शामिल हैं, लेकिन इनका उपयोग इतिहासकारों ने राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक सामग्री को इकट्ठा करने के लिए किया है। *ऋग्वेद* में एक पशुपालन, पूर्व-वर्ग समाज से कृषि, वर्ग, जाति समाज को ओर संक्रमण व उत्तर वैदिक काल में राजनीतिक क्षेत्रों के निर्माण जैसी प्रक्रियाओं की जानकारी इन ग्रंथों से प्राप्त हुई हैं।

ग्रंथों की एक श्रेणी और है – सूत्र। यह वैदिक साहित्य के बाद का हिस्सा है। इन्हें "सुने" (श्रुति) ग्रंथों के बजाय संस्मरण अथवा "स्मृति" के रूप में वर्गीकृत किया गया है। ये महान ऋषियों द्वारा रचे गए थे। हालाँकि वे अपने आप में आधिकारिक माने जाते हैं। सूत्र ग्रंथ (लगभग 600-300 बी.सी.ई.) कर्मकांड पर आधारित हैं।

इसमें शामिल हैं:

- ***श्रौतसूत्र*** : महान बलिदानों को करने के नियम हैं।
- ***गृह्यसूत्र*** : दैनिक जीवन के सरल समारोहों और बलिदानों के लिए दिशा-निर्देश शामिल हैं।
- ***धर्मसूत्र*** : ये आध्यात्मिक और ग़ैर-धार्मिक कानून के निर्देशों की पुस्तकें हैं – सबसे पुरानी कानून पुस्तकें हैं।

धर्मसूत्र और स्मृतिलेख आम जनता और शासकों के लिए नियम और कानून हैं। उन्हें आधुनिक अर्थों में, संविधान के रूप में, प्राचीन भारतीय राजनीति और समाज के लिए कानून की किताबें कहा जा सकता है। इन्हें धर्मशास्त्र भी कहा जाता है। वे लगभग 600 बी.सी.ई. – 200 बी.सी.ई. के बीच संकलित थे। उनमें से मनुस्मृति प्रमुख है। सूत्रों के बाद के ग्रंथ स्मृति ग्रंथ हैं जो निम्नलिखित हैं:

- ***मनु स्मृति***,
- ***नारद स्मृति***, और
- ***याज्ञवल्क्य*** स्मृति।

ये लगभग 200 बी.सी.ई. और 900 सी.ई. के बीच रचे गए थे। वे विभिन्न वर्णों के साथ-साथ राजाओं और उनके अधिकारियों के कर्तव्यों के बारे में उल्लेख है। इसमें शादी और संपत्ति के लिए नियम तय किए गये। इसमें चोरी, हमले, हत्या, व्यभिचार आदि के लिए व्यक्तियों को दंड का भी विधान है।

1.2.2 कौटिल्य का *अर्थशास्त्र*

यह अर्थव्यवस्था और राज्य-व्यवस्था पर एक महत्वपूर्ण कानूनी ग्रन्थ है। इसको 15 पुस्तकों में विभाजित किया गया है, जिनमें से पुस्तकें II और III को आरम्भिक माना जा सकता है और लगता है कि यह अलग-अलग हाथों की कृतियाँ हैं। ये विभिन्न पुस्तकें राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज के विभिन्न विषय-वस्तु से संबंधित हैं। सी.ई. की आरंभिक शताब्दियों में इसे अंतिम रूप दिया गया। हालाँकि, शुरुआती भाग मौर्य काल की स्थिति और समाज को दर्शाते हैं। यह प्रारंभिक भारतीय राजनीति और अर्थव्यवस्था के अध्ययन के लिए समृद्ध सामग्री प्रदान करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि *अर्थशास्त्र* के अंतिम संस्करण से पहले भी राजकीय वस्तुओं के लेखन और अध्यापन की परंपरा थी क्योंकि कौटिल्य अपने पूर्वजों के ऋण को स्वीकार करता है।

1.2.3 महाकाव्य

दो महान महाकाव्य – *रामायण* और *महाभारत* (लगभग 500 बी.सी.ई. – 500 सी.ई.) को भी एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। वे "इतिहास" ("इस प्रकार से") या आख्यान के रूप में जाने जाते हैं। व्यास लिखित *महाभारत* पुराना है और संभवतः लगभग 10वीं-चौथी शताब्दी बी.सी.ई. की स्थिति को दर्शाता है। इसकी मुख्य कथा जो कौरव-पांडव *संघर्ष* है और उत्तर वैदिक काल से संबंधित हो सकती है, इसका वर्णनात्मक भाग उत्तर वैदिक काल का हो सकता है और उपदेशात्मक अंश आमतौर पर मौर्य और गुप्त काल से संबंधित है (आर.एस. शर्मा, 2005)।

यह माना जाता है कि इनमें लगातार प्रक्षेप बने हैं। चूँकि दोनों महाकाव्यों में हर कुछ समय बाद भाग जोड़े गए, इसलिए इतिहासकारों को इस सामग्री की पाठन क्रिया में सावधानी बरतनी चाहिए और उनकी विभिन्न कालानुक्रमिक परतों को ध्यान में रखना चाहिए। वे लोकप्रिय साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसका आज भी नियमित और औपचारिक रूप से अभिनय किया जाता है। इसलिए, श्रोताओं की बढ़ती रुचि के साथ उत्साही कथाकार ने नए अध्याय जोड़े और इसी तरह प्रक्षेप बनते चले गए।
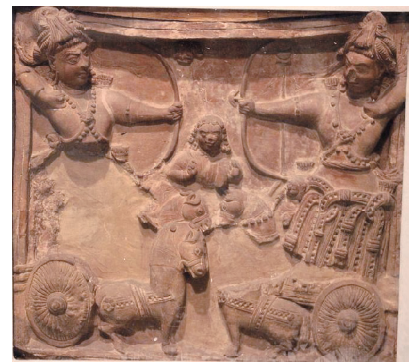
बाएँः पहली बार मूर्तिकला में चित्रांकित महाभारत के दृश्य, गुप्त काल। स्थानः राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली। श्रेयः नोमू 420। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mahabharat, Gupta artefacts 03, National Museum, New Delhi.jpg) ।

दाएँ : रामायण दृश्य की नक्काशी। श्रेयः बी. बालाजी। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ramayana In carving (2444648102).jpg)।

वाल्मीकि की *रामायण महाभारत* की तुलना में अधिक एकीकृत प्रतीत होती है। दोनों महाकाव्यों में वर्णित कुछ स्थलों की खुदाई की गई है। अयोध्या की खुदाई से उत्तरी काली पॉलिश मृदभांड की अवधि तक बस्तियों का पता चला है। हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, पानीपत, बागपत, मथुरा, तिलपत और बैराट में खुदाई की गई है और चित्रित धूसर मृदभांड अवधि के समय के हैं। दोनों महाकाव्यों में धार्मिक संप्रदायों के बारे में जानकारी है, जिन्हें हिंदू धर्म की मुख्यधारा, सामाजिक प्रथाओं और तात्कालिक समय के दर्शन में एकीकृत किया गया।

1.2.4 *पुराण*

पुराण व्यास द्वारा लिखित हिंदू ग्रंथों की एक श्रेणी है। उन्हें गुप्त और उत्तर गुप्तकाल के समय का माना जाता हैं। 18 महा*पुराण* और कई उप*पुराण* (*पुराणों* के पूरक या परिशिष्ट) हैं। उनकी विश्वव्यापी सामग्री इंगित करती है कि ये विभिन्न विषयों को शामिल करते हैं और विभिन्न हाथों द्वारा रचित हैं। उदाहरण के लिए, अग्नि *पुराण* (लगभग 8वीं – 11वीं शताब्दी सी.ई.) इन निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित हैं – अनुष्ठान पूजा, बह्मांड विज्ञान और ज्योतिष, पौराणिक कथाओं, वंशावली, कानून, राजनीति, शिक्षा प्रणाली, प्रतीक, कराधान सिद्धांत, युद्ध और सेना का संगठन, युद्ध, मार्शल आर्ट, कूटनीति, स्थानीय कानूनों, सार्वजनिक परियोजनाओं के निर्माण, जल वितरण के तरीकों, पेड़ों और पौधों, चिकित्सा, डिजाइन और वास्तुकला, रत्न विज्ञान, व्याकरण, छंद, कविता, खाद्य और कृषि, अनुष्ठान, भूगोल और मिथिला (बिहार और पड़ोसी राज्यों) का सांस्कृतिक इतिहास के यात्रा दिग्दर्शक।

निम्नलिखित पांच शाखाओं को *पुराणों* के विषय-वस्तु के रूप में माना जाता हैः

- सर्ग (विश्व के निर्माण),
- प्रतिसर्ग (ब्राह्माण का पुनः निर्माण),
- मन्वंतर (विभिन्न मानवों का का काल/मनु का काल),
- वंश (देवताओं, राजाओं और संतों की वंशावली सूची), और
- वंशानुचरित (शाही राजवंशों का वृत्तांत/ कुछ चुने हुए पात्रों की जीवन कथाएँ)।

बाद में, तीर्थों (पवित्र स्थान) और उनके महात्म्य (धार्मिक महत्व) का वर्णन भी *पुराण/ पुराण* साहित्य में शामिल किया गया था।

हलेबिड, 12वीं शताब्दी के होयलेसश्वर हिंदू मंदिर, पर चित्रित कृष्ण रास-लीला। कर्नाटक। भागवत *पुराण* के एक कथा पर आधारित। श्रेयः सुश्री सारा वेल्व। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:12th-century_Bhagavata_Purana_Krishna_Rasa_lila_relief_at_Shaivism_Hindu_temple_Hoysaleswara_arts_Halebidu_Karnataka_India.jpg)।

पुराणों में प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए उपयोगी जानकारी है। वे राजवंशों के राजनीतिक इतिहास और वंशावली पर प्रकाश डालते हैं। प्राचीन राजवंशों पर *पुराणों* में बहुत कुछ है जैसे हर्यंक, शिशुनाग, नंद, मौर्य, सुंग, कण्व और आंध्र। कुछ नाग अंतसर्ग लगाने वाले राजाओं का भी उल्लेख किया गया है। वे उत्तर भारत और मध्य भारत में राज्य करते

थे। दिलचस्प बात यह है कि हम किसी अन्य स्रोत से इन राजाओं के बारे में नहीं जानते हैं। *पुराणों* में गुप्त राजाओं के साथ वंश सूची समाप्त होती है। यह दर्शाता है कि *पुराणों* को लगभग चौथी-छठी शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान संकलित किया गया। हालाँकि, कुछ ऐसे हैं जो बाद में रचे गए, जैसे कि *भागवत पुराण* (लगभग 10वीं शताब्दी) और *स्कंद पुराण* (लगभग 14वीं शताब्दी)।

पुराण नदियों, झीलों, पहाड़ों आदि पर भौगोलिक जानकारी प्रदान करने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए, वे प्राचीन भारत के ऐतिहासिक भूगोल के पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, वे हिंदू धर्म के तीन प्रमुख संप्रदायोः वैष्णववाद, शैववाद और शक्तिवाद के बारे में जानकारी का एक अच्छे स्रोत हैं। विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे विभिन्न पंथ प्रमुख धार्मिक परंपराओं के भीतर कैसे एकीकृत हो गए और गणपति, कृष्ण, बह्मा, कार्तिकेय आदि जैसे छोटे पंथ कैसे उभरे, यह भी उनसे जाना जा सकता है। इन पंथों को ब्राह्मणों ने अपने सामाजिक और धार्मिक मूल्यों का प्रसार हेतु वाहन के रूप में प्रयोग किया।

1.2.5 *संगम* साहित्य

सबसे शुरुआती तमिल ग्रंथ *संगम* साहित्य (लगभग 400 बी.सी.ई. – 200 सी.ई.) के बीच संकलित किए गए। यह उन कवियों का संकलन है, जिन्होंने तीन से चार शताब्दियों की अवधि में छोटी और लंबी कविताओं की रचना की, जो प्रमुखों और राजाओं द्वारा संरचित हैं। इनका संग्रह गोष्ठियों में हुआ जिन्हें *संगम* कहा जाता था और इसमें उत्पादित साहित्य को *संगम* साहित्य कहा जाने लगा। तीन *संगम* (साहित्यिक सम्मेलन) हुए – पहला और अंतिम सम्मलेन मदुरै में, दूसरा सम्मलेन कपाटपुरम में हुआ था। हालाँकि, इन समारोहों की ऐतिहासिकता के बारे में कुछ संदेह है। इसलिए, कुछ विद्वान *संगम* साहित्य (उपिंदर सिंह, 2008) के बजाय "प्रारंभिक शास्त्रीय तमिल साहित्य" शब्द का उपयोग करना पसंद करते हैं। हालाँकि पहले दो *संगमों* की कविताओं को आम तौर पर ऐतिहासिक के रूप में खारिज कर दिया जाता है लेकिन कुछ आधुनिक विद्वान उन्हें ऐतिहासिक मूल्य का दर्जा देते हैं।

कविताओं में लगभग 30,000 पंक्तियाँ प्रेम और युद्ध के विषयों पर हैं। वे प्राचीन काल के भाटी के गीतों पर आधारित थे और संकलित होने से पहले लंबे समय तक मौखिक रूप से प्रसारित हुई है। वे धार्मिक साहित्य के रूप में संकलित नहीं थे। इनके कवि शिक्षकों, व्यापारियों, बढ़ई, सुनार, लोहार, सैनिक, मंत्री और राजा आदि सभी वर्गों से आते थे। लेखकों के विविध विषयों के कारण वे अपने समय के लोगों के रोजमर्रा के जीवन की जानकारी की खान हैं। वे उच्चतम गुणवत्ता के साहित्य का प्रतिनिधि करते हैं। जैसा कि अभी कहा गया है, वे दक्षिण भारत के कई राजाओं और राजवंशों का वर्णन करते हैं। कई कविताओं में एक राजा या नायक का नाम आता है और वह उसके सैन्य कारनामों का विस्तार से वर्णन मिलता है। उनके द्वारा भाटों और योद्धाओं को दिए गए उपहारों का वर्णन मिलता है। ऐसा भी हो सकता है, शाही दरबार में इन कविताओं का ग्रन्थ किया गया हो। इसलिए यह संभव है कि राजाओं के नाम वास्तविक ऐतिहासिक आंकड़ों का उल्लेख करते हैं। चोल राजाओं का उल्लेख दाता के रूप में किया जाता है। *संगम* साहित्य में कावेरीपट्टिनम जैसे कई समृद्ध शहरों का उल्लेख है। वे अपने जहाजों में आने वाले यवनों, सोने के लिए काली मिर्च खरीदने और स्थानीय लोगों को शराब और महिला दासों की आपूर्ति करने की बात करते हैं (आर.एस. शर्मा, 2005)। व्यापार पर *संगम* साहित्य द्वारा उत्पादित जानकारी पुरातत्व और विदेशियों के वृत्तांत द्वारा पुष्टि की जाती है। कुछ राजाओं और घटनाओं का उल्लेख शिलालेखों द्वारा भी समर्थित है।

1.2.6 जीवन-वृत्तांत, कविता और नाटक

प्रारंभिक भारत नाटक और कविता की कई कृतियों का भंडार है। इतिहासकारों ने उस काल के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया है, जिस समय उनकी रचना की गई थी। सबसे पहले संस्कृत के कवियों और नाटककारों में अश्वघोष और भाष शामिल हैं। अश्वघोष ने *बुद्धचरित, सारिपुत्रकृष्ण* और *सौन्दरानंद* को लिखा। भाष एक नाटककार थे और उन्होंने पंचरात्र, दत्तवाक्य, बालचरित और स्वप्न-वासवदत्ता लिखा। महान संस्कृत लेखक-कवि कालिदास (लगभग चौथी-पांचवीं शताब्दी सी.ई.) *ने अभिज्ञानशाकुंतलम्, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्* और *रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्* और *मेघदूतम्* जैसे काव्य कृतियों को लिखा। वे गुप्त वंश के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। मालविकाग्निमित्रम् पुष्यमित्र शुंग के शासनकाल की घटनाओं पर आधारित है (शुंग वंश मौर्यो के बाद था)।
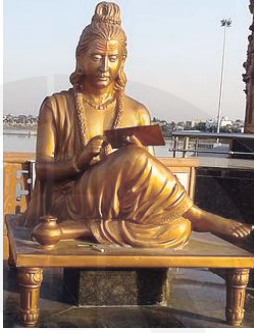
बाएँ : गुप्त राजा चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों (नौ रत्न) में से एक कालिदास का चित्रण। श्रेयः निहाल दवे, एन. डी.। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/Category: K_C4_81lid_C4_81sa#/media/File:Kalidas.jpg) |

दाएँ : ऋषि दुर्वासा शकुंतला को अपने प्रेमी दुष्यंत के बारे में कल्पना में खो जाने पर श्राप देते हुएः कालिदास द्वारा संस्कृत नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम का एक एपिसोड, लगभग 1895 ई. | श्रेयः चौर बागान आर्ट स्टूडियो | स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Durvasa_Shakuntala.jpg) |

तत्पश्चात, ऐतिहासिक विषयों पर प्राचीन नाटक हैं। उल्लेख विशाखदत्त के मुद्राराक्षस (लगभग 7वीं – 8वीं शताब्दी सी.ई.) का किया जा सकता है। यह नाटक इस बात पर आधारित है कि चाणक्य चंद्रगुप्त मौर्य की ओर से नंदों के मंत्री राक्षस पर कैसे विजय प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इसमें तत्कालीन समाज और संस्कृति की झलक भी मिलती है। उनके अन्य नाटक देवीचंद्रगुप्तम् गुप्त राजा, रामगुप्त के शासनकाल की एक घटना पर केंद्रित है। एक अन्य कवि शूद्रक हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित नाटक लिखे हैं। कथा साहित्य में *पंचतंत्र* (लगभग 5वीं-6वीं शताब्दी सी.ई.) और *कथासरित्सागर* (कहानियों का महासागर) शामिल हैं। वे लोकप्रिय लोक कथाओं के संग्रह हैं।

पंचतंत्र, विरुपक्ष मंदिर, पट्टाडकल, कर्नाटक से "बंदर और मगरमच्छ" और "नेवला और सांप" दंतकथाओं को दर्शाने वाला पैनल। लगभग 8वीं शताब्दी बी.सी.ई.। श्रेयः सुश्री सारा वेल्व। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:8th century Panchatantra legends panels at Virupaksha Shaivism temple, Pattadakal Hindu monuments Karnataka 1.jpg)।

प्रसिद्ध राजाओं की जीवनियाँ साहित्य का एक दिलचस्प हिस्सा हैं। इन्हें दरबारी-कवियों और लेखकों ने अपने शाही संरक्षकों की प्रशंसा में लिखा था। बाणभट्ट का *हर्षचरित* (लगभग 7वीं शताब्दी सी.ई.) पुष्यभूति राजवंश के हर्षवर्धन के बारे में प्रशस्तिपरक शब्दों में बात करता है। यह भारत में सबसे पुरानी संरक्षित जीवनी है। बाण के अनुसार यह एक *अध्यायिका* है। यह *इतिहास* परंपरा से संबंधित ग्रंथों की एक शैली है। यह राजा के बारे में बहुत कुछ बताता है लेकिन साथ ही सिंहासन के लिए *संघर्ष*रत होने का संकेत देता है। यह कई ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डालता है जिनके बारे में हम अन्यथा नहीं जान सकते थे। बिल्हण का *विक्रमांकदेवचरित्* (लगभग 12वीं सदी) बाद के चालुक्य राजा विक्रमादित्य VI के बारे में है और उनकी जीत का वर्णन करता है।

वाक्पतिराज ने कन्नौज के यशोवर्मन के कारनामों के आधार पर *गौड़वहो* लिखा। विभिन्न राजाओं के जीवन पर आधारित कुछ अन्य जीवनी संबंधी कार्य हैं। इनमें से प्रमुख हैं:

- जयसिंह की *कुमारपालचरित्,*
- हेमचंद्र का *कुमारपालचरित्* या *दिव्यश्रयकाव्य्*
- नैचंद्र के *हम्मीरकाव्य्,*
- पद्मगुप्त के *नवसहसांकचरित्,*
- बल्लाल का *भोजप्रबंध,* और
- चंदबरदाई का *पृथ्वीराजचरित*।

लेकिन, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, कल्हण द्वारा रचित *राजतरंगिणी* आधुनिक इतिहासकारों द्वारा सराहे गए इतिहास-लेखन का सर्वश्रेष्ठ चित्रण है। शोध की महत्वपूर्ण पद्धति और ऐतिहासिक तथ्यों की निष्पक्ष जाँच ने उन्हें आधुनिक इतिहासकारों के बीच बहुत सम्मान दिया है। वह एक कश्मीरी *ब्राह्मण* था और उसे कश्मीर का पहला इतिहासकार माना जाता है।

उसके बारे में बहुत कम ही जाना जाता है, सिवाय इसके कि वह अपनी पुस्तक के शुरुआती छंदों में अपने बारे में जो कुछ हमें बताते हैं, वही पता चलता है। इसमें उसने यह भी लिखा है कि इतिहास को किस तरह लिखा जाना चाहिए। वह कहता हैः

- **श्लोक 7ः निष्पक्षताः** वह नेक दिमाग वाला लेखक केवल प्रशंसा के योग्य होता है जिसका शब्द, न्यायाधीश की तरह, अतीत के तथ्यों से संबंधित प्रेम या घृणा से मुक्त रहता है।
- **श्लोक 11ः पूर्व लेखकों का हवाला देते हुए** ः कश्मीर के शाही इतिहास को प्राचीनतम व्यापक इतिहास सुव्रत की रचना के सामने खंडित प्रकट होते हैं। उसने उसे इस तरह से घनीभूत किया है जिससे उसे आसानी से याद किया जा सके।
- **श्लोक 12ः सुव्रत की कविता,** यद्यपि इसने ख्याति प्राप्त की है, विषय-वस्तु की व्याख्या में निपुणता नहीं दिखाती है, क्योंकि यह सीखने (पढ़ने के) गलत तरीके से ग्रस्त है।
- **श्लोक 13ः असावधानी के कारण**, क्षेमेंद्र की "राजाओं की सूची" (नृपावली) में गलतियों से मुक्त नहीं है, हालाँकि यह एक कवि की रचना है।
- **श्लोक 14**ः राजाओं के वृत्तान्त पूर्व विद्वानों के ग्यारह कार्यों का निरीक्षण मैंने किया है, साथ ही ऋषि नील के *पुराणों* का भी निरीक्षण किया है।
- **श्लोक 15**ः प्राचीन राजाओं द्वारा मंदिरों और अनुदानों को रिकॉर्ड करने वाले शिलालेखों को देखकर, प्रशंसनीय शिलालेखों और लिखित कार्यों पर, कई त्रुटियों को दूर किया गया है।

प्रारंभिक किंवदंतियों, रीति-रिवाजों और कश्मीर के इतिहास की जानकारी के स्रोत के रूप में कल्हण का कार्य बेहद मूल्यवान है।

1.2.7 बौद्ध और जैन साहित्य

प्रारंभिक भारत के गैर-ब्राह्मणवादी और गैर-संस्कृत स्रोतों में बौद्ध और जैन साहित्य एक महत्वपूर्ण श्रेणी है। यह क्रमशः पाली और प्राकृत भाषाओं में लिखा गया था। प्राकृत संस्कृत का एक रूप था और प्रारंभिक जैन साहित्य अधिकतर इसी भाषा में लिखा गया है। पाली को प्राकृत का एक रूप माना जा सकता है जिसका मगध में प्रचलन था। अधिकांश प्रारंभिक बौद्ध साहित्य पाली में लिखा गया है। बौद्ध भिक्षुओं के साथ यह श्रीलंका पहुँचा जहाँ यह एक जीवित भाषा है। अशोक की शिक्षाएँ भी पाली में हैं।

बुद्ध की मृत्यु के बाद रचित पाली ग्रंथ *त्रिपिटक* ("तीन टोकरी") हमें बुद्ध और 16 *महाजनपदों* के समय के भारत के बारे में बताते हैं। *त्रिपिटक* पाली में बौद्ध विहित साहित्य और उनकी टिप्पणियों के लिए दिया जाने वाला सामान्य नाम है। *त्रिपिटक* पाली, जापानी, चीनी और तिब्बती संस्करणों में जीवित हैं। उनमें तीन किताबें शामिल हैं :

- *सुत्त पिटक,*
- *विनय पिटक* और
- *अभिधम्म पिटक*

सुत्त पिटक में कहानियों, कविताओं और संवाद के रूप में विभिन्न सिद्धांतों पर बुद्ध के प्रवचन शामिल हैं। *विनय पिटक* भिक्षुओं के लिए 227 नियमों और विनियमों के बारे में है। इसमें बुद्ध

द्वारा प्रत्येक नियम की स्थापना के बारे में स्पष्टीकरण शामिल हैं। इसमें उनके जीवन, घटनाओं और बौद्ध धर्म की कहानी के बारे में जानकारी शामिल है। यह 386 बी.सी.ई. में लिखा गया था।

विनय पिटक, जापानी संस्करण का सचित्र वर्णन, लगभग बारहवीं शताब्दी। श्रेयः हायार्ट क्रिएटिव कॉमन्स CC0 1-0 यूनिवर्सल पब्लिक।

अभिधम्म पिटक (शाब्दिक रूप से "उच्च धम्म") में थेरवाद के अनुसार बौद्ध दर्शन से संबंधित विषय हैं और इसमें सूचियाँ, सारांश और प्रश्न शामिल हैं। सुत्त पिटक में पाँच निकाय शामिल हैं जिनमें से खुद्दक निकाय प्रवचनों का एक संग्रह है। इसमें *थेरगाथा*, *थेरीगाथा* और *जातक* शामिल हैं जो एक इतिहासकार के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं। *जातक* में लगभग 550 से अधिक कहानियाँ देव, मनुष्य, पशु, परी, आत्मा या एक पौराणिक चरित्र के रूप में बुद्ध के पूर्व जन्मों के बारे में हैं। उन्हें कुछ ऐतिहासिक महत्व दिए गए हैं क्योंकि वे बुद्ध के पिछले जन्मों से संबंधित हैं। कई कहानियों और रूपांकनों को पूर्व-बौद्ध और गैर-बौद्ध मौखिक परंपराओं से लिया गया था। उनकी लोकप्रियता के कारण वे भारहुत, सांची, नागार्जुनाकोंडा और अमरावती में मूर्तिकला में चिन्हित है। वे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे बौद्ध धर्म और लोकप्रिय बौद्ध धर्म के इतिहास की एक झलक प्रदान करते हैं।

थेरगाथा ("पुराने बौद्ध भिक्षुओं की कविताएँ") और *थेरीगाथा* ("पुराने बौद्ध भिक्षुणियों की कविताएँ") कविता का एक संग्रह है, जिसमें छंद के रूप में बौद्ध भिक्षुओं के शुरुआती सदस्यों ने सुनाए थे। *थेरीगाथा* भारत की पहली संरक्षित कविता संग्रह है जिसे महिलाओं द्वारा रचा गया है। इसलिए, यह न केवल बौद्ध धर्म के लिए बल्कि लिंग अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण है। *थेरीगाथा* के गाथाएँ इस दृष्टिकोण का पुरज़ोर समर्थन करती हैं कि महिलाएँ आध्यात्मिक प्राप्ति के मामले में पुरुषों के बराबर हैं।

धर्म-वैधानिक बौद्ध साहित्य में प्रथम शताब्दी बी.सी.ई.- प्रथम शताब्दी सी. ई. के आसपास *मिलिंदपन्हो* ("मिलिंद के प्रश्न") शामिल हैं। इसमें इंडो-ग्रीक राजा मिनैंडर और एक बौद्ध भिक्षु नागसेन के बीच संवाद शामिल हैं। सिंहली कालक्रम *महावंश* ("महान इतिहास") और *दीपवंश* ("द्वीप का इतिहास") बुद्ध के ज्ञानोदय के समय से बौद्ध धर्म के इतिहास को बताते हैं।

जैन साहित्य में ग्रंथों की एक अन्य महत्वपूर्ण श्रेणी का गठन किया गया है जो *अर्धमागधी* में है। इसमें ऐसी जानकारी है जो प्राचीन भारत के विभिन्न क्षेत्रों के इतिहास के पुनर्निर्माण में हमारी मदद करती है। *दिगंबरों* का साहित्य *जैन शौरसेनी* में है जबकि *श्वेतांबर* साहित्य *अर्धमागधी* की दो उपभाषाओं में है। 14वीं शताब्दी बी.सी.ई. में महावीर द्वारा शिष्यों को दिए गए उपदेश पहली बार 14 पूर्वों में संकलित किए गए। स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में एक महान परिषद का गठन किया और 12 अंगों में जैन साहित्य का पुनर्निर्माण किया। बाद में लगभग 5वीं शताब्दी सी.ई. में वल्लभी में हुए एक परिषद में मौजूदा ग्रंथों को औपचारिक रूप दिया गया और उन्हें लिखित रूप में प्रस्तुत किया गया।

बाएँ : भारहुत में महाकपि *जातक* का चित्रण। श्रेय : G41m8। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mahakapi_Jataka_in_Bharhut.jpg)।

दाएँ : सिबि *जातक* : अपने पिछले जीवन में से एक के दौरान बुद्ध कबूतर की जान बचाने के लिए अपना मांस बाज को प्रदान करते हैं। 100-299 सी.ई., गांधार (अब पाकिस्तान में)। ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में संरक्षित। श्रेयः मेरी-लैन गुयेन। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Sibi_Jataka_BM_OA_1912.12-21.1_n01.jpg)।

श्वेतांबरों द्वारा स्वीकार किए गए शास्त्र हैं:

i) 12 *अंग,*

ii) 12 *उपांग,*

iii) 10 *प्रकीर्णद,*

iv) 6 *छेदसूत्र,*

v) 2 *सूत्र,* और

vi) 4 *मूलसूत्र*।

ये आचार संहिता, विभिन्न किंवदंतियों, जैन सिद्धांतों और तत्वमीमांसा के बारे में बताते हैं। *दिगंबरों* का मानना है कि अधिकांश मूल *पूर्व* खो गए हैं। इसलिए, वे *श्वेतांबर* द्वारा स्वीकार किए गए शास्त्रों को स्वीकार नहीं करते हैं। वे महान आचार्यों द्वारा लिखित धर्मग्रंथों का उपयोग करते हैं, जो महावीर की मूल शिक्षाओं पर आधारित हैं। जैन धर्म के इतिहास और सिद्धांत की जानकारी के लिए हम जैन साहित्य का उपयोग कर सकते हैं। प्रतिद्वंद्वी मत के सिद्धांत, जैन *संघ* में रहने वाले संतों की जीवन गाथा और जैन भिक्षुओं के जीवन के बारे में जान सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) संक्षेप में उन दो श्रेणियों पर चर्चा करें जिनमें प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के स्रोतों को विभाजित किया गया है।

....

....

....

....

2) *वेद* क्या है? चार *वेदों* पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

....

....

....

....

3) एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में *पुराणों* पर प्रकाश डालें।

....

....

....

....

4) निम्नलिखित कथनों को सही (✓) या गलत (×) के रूप में चिह्नित करें:

i) पुरातात्विक साक्ष्यों ने केवल प्राचीन काल के लिए महत्व प्राप्त किया है।

ii) भारत के इतिहास के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य की विश्वसनीयता को लेकर बहुत बहस हुई है।

iii) छः *वेदांग* हैं और *वेदों* की समुचित समझ के लिए विकसित किए गए थे।

iv) *विनय पिटक संघ* के सदस्यों के लिए 220 नियमों और विनियमों का संग्रह है।

v) *हर्षचरित* कालिदास ने लिखी थी।

vi) आम तौर पर यह माना जाता है कि महाकाव्यों में लगातार प्रक्षेप होते रहे हैं।

vii) कल्हण की *राजतरंगिणी* राजस्थान के राजाओं की एक इतिवृत्त है।

viii) *थेरीगाथा* भारत का पहला ऐतिहासिक साहित्यिक स्रोत है जिसे विशेष रूप से महिलाओं द्वारा रचा गया है।

ix) *त्रिपिटक* सिर्फ पाली भाषा में संरक्षित हैं।

विशाखदत्त का नाटक देवीचंद्रगुप्तम् गुप्त राजा समुद्रगुप्त के शासनकाल पर प्रकाश डालता है।

1.3 पुरातात्विक स्रोत

पाटलिपुत्र के कुमराहार में स्तम्भित हॉल में मौर्यकालीन खंडहर। श्रेय : ASIEC द्वारा 1912-13 पुरातात्विक उत्खनन। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https:/commons. wikimedia.org/wiki/File:Mauryan_ruins_of_pillared_hall_at_Kumrahar_site_of_Pataliputra_ASIEC_1912-13.jpg)।

पुरातत्व के द्वारा अतीत को समझने के लिए भौतिक संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। इसका इतिहास से घनिष्ठ संबंध है। मूर्तियाँ, मिट्टी के बर्तनों, हड्डियों के टुकड़े, घर के अवशेष, मंदिर के अवशेष, अनाज, सिक्के, मुहरें, शिलालेख आदि वे अवशेष हैं जो पुरातत्व विज्ञान की विषय-वस्तु के रूप में हमारे सामने हैं। यह पुरातात्विक साक्ष्य है जिससे हम प्रागैतिहासिक काल का अध्ययन करने में सक्षम हैं। भारत में भी पुरातत्व के आधार पर आद्य-ऐतिहासिक काल का पुनर्निर्माण किया गया है। हालाँकि, हम पुरातत्व की उपयोगिता को केवल इन अवधियों तक सीमित नहीं कर सकते हैं; यह उन अवधियों के लिए भी महत्वपूर्ण है जिनके लिखित प्रमाण हैं और जो इतिहास के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए, इंडो-ग्रीक के इतिहास को सिक्कों के आधार पर ही पूरी तरह से समझा गया है।

भारत के अतीत के पुनर्निर्माण में पुरातात्विक स्रोतों का उपयोग केवल दो शताब्दियों पुराना है। यह 1920 के दशक तक माना जाता था। भारतीय सभ्यता की शुरुआत लगभग 6वीं शताब्दी बी.सी.ई से शुरु हुई। लेकिन मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के साथ भारतीय सभ्यता लगभग 5000 बी.सी.ई. तक कालबद्ध की जा सकती है। प्रागैतिहासिक पुरावशेषों की खोज से पता चला है कि मानवीय गतिविधियाँ 20 लाख साल पहले ही शुरू हो गई थीं। इसी तरह, यह माना जाता था कि अधिकांश भारतीय उपमहाद्वीप में मानव सभ्यता लगभग पहले सहस्राब्दी बी.सी.ई. के उत्तरार्द्ध में आबाद हो गई थी। लेकिन अब पुरातत्व की मदद से हम जानते हैं कि इसकी शुरुआत पाषाण-काल की अवधि से ही कम या ज्यादा रूप से आबाद हो गई थी।

उत्खनन और अन्वेषण जैसे पुरातात्विक तरीके महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये व्यापार, राज्य, अर्थव्यवस्था, सामाजिक पहलुओं, धर्म और इस तरह के सांसारिक पहलुओं पर महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं जैसे कि लोग कैसे रहते, खाते और कपड़े पहनते थे। उत्खनन से पुरापाषाण, मध्य पाषाण, नवपाषाण, ताम्र पाषाण ,लौह युग, महापाषाण और कई अन्य संस्कृतियों पर भारी मात्रा में दत्त सामग्री प्राप्त होती है। चूँकि हड़प्पा लिपि अभी भी अनिर्धारित है, इसलिए इस अवधि की जानकारी पूरी तरह पुरातत्व से प्राप्त की गई है। यह हमें उत्पत्ति, प्रसार, अधिवास के प्रति रूप, शहरीकरण, व्यापार, राजनीति, अर्थव्यवस्था, कृषि, शिकार, फसलों, कृषि उपकरणों, प्रौद्योगिकी, मनकों, मुहरों, अग्नि वेदियों, धर्म और इस सभ्यता के ह्रास के बारे में बताता है।

पुरातात्विक स्रोत

भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए विभिन्न प्रकार के पुरातात्विक अवशेष उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए, खुदाई किए गए अवशेष, खड़े स्मारक, मूर्तिकला और उत्कीर्ण अभिलेख। जमीनी सर्वेक्षण से पुरातात्विक स्थलों की पहचान की जाती है। इसमें दस्तावेज़ी स्रोत, व प्राचीन नामों की जाँच शामिल हैं। हवाई सर्वेक्षण के माध्यम से जिसमें हवाई या अंतरिक्ष जनित रिमोट सेंसिंग शामिल हैं, उन जगहों की खोज होती है जिन्हें अक्सर जमीन पर चिन्हित नहीं किया जा सकता है। जमीन पर एक बार चिह्नित की गई स्थलों की तुलना और व्यवस्थित रूप से अधिवास के प्रतिरूप, स्थल निर्माण प्रक्रियाओं और भू-पुरातात्विक विश्लेषण पर पहुँचने के लिए अध्ययन किया जा सकता है। पुरातत्वविदों जैसे कि जीवाश्म विज्ञानी (जो जानवरों की हड्डियों का अध्ययन करते हैं), परगाणु विज्ञानी (जो जीवाश्म पराग का अध्ययन और विश्लेषण करते हैं), भू-पुरातत्वविद (जो पृथ्वी निर्माण और मिट्टी और तलछट पैटर्न का अध्ययन करते हैं), पुरातत्व-प्राणी विज्ञानी (जो स्थलों से पशु प्रजातियों का अध्ययन, पहचान और विश्लेषण करते हैं); जातीय-पुरातत्वविदों (जो अतीत के बारे में परिकल्पना करने के लिए जीवित लोगों और जनजातियों का अध्ययन करते हैं) अवशेषों की जाँच-परख में सम्मिलित होते हैं।

उत्खनन : उत्खनन दो प्रकार की होती हैः

1) ऊर्ध्वाधर

2) क्षैतिज।

ऊर्ध्वाधर उत्खनन, स्तरीकरण को प्रकट करने के उद्देश्य से किया जाता है और इसमें गहरी स्तरों को काट दिया जाता है। क्षैतिज खुदाई उस परत में विभिन्न परावशेषों के बीच स्थानिक संबंधों को प्रकट करने के लिए एक विशेष परत को खोलकर क्षैतिज आयाम पर ज़ोर देती है। कई उत्खननकर्ता उत्खनन रणनीतियों का संयोजन करते हैं। परावशेषों के व्यवस्थित अध्ययन के माध्यम से जिसमें प्रयोगशाला विश्लेषण भी शामिल है। पुरातत्वविद् प्राचीन जीवनयापन के तरीकों और घटनाओं के बारे में निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। आज, कुछ सामग्री जिसे पहले अध्ययन के लायक नहीं माना गया था, को महत्वपूर्ण माना जाता है, जैसे कि जले हुए बीज, पौधे की सामग्री, पराग अवशेष और प्राचीन अवशेष (पिछले पारिस्थितिकी तंत्र, आहार को फिर से निर्धारित करने के लिए); जानवरों और मनुष्यों दोनों के दांत और हड्डियाँ (अतीत में रोगों और आहार के पैटर्न को समझने के लिए) आदि को आज पुरातत्वविदों के पास बड़ी संख्या में काल-निर्धारण की विधियाँ हैं, जिनके माध्यम से वे एक विशेष प्रकार के अवशेषों की आयु निर्धारित करते हैं। रेडियोकार्बन काल निर्धारण सबसे लोकप्रिय है और कोयला, लकड़ी, बीज, पौधे सामग्री, मानव और पशु की हड्डी अवशेषों के रूप में जमा में की तारीख तय कर सकता है। अन्य निरपेक्ष काल निर्धारण की तकनीकों का भी उपयोग किया जाता है; उदाहरण के लिए, थर्मोलुमिनिसेंस डेटिंग (मिट्टी के बर्तन, पकी मिट्टी की वस्तुएँ (Terracotta)); डेंड्रोकलॉजी (वृक्ष के तने के विभिन्न छल्ले की आयु तय करता है) आदि।)

हमने अन्य शाखाओं जैसे पुरालेखशास्त्र और मुद्राशास्त्र इत्यादि से लाभ उठाया है। हम इंडो-ग्रीक, शक-पह्लव और कुषाण राजाओं के बारे में मुद्राशास्त्र के बिना नहीं जान सकते हैं। इसी प्रकार, *धम्म* के बारे में अशोक के विचार और समुद्रगुप्त की विजय आदि उनके पुरालेख के बिना अज्ञात रहेंगे।

1.3.1 सिक्के

मौर्य पंच-चिन्हित सिक्कों का भंडार। श्रेयः क्लासिकल न्यूमिस्मैटिक ग्रुप। http://www.cngcoins.com. स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Hoard_of_mostly_Mauryan_coins.jpg)।

सिक्के उत्खनन में या मुद्रा भंडार के रूप में पाए जाते हैं। वे ज्यादातर भंडार में पाए जाते हैं, जिनमें से अधिकांश एक खेत की खुदाई करते समय या किसी भवन की नींव की खुदाई करते हुए, सड़क आदि बनाते हुए पाए गए हैं। सिक्कों के अध्ययन को मुद्राशास्त्र कहा जाता है। इसे भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए दूसरा सबसे महत्वपूर्ण स्रोत और शिलालेखों को पहला स्रोत माना जाता है। भारत और विदेशों के विभिन्न संग्रहालयों में कई सौ हज़ार सिक्के जमा किए गए हैं। व्यवस्थित खुदाई में पाए गए सिक्के संख्या में कम हैं, लेकिन बहुत

मूल्यवान हैं क्योंकि उनसे कालक्रम और सांस्कृतिक संदर्भ को ठीक से तय किया जा सकता है।

सिक्का एक धातु मुद्रा है और इसका एक निश्चित आकार, और वजन मानक है। इस पर जारी करने वाले प्राधिकरण की मुहर भी मिल सकती है। उस सतह पर जहाँ संदेश लिखा जाता है उसे अग्र व विपरीत पक्ष को उल्टा (reverse) कहा जाता है। प्रारंभिक भारतीय इतिहास में दूसरा शहरीकरण (लगभग 6वीं शताब्दी बी.सी.ई.) पहला उदाहरण है, जहाँ हमें सिक्के के साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों प्रमाण मिलते हैं। यह राज्यों के उदय, कस्बों और शहरों के विकास और कृषि और व्यापार के प्रसार का समय था। प्रारंभिक भारत में सिक्के तांबे, चांदी, सोने और सीसे से बनते थे। पकी मिट्टी के बने सिक्के के सांचे, जो कुषाण काल (पहली तीन शताब्दियों सी.ई.) से संबंधित हैं, सैकड़ों में पाए गए हैं। वे इस समय के समृद्ध वाणिज्य को दर्शाते हैं। मौर्योत्तरकालीन सिक्के सीसा, पोटिन, तांबा, कांस्य, चांदी और सोने से बने थे उन्हें बड़ी संख्या में जारी किया गया था जिसमें हमें व्यापार में हुई वृदधि के संकेत मिलते हैं।

प्रमुख राजवंशों से संबंधित अधिकांश सिक्कों को सूचीबद्ध और प्रकाशित किया गया है। उपमहाद्वीप में सबसे पुराने सिक्के आहत सिक्के हैं। ये ज्यादातर चांदी के और कभी-कभी तांबे के होते हैं। कुछ सोने के आहत सिक्के भी मिले हैं लेकिन वे बहुत दुर्लभ हैं और उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। आहत सिक्कों पर केवल प्रतीक मिलते हैं। प्रत्येक प्रतीक को अलग-अलग आहत किया जाता है जो कभी-कभी एक दूसरे को अतिव्याप्त करते हैं। ये सिक्के पूरे देश में तक्षशिला से मगध तक मैसूर या उससे भी आगे दक्षिण पाए गए हैं। उन पर कोई मुद्रा लेख व उत्कीर्णन मौजूद नहीं होता। मगध साम्राज्य के विस्तार के साथ मगध के आहत सिक्कों को प्रतिस्थापित किया गया जो अन्य राज्यों द्वारा जारी किए गए थे। इसके बाद, इंडो-ग्रीक सिक्के भी चांदी और तांबे में हैं और सोने के दुर्लभ हैं। उन पर सुंदर कलात्मक आकृतियाँ चित्रित हैं। इन सिक्कों के अग्रभाग पर राजा की अर्ध प्रतिमा का वास्तविक चित्रण होता था तथा पृष्ठ भाग पर कुछ देवताओं को दर्शाया जाता था। केवल इन सिक्कों के माध्यम से हम 40 से अधिक इंडो-ग्रीक शासकों के बारे में जानते हैं जिन्होंने उत्तर-पश्चिमी भारत में शासन किया था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, इन सिक्कों से हम कई ऐसे शक-पह्लव राजाओं के बारे में जानते हैं जिनके बारे में हमें किसी अन्य स्रोत से कोई जानकारी नहीं मिलती।

इंडो-ग्रीक सिक्के पर देवता। स्रोतः *"अलेक्जेंडर, द ग्रेट एंड बैक्ट्रिया : दि फॉर्मेशन ऑफ ए ग्रीक-फ्रंटियर इन सेंट्रल एशिया"*। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Deities_on_the_coinage_of_Agathokles.jpg)।

कुषाणों ने अपने सिक्के चांदी में कम और सोने और तांबे में ज्यादा जारी किए। उनके सिक्के उत्तर भारत के अधिकांश हिस्सों में वर्तमान बिहार तक पाए जाते हैं। गुप्त सम्राटों ने ज्यादातर सोने और चांदी के सिक्के जारी किए, लेकिन सोने के सिक्के अधिक हैं। भारतीय प्रभाव उन पर शुरू से ही देखा जा सकता है। विमा कडफिसेस के सिक्के पर एक बैल के साथ खड़े शिव की आकृति मिलती है। इन सिक्कों पर मुद्रालेख में राजा स्वयं को महेश्वर यानी शिव का भक्त बताता है। कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव आदि, इन सभी राजाओं के सिक्कों पर यह

चित्रण मिलता है। कुषाण के सिक्कों पर भारतीय देवी-देवताओं के साथ हमें कई फारसी और ग्रीक देवताओं के चित्र भी देखने को मिलते हैं। हालाँकि सबसे पुराने सिक्कों में केवल चिन्ह थे जो बाद में राजाओं, देवताओं के साथ उनकी तिथियों और नामों का भी उल्लेख करते थे। उदाहरण के लिए, पश्चिमी क्षत्रप के सिक्कों पर *शक* संवत् की तिथियाँ मिलती हैं। सिक्कों के प्रचलन ने हमें कई सत्तारूढ़ राजवंशों के इतिहास का पुनर्निर्माण करने में सक्षम बनाया है। सिक्के राजनीतिक संगठन पर बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं। मिसाल के तौर पर, यौधेय और मालव के सिक्के'गण' की विरासत को आगे ले जाते हैं, जो हमें उनके गैर-राजतंत्रीय स्वरूप के बारे में बताता है। दक्कन के सातवाहन सिक्कों पर एक जहाज की छवि समुद्री व्यापार के महत्व की गवाही देती है।

रानी कुमारदेवी और राजा चंद्रगुप्त प्रथम का चित्रण एक गुप्त *स्वर्ण* सिक्के पर। स्थानः ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन। श्रेय : अपलोड आल्ट। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Queen_Kumaradevi_ and_King_Chandragupta_I_on_a_coin.jpg) ।

सिक्कों को ढालने की परंपरा में गुप्तों ने कुषाणों की परम्परा को बनाए रखा। उन्होंने पूरी तरह से अपने सिक्के का भारतीयकरण किया। उन्होंने कई सोने के सिक्के भी जारी किए। *दीनार* के नाम से प्रसिद्ध सिक्के अच्छी तरह बने हुए थे। राजगद्दी पर बैठे राजाओं के विभिन्न मुद्राओं को दर्शाया गया हैः राजाओं को शेर या गैंडे का शिकार करने, धनुष या युद्ध-कुल्हाड़ी पकड़ने, संगीत वाद्य बजाने या *अश्वमेध* यज्ञ करने जैसी गतिविधियों के साथ दर्शाया गया है। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त के सिक्के पर उन्हें *वीणा* बजाते हुए दिखाया गया है।

गुप्तोत्तर काल में सोने के सिक्कों की संख्याओं और शुद्धता में गिरावट आ गई थी। आर.एस. शर्मा की सामंतवाद पर आधारित अत्यधिक विवादास्पद धारणा है। उनके अनुसार सिक्कों की अद्योगति और *कौड़ियों* का बढ़ता उपयोग इस काल के व्यापार और वाणिज्य की गिरावट की ओर संकेत करता है।

1.3.2 शिलालेख

शिलालेख इतिहास लिखने के लिए सबसे महत्वपूर्ण और विश्वसनीय स्रोत हैं। समकालीन दस्तावेज़ होने के कारण शिलालेख बाद के प्रक्षेपों से मुक्त होते हैं। ये उसी रूप में दिखाई देते हैं, जिसमें ये पहली बार उत्कीर्ण किए गए थे। इसमें बाद के समय में कुछ जोड़ना लगभग असंभव है, भोजपत्र, ताड़ के पत्ते, कागज आदि जैसी नरम सामग्री पर लिखे शब्दों की पुनः नक़ल करने की आवश्यकता होती थी क्योंकि पुरानी पांडुलिपियाँ समय के साथ नष्ट हो जाती हैं। नकल करते समय उनकी कुछ त्रुटियों को ठीक किया जाता था और कभी-कभी कुछ जोड़ भी दिया जाता है। शिलालेखों में यह संभव नहीं है। शिलालेखों के अध्ययन

को पुरालेखशास्त्र कहा जाता है। शिलालेख मुहरों, तांबे की प्लेटों, मंदिर की दीवारों, लकड़ी की टुकड़ों, पत्थर के खंभों, चट्टान की सतहों, ईंटों या चित्रों पर उकेरे गए हैं। शिलालेखों पर अंकित लिपि भी इतिहासकार की कई तरह से मदद करती है। प्राचीनतम शिलालेखों पर अंकित लिपि लगभग 2500 बी.सी.ई. की हड़प्पा लिपि है, जो अभी तक पढ़ी नहीं गई है। हड़प्पा की मोहरों पर लेखन को पढ़ने में अभी तक सफलता नहीं मिली।

सर्वप्रथम अशोक के शिलालेख पढ़े गए। ये शिलालेख पूरे उपमहाद्वीप में चट्टान की सतह और पत्थर के स्तंभों पर पाए गए हैं। ये चार लिपियों में लिखे हुए हैं। अशोक के तत्कालिक साम्राज्य जो वर्तमान अफगानिस्तान में था, वहाँ अरामाइक और ग्रीक लिपियों का इस्तेमाल किया गया था। गांधार क्षेत्र में *खरोष्ठी* लिपि प्रयोग में लाई जाती थी। *खरोष्ठी* भारतीय भाषाओं की *वर्ण*माला प्रणाली पर विकसित हुई और यह दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। उनके बाकी साम्राज्य में उत्तर में कलसी से लेकर दक्षिण में मैसूर तक *ब्राह्मी* लिपि प्रयोग की जाती थी।

अशोक के बाद *ब्राह्मी* लिपि को बाद के शताब्दियों के शासकों द्वारा अपनाया गया। इसके बारे में सबसे दिलचस्प बात यह है कि इसके अक्षर समय-समय पर संशोधित किए गए। *ब्राह्मी* से भारत की लगभग सभी लिपियाँ दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम् और नागरी, गुजराती, बंगाली उत्पन्न हुई हैं। *ब्राह्मी* के अक्षरों के संशोधन का एक लाभ हुआ है। इससे उस समय अथवा शताब्दी का पता लगाना लगभग संभव हो गया जिसमें विशेष अभिलेख लिखा गया था। लिपियों के विकास के अध्ययन को पेलियोग्राफी कहा जाता है।

अशोक के शिलालेखों को पढ़ने का श्रेय जेम्स प्रिंसेप को जाता है। इसके बाद पुरालेख का अध्ययन अपने आप में एक विषय बन गया। वे बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी में एक सिविल सेवक थे। अशोक के शिलालेख अपने आप में अनुपम है। उनके शासन काल के विभिन्न वर्षों में रिकॉर्ड किए गए थे। उन्हें शिलालेख कहा जाता है क्योंकि वे राजा के आदेश के रूप में हैं। वे न केवल अपने विषयों बल्कि संपूर्ण मानवता के कल्याण से संबंधित एक उदार राजा की छवि और व्यक्तित्व की झलक भी देते हैं।

अशोक के शिलालेखों की लिपि काफी विकसित है। यह माना जाता है कि लेखन-कार्य उससे पहले के काल में भी किया जाता होगा। श्रीलंका में अनुराधापुरा की खुदाई में छोटे लेखों वाले बर्तन मिले हैं, जिसे चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के मौर्य काल के पूर्व, का माना जा सकता है। संस्कृत का पहला शिलालेख लगभग पहली शताब्दी बी.सी.ई. का मिलता है। रुद्रदमन के जूनागढ़ शिलालेख को दूसरी शताब्दी के मध्य में लिखे गए शुद्ध संस्कृत का प्रारंभिक उदाहरण माना जाता है। प्राकृत और संस्कृत के मिश्रण वाला प्रारंभिक अभिलेख लगभग 5वीं शताब्दी सी.ई. में मिलता है, जिसका स्थान शाही अभिलेखों की भाषा के रूप में संस्कृत ने ले लिया।

अभिलेख विभिन्न प्रकार के थे। अशोक के शिलालेख राजकीय आदेश थे जो सामान्य रूप से अधिकारियों या लोगों को संबोधित थे व सामाजिक, धार्मिक और प्रशासनिक मामलों से संबंधित थे। अशोक का लुम्बिनी स्तंभलेख एक स्मारक शिलालेख है क्योंकि अशोक द्वारा की गई बुद्ध के जन्मस्थान की यात्रा को दर्ज करता है। फिर, *सती* (*sati* stones) तथा नायक (hero stones) के स्मारक मिले, जिनमें से कुछ पर अभिलेख मिलते हैं। मंदिर के निर्माण को रिकॉर्ड करने वाले दान अभिलेख सैकड़ों की संख्या में प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में दक्कन और दक्षिण भारत में पाए गए हैं। इनके अलावा, हमारे पास ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण राजकीय भूमि-अनुदानों के कई हज़ार शिलालेख मिलते हैं। ये दान के दस्तावेज़ हैं जो *ब्राह्मणों* और अन्य लाभार्थियों को दिए गए भूमि और अन्य वस्तुओं के अनुदान रिकॉर्ड करते हैं। यद्यपि ये भूमि-अनुदान शिलालेख मंदिरों, देवताओं, *ब्राह्मणों* आदि को भूमि की बिक्री या दान से

संबंधित हैं, लेकिन अधिकांशतः वे दानदाताओं के वंश और अन्य आर्थिक जानकारी का विवरण भी देते हैं। इस प्रकार, ये राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास का एक बड़ा स्रोत हैं। इनसे हमें भूमि के अनुदान के बारे में भी पता चला, जो सभी करों से मुक्त ब्राह्मणों को दी गई थीं। इन्हें *अग्रहार* कहा जाता था।

शिलालेख जो उनके संरक्षकों की प्रशंसा में लिखे गए हैं, एक *प्रशस्ति* के साथ शुरू होते हैं। उदाहरण हेतु प्रथम शताब्दी बी.सी.ई. से प्रथम शताब्दी सी.ई. के कलिंग (ओडिशा) के राजा खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख और गुप्त राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख हैं। क्षहरत, शक-क्षत्रप और कुषाणों के शिलालेख दो या तीन पीढ़ियों के नामों को दर्शाते हैं। ये शिलालेख उन्हें सामाजिक और धार्मिक कल्याण कार्यों में लगे हुए दिखाते हैं। जैसा कि हमने पहले जाना कि, गुप्त काल में संस्कृत का प्रमुख स्थान था। इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख समुद्रगुप्त की उपलब्धियों को दर्शाता है। लेकिन इस एकमात्र शिलालेख के बिना यह महान गुप्त शासक अज्ञात रह जाता। अधिकांश गुप्त शासक अपनी वंशावली देते हैं। बाद के राजवंशों की यह प्रथा बन गई। वे अपने विजय के की कथाओं सहित अपने पूर्ववर्तियों की विजय और उपलब्धियों व उत्पत्ति के मिथक विवरण भी देते थे। चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने अपने ऐहोल शिलालेख में वंशावली और उपलब्धियों के बारे में बताया है। इसी तरह, भोज का ग्वालियर शिलालेख उनके पूर्ववर्तियों और उनकी उपलब्धियों का पूरा विवरण देता है। कुछ शिलालेख बांध, जलाशय, टैंक, तथा धर्मार्थ भोजन घर आदि के निर्माण को रिकॉर्ड करते हैं। शक शासक रुद्रदमन के जूनागढ़ (गिरनार) शिलालेख में चंद्रगुप्त मौर्य के समय सुदर्शन झील नामक एक जलाशय के निर्माण का रिकॉर्ड है। अशोक के शासनकाल में इसे पूर्ण किया गया और लगभग दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में इसकी मरम्मत की गई। इस तरह विभिन्न प्रकार के शिलालेखों के अलावा, हम विविध प्रकारों जैसे भित्तिचित्र, धार्मिक सूत्र और मुहरों पर लेखन-कार्य पाते हैं।

शिलालेख राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास का एक अच्छा स्रोत हैं। वे इतिहासकारों के लिए मूल्यवान हैं क्योंकि वे हमें समकालीन घटनाओं और आम लोगों के बारे में बताते हैं। उनका प्रसार राजा के विस्तार क्षेत्र के बारे में बताता है। कई शिलालेखों में वंशावली विवरण और कभी-कभी, उन राजाओं के नाम भी शामिल होते हैं, जो मुख्य वंशावली में छूट गए हैं। पल्लव, चालुक्य और चोल काल के भूमि अनुदान हमें समकालीन राजस्व प्रणालियों, कृषि विवरण और राजनीतिक संरचनाओं की जानकारी प्रदान करते हैं।

शिलालेखों के कई अन्य उपयोग भी हैं। उदाहरण के लिए, वे हमें मूर्तियों की तिथियों के बारे में बताते हैं। वे हमें विलुप्त होने वाले धार्मिक संप्रदायों के बारे में बताते हैं, वे हमें *अजीविका* पंत, ऐतिहासिक भूगोल, मूर्तिकला का इतिहास, कला और वास्तुकला, साहित्य और भाषाओं का इतिहास और यहां तक कि संगीत जैसी कला के बारे में भी जानकारी देते हैं। वे साहित्यिक ग्रंथों की तुलना में अधिक विश्वसनीय हैं क्योंकि वे हमेशा धार्मिक नहीं होते हैं।

1.3.3 स्मारक

पुरालेखशास्त्र और मुद्राशास्त्र के स्रोतों के अलावा कई अन्य पुरातन अवशेष हैं जो हमारे अतीत के बारे में बताते हैं। गुप्तकाल से लेकर वर्तमान काल तक देश भर में मंदिर और मूर्तियाँ मिलती हैं। ये स्थापत्य कलात्मक इतिहास और भारतीय संस्कृति की उपलब्धियों को दर्शाते हैं। अजंता और एलोरा जैसी बड़ी गुफाओं की खुदाई पश्चिमी भारत की पहाड़ियों में की गई हैं। उसमें *चैत्य* और *विहार* मिले हैं। एलोरा के कैलाश मंदिर और मामल्लपुरम के रथ-मंदिरों को पत्थरों को काटकर बनाया गया है। मध्ययुगीन काल के स्मारकों से शासक वर्ग की भव्यता और धन का विवरण मिलता है। इसके अलावा, वे वास्तुकला की क्षेत्रीय शैलियों, विभिन्न क्षेत्रों के प्रभाव पर प्रकाश डालते हैं।

पुरातात्विक खुदाई में बुद्ध के समय से संबंधित तक्षशिला, कौशाम्बी, काशी (राजघाट), अयोध्या, वैशाली, बोधगया आदि की बस्तियों को प्रकाश में लाया गया। कहा जाता है कि तक्षशिला को छोड़कर इन सभी स्थानों पर 6वीं शताब्दी बी.सी.ई. में बुद्ध ने यात्रा की थी।
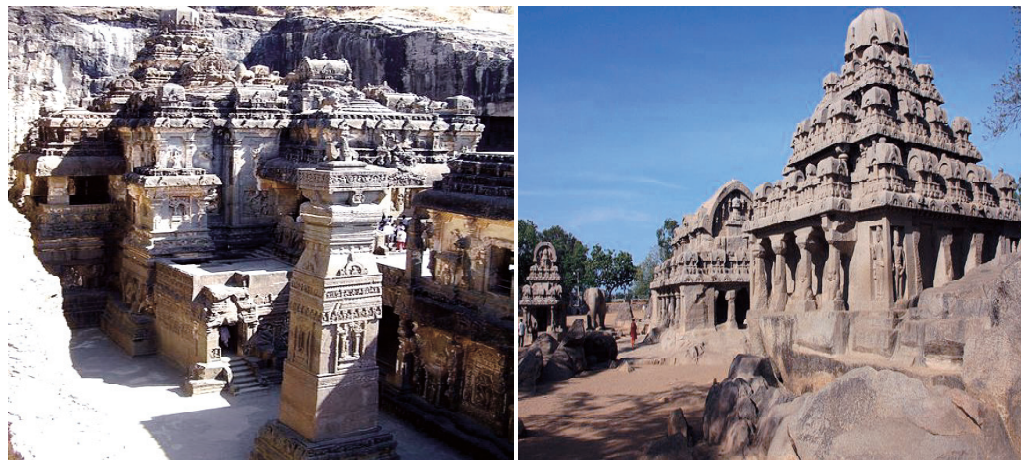
बाएँ : महाराष्ट्र के औरंगाबाद की एलोरा गुफाओं में कैलाश मंदिर। एएसआई स्मारक संख्या N-MH-A51। श्रेय : रश्मि.परब। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Kailas_Temple_at_Ellora_Caves.jpg)।

दाएँ : तमिलनाडु के चेन्नई के मामल्लपुरम में पंच-रथों का मंदिर (पांच-रथ)। *श्रेयः* हॉवर्ड बानवेल स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Five_Rathas_Mamallapuram.JPG)।

कौशाम्बी (प्रयागराज जिला, उत्तर प्रदेश) में एक मठ के पुरातात्विक अवशेष। श्रेय : विनोद 26 जैन। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons. wikimedia.org/wiki/File: Ghoshitaram_monastery_in_Kosambi.jpg)।

1.4 विदेशी वृत्तांत

कई आगंतुक, तीर्थयात्रियों, व्यापारियों, अधिवासी, सैनिकों तथा राजदूतों के रूप में भारत आए। उन्होंने जिन जगहों और वस्तुओं को देखा, उन पर अपना विवरण दे गए। यदि इनका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए तो ये लेख बहुत सारी ऐतिहासिक जानकारी देते हैं। यूनानी सैंड्रोकोट्टस का उल्लेख मिला है जिनके बारे में कहा जाता है कि वे एक युवा व्यक्ति के रूप में सिकंदर से मिले थे। 18वीं शताब्दी में विलियम जोन्स ने सैंड्रोकोट्टस को चन्द्रगुप्त

मौर्य के रूप में पहचाना जो मौर्य कालक्रम का आधार बना। ग्रीक राजाओं द्वारा पाटलिपुत्र में राजदूत भेजे गए थे। उनमें से कुछ मेगस्थनीज़, डायमेकस और डायोनिसियस थे। सेल्यूकस के दूत मेगस्थनीज़ ने *इंडिका* में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में अपने ठहरने का विवरण दिया है। हालाँकि ये मूल-ग्रंथ अब मौजूद नहीं है लेकिन बाद के लेखक इसके कुछ भागों का उल्लेख करते हैं, जिससे मौर्य काल की प्रशासनिक संरचना, सामाजिक वर्गों और आर्थिक गतिविधियों का पुनर्निर्माण संभव हो पाया। मेगस्थनीज़ और सिंकदर के साथ आने वाले विदेशियों के विवरण लुप्त हो गए हैं। अब वे केवल खंडों में उपलब्ध हैं।

ग्रीक और रोमन यात्रियों के विवरण प्रारंभिक भारत में हिन्द महासागर के व्यापार के बारे में उपयुक्त जानकारी देते हैं। मिस्र में बसे एक अज्ञात ग्रीक लेखक ने लगभग 80 सी.ई. में भारतीय तट की अपनी व्यक्तिगत यात्रा के आधार पर *पेरिप्लस ऑफ एरीर्थिन सी* (*Periplus of the Erythrean Sea*) लगभग 80-115 सी.ई. में लिखी। वह भारतीय तटों के बारे में बहुमूल्य जानकारी प्रदान करता है। एक अन्य लेखक टॉलेमी ने 2वीं शताब्दी सी.ई. में भारत का एक भौगोलिक ग्रंथ *जियोग्राफी* (*Geography*) लगभग 150 सी.ई. में लिखा था। *पेरिप्लस ऑफ एरीर्थिन सी* और टॉलेमी का *जियोग्राफ,* ग्रीक में लिखे गए दोनों ग्रंथ भारत के भूगोल और प्राचीन व्यापार के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। स्ट्रैबो, एरियन, प्लिनी द एल्डर के शुरुआती यूनानी और लैटिन विवरणों में हमें भारतीय समुद्री व्यापार के बारे में पता चलता है। एरियन ने सिकंदर द्वारा भारत पर किए गए आक्रमण का विस्तृत विवरण लिखा। उसने इस अभियान के साथ आने वाले लोगों से मिली जानकारी के आधार पर लिखा है।

भारत के बारे में जानकारी देने वाले अधिकांश ग्रीक विवरण द्वितीयक स्रोतों पर आधारित हैं जिसके परिणामस्वरूप इनमें कई त्रुटियाँ और विरोधाभास हैं। इसलिए, उनका उपयोग करते समय सतर्क रहना चाहिए। यूनानी लेखक भारतीय भाषाओं और रीति रिवाजों से अनभिज्ञ थे। उनकी जानकारी अविश्वसनीय तथ्यों और सूचनाओं से भरी हुई है। उदाहरण के लिए, मेगस्थनीज़ अपने प्रवास के समय भारत में सात जातियों का उल्लेख करता है। ये जातियाँ "व्यावसायिक वर्गों" के साथ भ्रम पैदा करती हैं।

विदेशी शिलालेख जैसे डेरियस के विवरण भारत के बारे में जानकारी देते हैं। हेरोडोटस और टेसियस ने फारसी स्रोतों के माध्यम से भारत के बारे में अपनी जानकारी प्राप्त की। हेरोडोटस द्वारा लिखित "*हिस्टरीज़*" (*Histories*) भारत फारस के संबंधों के बारे में जानकारी देता है।

चीनी यात्रियों ने समय-समय पर भारत का दौरा किया। वे बौद्ध तीर्थयात्री के रूप में यहाँ आए थे और इसलिए उनके विवरणों में बौद्ध धर्म के प्रति झुकाव दिखाई देता है। फ़ा-हसीन अथवा फा-हियान नामक चीनी यात्री 5वीं शताब्दी सी.ई. में और ह्वेनत्सांग तथा इत्सिंग 7वीं शताब्दी में भारत आए थे। इन चीनी बौद्ध भिक्षुओं ने काफी विस्तृत यात्रा विवरणों को दिया जिनका अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। उन्होंने कई पवित्र स्थानों और बौद्ध मन्दिरों का दौरा किया। फा-हियान ने 399-414 सी.ई के बीच भारत की यात्रा की लेकिन उसकी यात्रा उत्तर भारत तक ही सीमित थी। ह्वेन-त्सांग ने 639 सी.ई. में ही अपना घर छोड़ दिया और भारत में 10 साल तक रहा। फा-हियान ने गुप्त और ह्वेन-त्सांग ने हर्षवर्धन के समय के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन किया।

बाएँ: अशोक के महल के खंडहर में फा-हियान। श्रेय: हचिन्सन्स स्टोरी ऑफ द नेशन्स। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Fa_Hien_at_the_ruins_of_Ashoka_palace.jpg)।

दाएँ: अपनी भारत यात्रा पर अग्रसर चीनी भिक्षु ह्वेन-त्सांग का चित्रण। स्थान : टोक्यो राष्ट्रीय संग्रहालय। श्रेय : एलेक्सकैन। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Xuanzang_w.jpg)।

बाद के समय में कुछ अरब यात्रियों ने भी भारत के बारे में अपने विवरण दिए। इन अरब विद्वानों में सबसे प्रसिद्ध अबू रिहान थे जिन्हें हम अल-बरूनी के रूप में जानते हैं। वे खिव (आधुनिक तुर्कमेनिस्तान) के क्षेत्र के थे और गज़नी के महमूद के समकालीन थे। भारत के लोगों के बारे में जानन के लिए उन्होंने भारतीय ग्रंथों को उनकी मूल भाषा में अध्ययन किया। उन्होंने जो लिखा वह उनके भारतीय समाज और संस्कृति के ज्ञान पर आधारित है, यह ज्ञान उन्होंने साहित्य के माध्यम से हासिल किया था। इसके लिए उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। हालाँकि, वह अपने समय की कोई राजनीतिक जानकारी नहीं देते हैं। लेकिन उनकी रचना *तहकीक-ए-हिन्द* वास्तव में एक विश्वकोश है। इसमें भारतीय लिपियों, विज्ञान, भूगोल, ज्योतिष, खगोल विज्ञान, दर्शन साहित्य, विश्वास, रीति-रिवाजों, धर्मों, त्योहारों, अनुष्ठानों, सामाजिक मानदंडों और कानूनों जैसे विषयों को शामिल किया गया है। अल्बरूनी की रचना 11वीं शताब्दी के भारत के लिए एक मूल्यवान ऐतिहासिक स्रोत हैं। उन्होंने पहली बार गुप्त काल के शुरुआती वर्ष की पहचान कराई। अरब और भारत के लोग समुद्री व्यापार करते थे। अरब यात्रियों जैसे सुलेमान के विवरण में भारत का उल्लेख मिलता है।

12वीं शताब्दी की शुरुआत के साथ हमें शासकों द्वारा अधिकृत और दरबारियों द्वारा लिखित आधिकारिक इतिहास मिलना शुरू हो जाता है। इसका सबसे पहला उदाहरण मिन्हाज-उद-दीन-सिराज द्वारा लिखित *तबकात-ए-नासिरी* है। तत्पश्चात् हमें मध्ययुगीन इतिहास के ऐसे महत्वपूर्ण स्रोत मिलते हैं, जैसे:

- ज़िया-उन-दिन बरानी द्वारा लिखित *तारिख़-ए-फ़िरोज़ शाही,*
- मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता द्वारा रचित *गुलशन-ए-इब्राहिमी,*

- अबुल फज़ल द्वारा लिखित *आइने-ए-अकबरी* और *अकबरनामा,*
- निज़ामुद्दीन अहमद द्वारा लिखित *तबक़ात-ए-अकबरी,* इत्यादि।

शाहजहाँ और औरगज़ेब की काल के बारे में हमारे पास दरबारियों द्वारा लिखित पर्याप्त ऐतिहासिक स्रोत हैं। दरअसल, आधुनिक काल के बारे में भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, फ्रेंच और डच भाषाओं में ऐतिहासिक सामग्री की कोई कमी नहीं है।

बोध प्रश्न 2

1) पुरातत्व क्या है? प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए मुख्य पुरातात्विक स्रोतों की गणना करें।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों को सही (✓) या गलत (×) के रूप में चिह्नित करें:

   i) इंडो-ग्रीक लोगों के इतिहास का पुनर्निर्माण सिर्फ उनके सिक्कों के आधार पर किया जा सकता है।

   ii) पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्कों पर हम विक्रम युग की तिथियाँ मिलती हैं।

   iii) आहत सिक्के सबसे पहले केवल चाँदी के होते थे।

   iv) मेगस्थनीज़ पुष्यमित्र शुंग के दरबार में रहा था।

   v) ब्राह्मणों को दी जाने वाली करमुक्त भूमि को *अग्रहार* कहा जाता था।

   vi) रुद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख प्राकृत और संस्कृत की मिश्रित भाषा में है।

   vii) पेरिप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी (लगभग 80-115 सी.ई.) यूनानी भाषा में लिखा गया था।

   viii) विम कडफिसेस के सिक्के पर एक बैल के पास खड़े विष्णु की आकृति मिलती है।

   ix) अशोक के शिलालेखों को पहली बार 1837 में जेम्स प्रिंसेप ने पढ़ा था।

   x) गुप्त राजाओं ने कई सोने के सिक्के जारी किए जिन्हें *दीनार* कहा जाता था।

3) प्राचीन भारत में बुद्ध के समय से लेकर गुप्त काल तक के सिक्कों के ऐतिहासिक विकास पर एक टिप्पणी लिखें।

....

....

....

....

....

4) *प्रशस्ति* शिलालेखों से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

5) चीनी बौद्ध तीर्थयात्रियों फा-हियान और ह्वेनत्सांग द्वारा लिखे गए विवरणों के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालें।

....

....

....

....

....

1.5 सारांश

इस इकाई में आपने विभिन्न प्रकार के स्रोतों के बारे में जाना जिनका उपयोग इतिहासकार अतीत का अध्ययन करने के लिए करते हैं। पुरातत्व और साहित्यिक ग्रंथ दोनों महत्वपूर्ण हैं। दुर्भाग्य से, कई पुरातात्विक उत्खनन अब तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। हज़ारों शिलालेखों का अध्ययन बाकी है। परिणामस्वरूप, अतीत के बारे में हमारी जानकारी अभी पूर्ण नहीं है।

पुरातात्विक उत्खनन और अन्वेषण से पता चलता है कि मानव ने पाषाण काल में ही भारत के अधिकांश हिस्सों पर अधिकार कर लिया। जिसकी पुरातनता 1.6 करोड़ वर्ष आंकी जा सकती है। प्रागैतिहास के क्षेत्र में बहुत शोध किया गया है जिससे पता चलता है कि मानव गतिविधियाँ भारतीय उपमहाद्वीप में दो करोड़ साल पहले शुरु हो गई थी। यहाँ तक कि थार रेगिस्तान में मानव गतिविधियाँ लगभग 90,000 वर्षों पुरानी मानी जाती हैं।

हड़प्पा सभ्यता के स्थलों तथा मोहनजोदड़ों और हड़प्पा नगरों की खोज ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता की प्राचीनता को कई हज़ार साल पीछे धकेल दिया। इसी तरह, भारत के विभिन्न हिस्सों में उत्खनन और अन्वेषण में भारत में कृषि के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। अब हम जानते हैं कि भारत में कृषि की शुरुआत लगभग 8000 साल पहले हुई थी। इसके अलावा, पुरातात्विक खोजों से पता चलता है कि भारत में पत्थरों पर चित्रकारी करने की परम्परा 12,000 से अधिक वर्ष पहले ही शुरु हो गई थी।

एक और महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि ऐतिहासिक ग्रंथों और साहित्यिक साक्ष्यों के दिनांकन को निश्चितता के साथ निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह चिंता का कारण है। प्राचीन भारतीय साहित्य का अधिकांश हिस्सा कर्मकांड और धर्म से जुड़ा हुआ है। इसलिए इसका अध्ययन करते समय इसकी विभिन्न परतों की जाँच-पड़ताल अति आवश्यक है ताकि इस पर कुछ हद तक सामाजिक नियंत्रण रखा जा सके।

1.6 शब्दावली

पुरातत्व (Archaeology) : अतीत को समझने के लिए विभिन्न वस्तुओं के अवशेषों का अध्ययन।

पुरावशेष (Artifact) : आम तौर पर सांस्कृतिक या ऐतिहासिक रुचि हेतु मनुष्य द्वारा बनाई गई वस्तु।

ब्राह्मणवाद (Brahmanical) : ब्राह्मणों अथवा ब्राह्मणों से सम्बन्धित उनके सिद्धान्त, उपदेश, लोकाचार या पूजा।

वैधानिक (Canonical) : यदि किसी चीज को वैधानिक स्थिति प्राप्त है तो उसके सभी गुणों को स्वीकार किया जाता हैः आदेशात्मक; प्रामाणिक।

ताम्रपाषाणिक संस्कृति (Chalcolithic Culture) : वह संस्कृति जिसमें पत्थर और तांबे के उपकरण का उपयोग किया जाता था।

शास्त्रीय (Classical) : पारंपरिक और लम्बे समय से स्थापित रूप या शैली के भीतर एक अनुकरण मानक का प्रतिनिधित्व करना। प्राचीन ग्रीक या लैटिन साहित्य, कला अथवा संस्कृति से संबंधित।

समालोचनात्मक संस्करण (Critical edition) : एक साहित्यिक ग्रंथ का विस्तृत पठन और विस्तृत विश्लेषण।

दिगंबर : जैन धर्म के दो मुख्य संप्रदायों में से एक संप्रदाय जो मत-विभेद के परिणाम स्वरूप 80 सी.ई. में बना था और दक्षिण भारत में आज तक है। इस संप्रदाय के तपस्वी पुरुष अथवा सदस्य संपत्ति-स्वामित्व को अस्वीकार करते हैं और वस्त्र नहीं पहनते।

स्तुति (Eulogy) : भाषण या लेखन का एक अंश जो किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की अत्यधिक प्रशंसा करता है, अर्थात् एक प्रकार की श्रद्धांजलि।

भातृघातक (Fratricidal) : एक परिवार या संगठन के भीतर *संघर्ष* से संबंधित।

हड़प्पा सभ्यता : कांस्य युग की सभ्यता लगभग 3300-1300 बी.सी.ई. /परिपक्वता की अवधिः 2600-18800 बी.सी.ई. जो मुख्य रूप से भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में पनपी। इसमें आधुनिक भारत (गुजरात, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, जम्मू और कश्मीर राज्य) और पाकिस्तान (सिंध, पंजाब और बलूचिस्तान प्रांत) के मुख्य शहर जैसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल, कालीबंगन आदि शामिल हैं।

प्रक्षेप (Interpolation) : आमतौर पर एक पाठ में बाद में जोड़ा जाता है।

कलि युग : विश्व के चार युगों में से अंतिम युग जो संस्कृत के ग्रंथों में वर्णित समय के चक्र के हिस्से के रूप में जाना जाता है; अन्य युग : सत्य, त्रेता और द्वापर हैं। यह दानव कलि से संबंधित है। इसे देवी काली के साथ भ्रमित नहीं करना चाहिए। कलि युग के "कलि" का अर्थ है "संघर्ष", "कलह", "झगड़ा" या "विवाद"। पुराणिक स्रोतों के अनुसार कृष्ण के प्रस्थान से द्वापर युग का अंत और कलियुग की शुरुआत का संकेत मिलता है।

महापाषाण काल (Megalithic) : प्रागैतिहासिक स्मारकों के साथ संबद्ध, आमतौर पर बड़े/ विशाल पत्थरों से बनी कब्रें।

मध्यपाषाण काल (Mesolithic) : पुरापाषाण काल और नवपाषाण काल के बीच का पाषाण काल। इस काल में माइक्रोलिथ्स अर्थात् सूक्ष्म उपकरण (छोटे, महीन पत्थर के औज़ार पाए जाते हैं)।

नवपाषाण काल (Neolithic) : पाषाण काल का अंतिम चरण जब पॉलिश किए गए पत्थर के हथियारों और उपकरणों का उपयोग किया जाता था।

निकाय : यह एक पाली शब्द है जिसका अर्थ है "मात्रा", "संग्रह", "संयोजन", "वर्ग" या "समूह"। इसका उपयोग आमतौर पर *सुत्त पिटक* के बौद्ध ग्रंथों के संदर्भ में किया जाता है, लेकिन इसका उपयोग थेरावाद बौद्ध धर्म के मठों के विभाजन को दर्शाने के लिए भी किया जा सकता है।

पुरापाषाण काल (Paleolithic) पाषाण काल का प्रारंभिक चरण, लगभग 2.5 करोड़ वर्ष पहले तक, जब आदिम पत्थर के औज़ारों का उपयोग करता था।

पाठ : वैदिक मंत्रों के जाप के तरीके।

प्रागैतिहासिक काल (Prehistoric Period) : होमिनिन्स द्वारा लगभग तीन करोड़ वर्ष पहले पत्थर के औज़ारों के उपयोग की अवधि और लगभग 5000 साल पहले के शुरुआती लेखन प्रणालियों की उपस्थिति।

आद्य-ऐतिहासिक काल (Proto-historic Period) : प्रागैतिहास और इतिहास के बीच का संक्रमण काल जिसके दौरान एक संस्कृति या सभ्यता ने अभी तक अपना लेखन विकसित नहीं किया है, लेकिन अन्य संस्कृतियों ने अपने लेखन में इसके अस्तित्व का उल्लेख किया है। एक उदाहरण का हवाला देते हुए, यूरोप में केल्टिक और जर्मनिक जनजातियों को आद्य-ऐतिहासिक माना जाता है, क्योंकि उनका विवरण प्राचीनतम ग्रीक और रोमन स्रोतों में मिलता है।

श्वेतांबर : जैन धर्म के इस संप्रदाय के तपस्वी सफेद वस्त्र पहनते हैं।

साइलो (Silo) : खेत में एक लंबा बुर्ज या गड्ढ़ा जो अनाज रखने के लिए उपयोग किया जाता था।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 1.1 देखिए।

2) उपभाग 1.2.1 देखिए।

3) उपभाग 1.2.4 देखिए।

4) (i) × (ii) ✓ (iii) ✓ (iv) × (v) ×
(vi) ✓ (vii) × (viii) ✓ (ix) × (x) ×

बोध प्रश्न 2

1) भाग 1.3 देखिए। सिक्कों, शिलालेखों और स्मारक/स्मारक अवशेषों पर चर्चा कीजिए।

2) (i) ✓ (ii) × (iii) × (iv) × (v) ✓
(vi) × (vii) ✓ (viii) × (ix) ✓ (x) ✓

3) उपभाग 1.3.1 देखिए।

4) उपभाग 1.3.2 देखिए।

5) भाग 1.4 देखिए।

1.8 संदर्भ ग्रंथ

बाशम, ए. एल. (2004) *द वंडर दैट वाज़ इंडियाः ए सर्वे ऑफ द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन सब-कॉन्टीनेंट बिफोर द कमिंग ऑफ द मुस्लिम्स*, वॉल्यूम 1, पैन मैकमिलन लिमिटेड।

शर्मा, अरविंद (2003) "डिड द हिंदूज लैक ए सैंस ऑफ हिस्ट्री?" *न्यूमेन*, वाल्यूम 50 (2), पृ. सं. 190-227, ब्रिल।

शर्मा, आर.एस. (2005) *इंडियाज़ एंशियंट पॉस्ट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (ओयूपी), नई दिल्ली।

सिंह, उपिंदर (2008) *ए हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट एंड अर्ली मेडीवल इंडियाः फ्रॉम द स्टोन एज टू द ट्वेल्फ्थ सेंचुरी*, डोरलिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा. लिमिटेड।

थापर, रोमिला (2000) "हिस्टोरिकल कौन्शियसनस इन अर्ली इंडिया" *कल्चरल पॉस्ट्स : एस्सेज़ इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (ओयूपी), नई दिल्ली, पृ. सं. 155-172।

.... (2000) "द ओरल एंड रिटेन इन अर्ली इंडिया" *कल्चरल पॉस्ट्स : एस्सेज़ इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (ओयूपी), नई दिल्ली, पृ. सं. 195-212।

.... (2002) *द पेंग्विन हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडियाः फ्रॉम द ऑरिजिन्स टू ए.डी. 1300*, पेंगुइन बुक्स इंडिया प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली।

वरदराजन, लोटिका (1979) "ओरल टेस्टीमॉनी एज. हिस्टोरिकल सोर्स मैटिरियल फॉर ट्रेडिशनल एंड मॉडर्न इंडिया" *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिक्ल वीकली*, वॉल्यूम 14, संख्या 24, पृ.सं. 1009-1014।

इकाई 2 एक स्रोत के रूप में पुरातत्व विज्ञान और प्रमुख पुरातात्विक-स्थल*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे:

- अतीत के पुनर्निर्माण में पुरातत्व एक स्रोत के रूप में;
- पुरातात्विक स्थल क्या है और वे कैसे बनते हैं?;
- पुरातत्व में क्षेत्रीय कार्य (field work) और तथ्यों के संकलन की विधियाँ;
- पुरातात्विक साक्ष्यों के परीक्षण हेतु प्रयोग की जाने वाली विभिन्न तकनीकों के बारे में जानेंगे कि वे अतीत के बारे में हमें क्या बताते हैं; और
- भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ प्रमुख पुरातात्विक स्थलों के बारे में।

* डॉ. दीपक के. नायर, सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, एस.जी.एन.डी. खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

2.1 प्रस्तावना

इतिहास और पुरातत्व दोनों एक ही उद्देश्य अर्थात् अतीत के पुनर्निर्माण में अपनी भागीदारी निभाते हैं। हालाँकि, अतीत के पुनर्निर्माण हेतु उनके स्रोत और तरीके भिन्न होते हैं। इतिहास में लिखित स्रोतों का प्रयोग होता है। इसके विपरीत पुरातत्व अवशेषों के रूप में उन सामग्रियों का अध्ययन करता है, जो पृथ्वी पर मनुष्यों द्वारा बनाई और उपयोग की गईं थीं। ये अवशेष मानव व्यवहार और अनुभव से जुड़ी जानकारी देती हैं। ये अवशेष उन वस्तुओं की एक विस्तृत शृंखला हैं, जिन्हें लोगों ने इस्तेमाल किया और फेंक दिया, जैसे कि पत्थर के औज़ार, इमारतें, ईंटें, मिट्टी के बर्तन, धातु की वस्तुएँ, मूर्तियाँ, सिक्के, शिलालेख आदि। ये सभी सामग्रियाँ पृथ्वी की सतह और उसके नीचे पुरातात्विक स्रोत के रूप में संरक्षित हैं। इनमें सिक्कों और शिलालेखों के अध्ययन हेतु मुद्राशास्त्र और पुरालेखशास्त्र नामक उप-विषयों को भी जोड़ा गया है।

मानव अतीत को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा गया हैः

i) ऐतिहासिक, और

ii) पूर्व-ऐतिहासिक काल।

ऐतिहासिक काल की शुरुआत उस समय हुई, जब लगभग 5000 साल पहले विभिन्न क्षेत्रों में लेखन कार्य शुरू हुआ। बाद में जैसे-जैसे लेखन का विकास हुआ, उसका उपयोग तथ्यों के संकलन तथा साहित्यिक लेखन आदि में किया गया। हालाँकि, साक्षर काल मानव अतीत का एक बहुत छोटा हिस्सा है, जो पिछले कुछ हज़ार वर्षों की जाँच-पड़ताल करने में हमारी मदद करता है। जबकि प्रागैतिहासिक काल की शुरुआत तीस लाख साल पहले मानव जाति की उत्पत्ति से हुई। हालांकि, पुरातत्व प्रागैतिहासिक काल तक ही सीमित नहीं है, लेकिन समय-समय पर मनुष्यों द्वारा छोड़ी गई सभी सामग्रियों का अध्ययन किया जाता है। इसलिए, पुरातत्वविदों ने प्रागैतिहासिक उपकरणों से लेकर वर्तमान में दैनिक उपयोग की वस्तुओं तक सभी का अध्ययन किया ळें

पुरातत्व का इतिहास

प्रत्येक समाज अपने अतीत से जुड़ा होता है। पुरातत्व की उत्पत्ति का पता सुंदर पुरानी चीजों और खजानों की खोज के आकर्षण से लगाया जा सकता है। 1817 में डेनिश विद्वान सी. जे. थामसन ने पुरातत्व के प्रारंभिक चरण को पाषाण युग, कांस्य युग तथा लौह युग में बाँटा। उस समय के पुरातत्व में ग्रंथ-आधारित पुरातत्व और प्रागैतिहासिक पुरातत्व शामिल थे, जो ग्रंथों पर आधारित नहीं थे। आज यह कई विषयों जैसे पर्यावरण पुरातत्व, जैव-पुरातत्व, भू-पुरातत्व आदि में बँट गया है।

भारत में भी पुरातत्व की शुरुआत ऐसे ही हुई। यह प्राचीन वस्तुओं को इकट्ठा करने की कला के बाद औपनिवेशिक काल के दौरान हुए साहसिक खोज के साथ शुरू हुआ। इसमें उत्खनन और प्रासंगिक विश्लेषण के कठोर तरीकों के बिना स्थलों और अवशेषों का अध्ययन किया गया था। शुरुआत में ग्रंथ-आधारित पुरातत्व का प्रभुत्व था। सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग का विस्तार से सर्वेक्षण किया। कनिंघम ने चीनी तीर्थयात्रियों जैसे ज़ुआन ज़ंग के वृत्तांत में उल्लिखित शहरों और बस्तियों की पहचान करने की कोशिश की। 1861 में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (एएसआई) की स्थापना की गई। इसके पहले महानिदेशक कनिंघम थे। 19वीं

शताब्दी के अंतिम दशकों में कई क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया, स्मारकों का मानचित्र और संकलन तैयार किया गया। 20वीं सदी की शुरुआत में, वायसराय लॉर्ड कर्जन के प्रयासों तथा पुरातत्व में उनकी रुचि के कारण भारतीय उपमहाद्वीप में पुरातात्विक अवशेषों के सम्मान तथा प्राचीन भारतीय स्मारकों के संरक्षण हेतु 1904 में प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम पारित किया गया था।

सर जॉन मार्शल और सर मार्टिमर व्हीलर के अधीन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने भारतीय उपमहाद्वीप में बड़े पैमाने पर अन्वेषण और उत्खनन किया। स्वतंत्रता के बाद भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने अपना काम जारी रखा। इसी समय, कई विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थानों में पुरातत्व विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा, जो पुरातात्विक अनुसंधान के क्षेत्र में भी सक्रिय हुआ। आज भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग एक विशाल संस्थान है। राज्य पुरातत्व विभाग और डेक्कन कॉलेज की तरह अन्य शैक्षणिक संस्थान भी हैं। कई विश्वविद्यालय पुरातत्व पढ़ाते और उत्खनन कार्य भी करवाते हैं।

2.2 पुरातात्विक स्थल और उनकी बनावट

पुरातात्विक स्थल विभिन्न प्रकार के होते हैं। आइए, देखें कि पुरातात्विक स्थलों का निर्माण किस प्रकार होता है।

2.2.1 मानव निर्मित उपस्कर तथा *इकोफैक्ट*

पुरातत्व उन अवशेषों के अध्ययन पर आधारित है, जो मानव द्वारा बनाई गई या परिवर्तित वस्तुएँ थी। अवशेष महत्वपूर्ण तथ्य प्रदान करते हैं जैसे कि उनके उत्पादन की प्रक्रिया, कच्चा माल जिसमें वे बने हैं, उनके उत्पादन में शामिल तकनीक, वस्तुओं का उपयोग आदि। एक दूसरी तरह के साक्ष्य हैं – जैविक और पर्यावरणीय अवशेष। यह पर्यावरणीय तथ्यों के रूप में जाने जाते हैं और प्राचीन मानव गतिविधियों के कई पहलुओं को प्रकट करते हैं। पर्यावरणीय तथ्यों में जानवरों की हड्डियों, पौधों के अवशेष, मिट्टी और तलछट आदि शामिल हैं। वे हमें पर्यावरणीय परिस्थितियों से संबंधित उन पहलुओं को समझने में मदद करते हैं कि लोग कैसे रहते थे और किस तरह का भोजन खाते थे, जलवायु में बदलाव और मनुष्यों पर उसका प्रभाव आदि।

2.2.2 पुरातात्विक स्थल

पुरातात्विक स्थलों पर मानव निर्मित उपस्कर, पर्यावरणीय अवशेष तथा संरचनाएँ एक साथ पाई जाती हैं। पुरातात्विक स्थल एक ऐसा स्थान है जहाँ मानव गतिविधियों के महत्वपूर्ण चिन्ह मिलते हैं। दूसरे शब्दों में, ये ऐसी जगहें हैं जहाँ इंसान ने अतीत में कुछ गतिविधियाँ की थी। मनुष्यों द्वारा गुफाओं में चित्रकारी करने से लेकर पिरामिड बनाने तक स्टोनहैन्ज, मोहनजोदड़ो जैसे शहरों से लेकर एक छोटी सी जगह जहाँ शिकारी-संग्रहकर्ता ने अपने पत्थर के औज़ार बनाए आदि तक की सीमा बहुत विस्तृत है। इसलिए, पुरातात्विक स्थलों की जाँच पुरातत्वविदों का प्राथमिक कार्य बन जाता है, जिसके आधार पर प्राचीन मानव जीवन को पुनर्निर्मित किया जा सकता है।

अब प्रश्न यह है कि पुरातात्विक स्थल कैसे बनते हैं? दूसरे शब्दों में, वे उस स्थिति में कैसे पहुँचते हैं जिसमें पुरातत्वविद् उन्हें पाते हैं? पुरातात्विक स्थल बनने के दो तरीके हैं:

i) सांस्कृतिक, और

ii) प्राकृतिक।

इन्हें निर्माण प्रक्रियाओं के रूप में जाना जाता है। सांस्कृतिक निर्माण की प्रक्रिया का अर्थ ऐसी गतिविधियों से है जिसे मनुष्य जानबूझकर एक जगह पर करते हैं, जैसे कि पुरावशेष बनाना और उनका उपयोग करना, घर बनाना या उन्हें छोड़ना, कचरा निपटान के लिए गड्ढे खोदना, वस्तुओं को फेंकना या आकस्मिक गतिविधियों जैसे कि चीजों की क्षति होना आदि। प्राकृतिक निर्माण प्रक्रियाएँ वे हैं जो मुख्य रूप से उन तत्वों की जानकारी देती है जैसे प्राकृतिक घटनाओं /स्थलों को कैसे दफन कर देती है। उदाहरण के लिए, हवा, पानी या जानवरों की गतिविधियाँ उन चीजों में परिवर्तन लाती हैं जो मनुष्यों द्वारा छोड़ने के बाद एक स्थल पर मौजूद हैं। हवा, सूरज, बारिश धीरे-धीरे इन संरचनाओं को मिटा देते हैं। हवा द्वारा लाई गई रेत या बारिश द्वारा लाए गए तलछट धीरे-धीरे स्थलों पर जमा हो जाते हैं। कभी-कभी, बाढ़ के कारण रेत जमा होने से स्थलों और उसके कुछ भाग दफन हो जाते हैं।

कभी-कभी प्राकृतिक निर्माण प्रक्रियाएँ पुरातात्विक स्रोतों को बचाने में मदद करती हैं। उदाहरण के लिए, इटली में 79 सी.ई. में ज्वालामुखी माउंट वेसुवियस के फूटने से उसकी राख के नीचे पोम्पेई शहर दब गया था। ज्वालामुखी की राख ने पोम्पेई शहर को संरक्षित किया। इसी तरह, एल्प्स के बर्फीले क्षेत्र या आर्कटिक, या बेहद शुष्क क्षेत्र जैसे रेगिस्तान या पहाड़ों में जैविक पदार्थ संरक्षित होते हैं। उदाहरण के लिए, मिस्र के पिरामिड अथवा पेरू के एंडीज पहाड़ों में पाए जाने वाले पुराशव शामिल हैं। ब्रिटेन के स्टारकार क्षेत्र जैसे वेटलैंड और दलदली क्षेत्र भी लकड़ी, पौधों के उत्पादों आदि जैसे कार्बनिक पदार्थों को संरक्षित करते हैं। गर्म तापमान, नमी और वर्षा जलवायु, अम्लीय मिट्टी, घनी वनस्पति और कीट गतिविधियों के कारण अवशेष संरक्षित नहीं रह पाते हैं।

बाएँः कालीबंगन का एक पुरातात्विक टीला, राजस्थान। श्रेयः डॉ. दीपक के. नायर.

दाएँः पुरातात्विक उत्खनन। श्रेयः डॉ. दीपक के. नायर.

2.3 पुरातात्विक विधियाँ

पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्ति के लिए पहला प्रमुख कदम पुरातात्विक क्षेत्रीय कार्य है। इन क्षेत्रों में पुरातात्विक साक्ष्य एकत्रित करने के दो तरीके हैंः

i) पुरातात्विक अन्वेषण या सर्वेक्षण, और

ii) पुरातात्विक खुदाई।

हम नीचे इनका पता लगाएँगे।

2.3.1 पुरातात्विक अन्वेषण

पुरातात्विक अन्वेषण में स्थलों के सतह पर पाए जाने वाले अवशेषों के आधार पर पुरातात्विक स्थलों की जाँच की जाती है। दूसरे शब्दों में, पुरातत्वविदों ने सतह पर पाए जाने वाले अवशेषों के आधार पर, बिना खुदाई किए, उन स्थलों की जाँच की है। यह अभ्यास पुरातात्विक स्थलों का पता लगाने के साथ शुरू होता है। पुरातत्वविदों द्वारा यह कार्य एक क्षेत्र या किसी विशेष क्षेत्र में पुरातात्विक स्थलों को खोजने के लिए किया जाता है। इसके लिए वे विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। प्रारंभ में, स्थलों को हवाई सर्वेक्षण (हवाई जहाज का उपयोग करके) के माध्यम से उच्च टीले, फसल उगाने के तरीके और क्षेत्रों आदि का पता लगाया जाता है। तकनीकी प्रगति के साथ, अब यह उपग्रह द्वारा लिए गए चित्रों और भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) के माध्यम से किया जाता है। जमीनी सर्वेक्षण के कई अलग-अलग तरीकों के साथ भी पुरातात्विक स्थलों की खोज और जाँच की जाती है। ऐसी ही एक भौतिक पद्धति, गाँव-से-गाँव का सर्वेक्षण है, जिसमें पुरातत्वविदों का एक दल विभिन्न गाँवों में जाता है और अतीत की पुरानी बस्तियों या अवशेषों के बारे में पूछता है। इस पद्धति का प्रयोग भारत में बड़े पैमाने पर किया गया है। क्षेत्रीय सर्वेक्षण के लिए सावधानीपूर्वक योजना बनाई जाती है। इसमें पूरे क्षेत्र को एक ग्रिड और उपभागों में विभाजित किया जाता है। पुरातत्वविद सभी चयनित ग्रिडों या नमूना इकाइयों का पूरी तरह जाँच-पड़ताल करते हैं और मानवीय गतिविधियों का पता लगाते हैं। इस तरह के गहन अन्वेषण नए पुरातात्विक स्थलों की खोज में मदद करते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में कुछ बड़े पैमाने पर पुरातात्विक सतह सर्वेक्षण थेः

- विजयनगर अनुसंधान परियोजना (वीआरपी),
- विजयनगर महानगर सर्वेक्षण (वीएमएस),
- सांची सर्वेक्षण परियोजना (एसएसपी),
- टू रेन्स परियोजना इत्यादि।

पुरातात्विक स्थलों को एक वैश्विक स्थान निर्धारण प्रणाली (ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम – जीपीएस) के साथ रेखांकित किया जाता है ताकि उनके वितरण के तरीके को एक मानचित्र पर दिखाया जा सके। स्थानीय विश्लेषण यह समझने के लिए महत्वपूर्ण होता है कि अतीत में लोगों ने बस्तियों के लिए कुछ निश्चित क्षेत्रों को क्यों चुना? इसे समझने के लिए उनके स्थानों, प्रकृति, संख्याओं को रिकॉर्ड किया गया, उनकी तस्वीरें ली गईं और चित्र तैयार कराए गए। सर्वेक्षण के उद्देश्यों के आधार पर आगे के विश्लेषण के लिए नमूने के रूप में पुरावशेषों को भी एकत्र किया गया।

अतीत को बेहतर जानने के लिए पुरातत्वविदों ने खोज और उत्खनन दोनों में वैज्ञानिक तकनीकों की एक प्रणाली का उपयोग किया। पुरातात्विक अन्वेषणों में ग्राउंड पेनेट्रेटिंग राडार (जीपीआर), विद्युत प्रतिरोधकता सर्वेक्षण, मैग्नेटोमेटरी जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है। जो खुदाई के बिना स्थलों और कब्र संरचनाओं की प्रकृति को जानने में हमारी मदद करते हैं। इन तकनीकों को 'गैर-विनाशक' के रूप में जाना जाता है क्योंकि वे किसी भी तरह से पुरातात्विक रिकॉर्ड को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं और न ही बदलते हैं। हाल के वर्षों में दफन की गई संरचनाओं की खोज में लाइट डिटेक्शन एंड रेंजिंग (LIDAR) विधि बहुत महत्वपूर्ण रही है। इस विधि में एक विशेष सर्वेक्षण

क्षेत्र में एक लेजर स्कैनर ले जाने वाला एक विमान तेजी से जमीन पर लेजर डालता है। यह अपने अनुसार जमीन की एक सटीक तस्वीर बनाता है। फिर, विभिन्न सॉफ्टवेयर की मदद से, कब्र संरचनाओं की पहचान की जाती है। यह तकनीक उन क्षेत्रों में बेहद सहायक है, जहाँ बहुत घनी वनस्पति है, जिसे बहुत मुश्किल से खोजा जाता है। उदाहरण के लिए, लाइट डिटेक्शन एंड रेंजिंग (एलआईडीएआर) के उपयोग से मेसो-अमेरिका में मायन सभ्यता के नए संरचनात्मक परिसरों को प्रकाश में लाया गया। इससे कंबोडिया में मध्यकालीन खमेर साम्राज्य के शहरों के नेटवर्क तथा अंकोरवाट के प्रसिद्ध मंदिर परिसर का भी पता लगाया गया है।

2.3.2 पुरातात्विक उत्खनन

भू-सतह अन्वेषण से अतीत के बारे में कुछ सवालों के जवाब देने में हमें मदद मिली हैं। हालांकि, सतह से एकत्र किए गए पुरावशेष अपने मूल संदर्भ में नहीं पाए जाते हैं, क्योंकि सतह पर उनकी उपस्थिति उन गतिविधियों का एक परिणाम है, जिन्होंने मूल अभिसाक्ष्यों को दिग्भ्रमित किया है। उदाहरण के लिए, बारिश से कटाव, जुताई, जानवरों को दफनाने आदि के कारण सतह के पास पुरातात्विक जमाव का विस्थापन हो सकता है। इसलिए, एक स्थल के विभिन्न सांस्कृतिक चरणों व उसके संदर्भों की गहरी समझ के लिए पुरातात्विक खुदाई की जाती है। इसमें व्यवस्थित रूप से एक स्थल की खुदाई करके अतीत में मानव द्वारा बनाए गए और उपयोग की गई सामग्रियों को सावधानीपूर्वक उजागर किया जाता है।

पुरातात्विक स्थलों पर विभिन्न पुरातात्विक संस्कृतियों के अवशेष पाए जाते हैं। 1929 में वी. गॉर्डन चाइल्ड ने बर्तन, औज़ार, गहने, दाह संस्कार, घर इत्यादि अवशेषों को पुरातात्विक संस्कृति के रूप में परिभाषित किया। इस प्रकार के अवशेष समय और स्थान के अनुसार अलग-अलग तरह के होते हैं। इसलिए, उन्हें विभिन्न पुरातात्विक संस्कृतियों के रूप में पहचाना जाता है। पुरातात्विक स्थलों पर या एकल पुरातात्विक संस्कृति का आधिपत्य होता है या लंबे समय तक रहने से कई पुरातात्विक संस्कृतियाँ मिल सकती हैं। विभिन्न संस्कृतियों की क्रमिक उपस्थिति उनके कालानुक्रमिक क्रम को दर्शाती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न पुरातात्विक संस्कृतियों में हड़प्पा संस्कृति, चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति, ज़ोरवे संस्कृति आदि शामिल हैं।

पुरातात्विक उत्खनन मुख्य रूप से विभिन्न अवधियों से संबंधित अवशेषों के कालानुक्रमिक संदर्भों को समझने के लिए स्तरविज्ञान की अवधारणा को नियुक्त करता है। भूविज्ञान से व्युत्पन्न, स्तरीकरण की अवधारणा स्तरीकरण की प्रक्रिया पर आधारित है। भूविज्ञान में तलछट परतें या जमाव बहुत धीरे-धीरे एक दूसरे पर जमा होती हैं। इस प्रक्रिया में जो परत नीचे होती है, वह पहले जमा होती है और बाद में जमा होने वाली परतें बाद के काल की होती हैं। इसे अधीक्षण के नियम के रूप में जाना जाता है। पुरातात्विक स्थलों पर सांस्कृतिक और प्राकृतिक मलबा तेज़ी से बनता है। भूवैज्ञानिक परतें धीरे-धीरे बनती हैं। लेकिन दोनों ही अधीक्षण के कानून का पालन करते हैं। इसलिए, पुरातात्विक स्थलों में पहली बसावट के लक्षण सबसे निचले स्तर पर पाए जाते हैं और जैसे-जैसे निक्षेप जमा होता है और शीर्ष तक पहुँचता है तब हम बसावट का क्रम देख सकते हैं सबसे हाल की परत सतह के पास होती है।
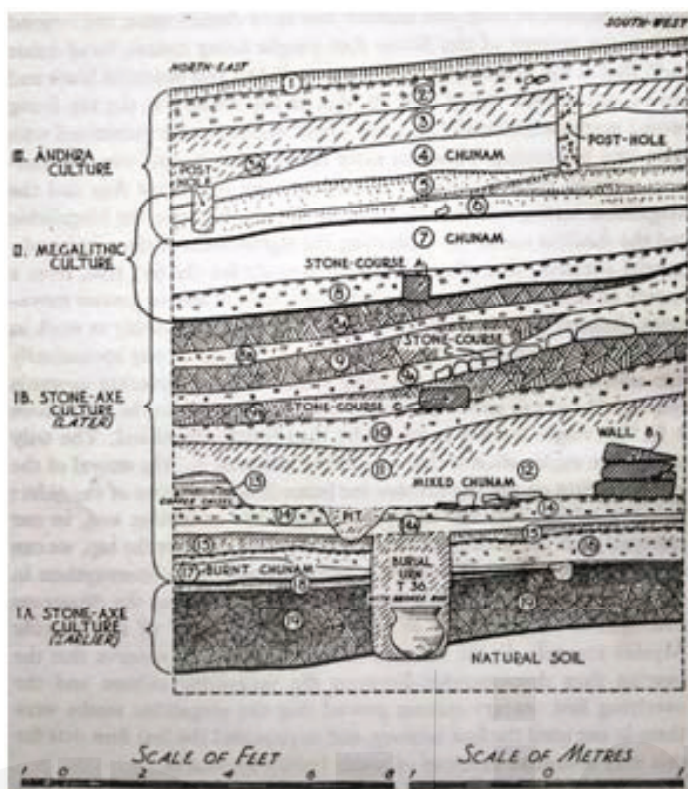
ब्रह्मगिरि, मैसूर राज्य, भारत में अनुभाग (Section)। इसमें तीन सांस्कृतिक चरण दिखाई दे रहे हैं। श्रेयः सर मोर्टिमर व्हीलर, आर्कयोलॉजी फ्रॉम द अर्थ (1954), मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, द्वारा पुनःप्रकाशित, 2004, पृ. 50।

उद्देश्यों के आधार पर उत्खनन के दो प्राथमिक तरीके हैं जिनसे पुरातात्विक स्थलों की खुदाई की जा सकती हैः

i) क्षैतिज, और

ii) ऊर्ध्वाधर

इसकी अंतर्निहित धारणा यह है कि, मोटे तौर पर, समकालीन गतिविधियाँ क्षैतिज स्थान पर विद्यमान होती हैं और समय-समय पर इसमें बदलाव होते रहे हैं। इसलिए, यदि हम स्थल के किसी विशेष चरण के बारे में विस्तार से जानना चाहते हैं कि लोग कैसे रहते थे, तो स्थल की क्षैतिज रूप से खुदाई की जा सकती है। क्षैतिज खुदाई में स्थल के एक बड़े हिस्से के एक विशेष चरण के समकालीन संरचनाओं और गतिविधियों को उजागर करने के लिए धीरे-धीरे खुदाई की जाती है। इसके विपरीत, ऊर्ध्वाधर खुदाई में छोटे क्षेत्रों की खुदाई की जाती है। इसमें जमाव के माध्यम से प्राकृतिक मिट्टी के उस स्तर तक खुदाई की जाती है, जहाँ उस ज़मीन पर सबसे पहले बसावट हुई थी। इस तरह ऊर्ध्वाधर खुदाई से हमें पुरातात्विक स्थलों पर हुए कालानुक्रमिक परिवर्तनों की एक झलक देखने को मिल जाती है। दूसरे शब्दों में, ऊर्ध्वाधर उत्खनन से हमें पुरातात्विक स्थलों पर हुए विभिन्न सांस्कृतिक चरणों की क्रमिक बसावट के बारे में पता चलता है। अतएव दोनों प्रकार की खुदाई की विधियों में उनकी खूबियाँ और सीमाएँ दोनों हैं।

पुरातत्विक उत्खनन एक विनाशकारी प्रक्रिया है क्योंकि इसमें चीजों को उजागर करने के लिए पुरातत्विक जमाव को हटाने की आवश्यकता होती है। यह एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया भी है, जिसमें एक बार खुदाई के बाद जमाव को पुनः ठीक नहीं किया जा सकता है। इसलिए, पुरातत्वविद् तथ्यों के विवरण और रिकॉर्डिंग में अत्यधिक सावधानी रखते हैं। खुदाई के बाद पाया गया विवरण ही अध्ययन के आगे की प्रक्रिया को जारी रखता है।

उत्खनन से मिली विभिन्न प्रकार की सामग्रियों से बीते हुए युगों के बारे में पता चलता है।

ये सामग्रियाँ हमें बताती हैं कि लोग किस तरह के घरों में रहते थे। इस तथ्य-संकलन से कई प्रश्न पूछे जा सकते हैं जैसेः

- पक्की ईंटें अथवा छप्पर वाले ढांचे कैसे बने थे?
- क्या उनकी बस्तियों में कुएँ, टैंक, स्नानघर, शौचालय, भंडारण स्थान, जल निकासी, धर्मस्थल या पूजा स्थल आदि थे?
- उन्होंने किस तरह के औज़ारों का इस्तेमाल किया?
- क्या वे लंबी दूरी के व्यापार में लगे थे?
- उनकी सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली क्या रही होगी?
- उन्होंने अपने मृतकों के साथ कैसा व्यवहार किया?

मानव द्वारा बनाई और उपयोग की गई सामग्रियाँ प्राचीन मानव जीवन के कई और पहलुओं को प्रकाशित करती हैं।

पुरातात्विक अन्वेषण और उत्खनन द्वारा इकट्ठा किए गए तथ्य हमें अतीत को समझने में काफी मदद करते हैं। पुरावशेषों को संग्रह करने के बाद पहली प्रक्रिया वर्गीकरण की है। पुरातात्विक सामग्री को उनकी बसावट, लम्बाई-चौड़ाई के अनुसार वर्गीकरण किया जाता है। उदाहरण के लिए मिट्टी के बर्तनों का वर्गीकरण उनके विभिन्न गुणों जैसे उनका आकार, उनको बनाने में उपयोग की गई मिट्टी, उनके सतह की बनावट आदि पर किया जाता है। यह हमें उनके प्रयोजन, जैसे खाना पकाने के लिए या अनुष्ठानिक उपयोग के लिए, के बारे में जानकारी देता है।

2.4 साक्ष्य का विश्लेषण

अब आप देखेंगे कि पुरातात्विक निष्कर्ष निकालने के लिए अवशेष और पर्यावरणीय तथ्यों का अध्ययन कैसे किया जाता है? इस भाग में वर्णन किया गया है कि पुरातात्विक स्थलों की तिथि कैसे निर्धारित की जाती है, किन वस्तुओं का व्यापार किया गया था, कौन-सी वनस्पतियाँ तथा पशु मौजूद थे आदि।

2.4.1 तिथि-निर्धारण की तकनीक

पुरातात्विक शोध में जो प्राथमिक सवाल उठता है वह यह है कि कोई विशेष वस्तु या पुरातात्विक स्थल कितना पुराना है। दूसरे शब्दों में, वे किस समय के हैं? टाइपोलॉजी, स्तरीकृत अनुक्रम और शैलीगत विश्लेषण जैसे पारंपरिक तरीकों से कालक्रम के बारे में व्यापक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इसे सापेक्ष तिथि-निर्धारण (Relative Dating) के रूप में जाना जाता है। पेड़ों में वलयों की वार्षिक वृद्धि, तिथि-निर्धारण के लिए भी इस्तेमाल की जा सकती है, जिसे ट्री-रिंग डेटिंग या डेंड्रोक्रोनोलॉजी अर्थात वृक्ष-वलय तिथि-निर्धारण के रूप में जाना जाता है। हालांकि नई वैज्ञानिक तकनीकों के आगे बढ़ने से हम अब और अधिक सटीक तिथि-निर्धारण करने में सक्षम हैं। पहली सफलता 1950 में तब मिली, जब विलार्ड लिब्बी ने लकड़ी या हड्डी जैसे कार्बनिक पदार्थों का तिथि-निर्धारण के लिए कार्बन-14 डेटिंग विधि विकसित की। सबसे हालिया और उन्नत विधि त्वरक द्रव्यमान स्पेक्ट्रोमेट्री (एएमएस) डेटिंग तकनीक वह है जिसके परिणाम प्राप्त करने के लिए बहुत छोटे नमूने की आवश्यकता होती है। यह तिथि-निर्धारण तकनीक उन कार्बनिक पदार्थों की तिथि-निर्धारण कर सकती है जो 50,000 साल पुराने हैं। अन्य तिथि-निर्धारण तकनीकों जैसे पोटेशियम-आर्गन, यूरेनियम-श्रृंखला, विखंडन ट्रैक, थर्मो-ल्यूमिनेसेंस (टीएल) और ऑप्टिकल तिथि-निर्धारण, इलेक्ट्रॉन

स्पिन प्रतिध्वनि (ईएसआर) और इसी तरह विभिन्न सामग्रियों का उपयोग करके 50,000 से लेकर 5 करोड़ वर्ष तक की तिथियों को बताया जा सकता है। किसी वस्तु या नमूने के तिथि-निर्धारण करने का मूल आधार यह है कि प्राप्त तिथियों को पूरे जमाव या संदर्भ पर लागू किया जा सकता है जिसमें यह पाया गया था। इस प्रकार, पूरा जमाव ही नमूने जितना ही पुराना माना जाता है।

तिथि-निर्धारण विधि	सामग्री	काल
ट्री-रिंग (वृक्ष-वलय)	वृक्षों के वलय वाली लकड़ी	लगभग 10,000 वर्ष बी.सी.ई. (भिन्न क्षेत्रों में)
रेडियोकार्बन	कार्बन वाले कार्बनिक पदार्थ या जैविक पदार्थ	50, 000 वर्ष बी.सी.ई.
पोटेशियम-आर्गन / आर्गन आर्गन	ज्वालामुखीय चट्टानें	80,000 वर्ष बी.सी.ई. से अधिक पुरानी
यूरेनियम-शृंखला	कैल्शियम कार्बोनेट से समृद्ध चट्टानें; दांत	10,000–500,000 वर्ष बी.सी.ई.
थर्मो-ल्यूमिनेसेंस (टीएल डेटिंग)	पकाए हुए मृदभाण्ड, मिट्टी, पत्थर	100,000 बी.सी.ई. तक
पेलोमैग्नेटिक डेटिंग	चुम्बकित अवसादन, ज्वालामुखीय लावा, मिट्टी को 650-700° c तक जले हुए	हज़ारों साल पहले से लेकर लाखों साल पहले तक के बहुत पुराने जमाव
इलेक्ट्रॉन स्पिन प्रतिध्वनि (इएसआर)	हड्डी, खोल, दाँतों की परत	हजारों साल पहले से लेकर लगभग दस लाख साल पहले तक
विखंडन ट्रैक	कुछ प्रकार की चट्टानें, और खनिज, लावा, कांच, अभ्रक आदि	सैकड़ों हजारों साल पहले से लेकर लाखों साल पहले तक

रैनफ्रियु, सी. और बान. पी., 2012 से अनुकूलित।

2.4.2 उत्पादन तकनीक और प्रक्रियाएँ

अन्वेषण और उत्खनन के माध्यम से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को बरामद किया जाता है। पुरातत्व हमें सूचित करता है कि वे कैसे बनाए गए थे, अर्थात् उनकी उत्पादन प्रक्रियाएँ और उनका उपयोग कैसे किया गया था। पुरावशेषों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

i) अपरिवर्तित, और

ii) परिवर्तित

अपरिवर्तित श्रेणी की वस्तुओं के स्वभाव में एक समय के बाद बदलाव नहीं होता है। जैसे कि पत्थर के औज़ार, लकड़ी की वस्तुएँ, पौधे और जानवरों के तंतु आदि। परिवर्तित वस्तुओं में ऐसी सामग्रियाँ शामिल होती हैं जो उत्पादन प्रक्रिया के दौरान स्वभाव और रूप में बदलाव मिलती हैं। लगभग ऐसी सामग्रियों के उत्पादन में गर्मी के नियंत्रण की आवश्यकता होती है, जैसे मिट्टी के बर्तन और धातु की वस्तुएँ आदि।

जातीय-पुरातत्व (ethno-archaeology) और प्रयोगात्मक पुरातत्व (experimental-archaeology)

हमें यह पता लगाने में मदद करते हैं कि ऐसी वस्तुएँ कैसे बनाई गईं और उनका कार्य क्या था। मिट्टी के बर्तनों की उत्पादन प्रक्रिया अब एक उदाहरण के रूप में वर्णित है। मिट्टी नरम होती है और मिट्टी के बर्तनों को बनाने के लिए उपयोग में लाई जाती है। मिट्टी के बर्तनों की उत्पादन प्रक्रिया मिट्टी प्राप्त करने से लेकर अंत में तैयार उत्पाद प्राप्त करने तक उत्पादन के कई चरणों से गुजरती है। जातीय-पुरातत्व और प्रयोगात्मक पुरातत्व के माध्यम से हम उत्पादन प्रक्रिया के कई विवरणों का पता लगा सकते हैं, जैसे कि मिट्टी के बर्तन हस्तनिर्मित थे या उन्हें बनाने में चाक का इस्तेमाल किया गया था। आकार और मिट्टी में कुछ बर्तन दूसरों से अलग क्यों हैं? विभिन्न बर्तनों का उपयोग किन उद्देश्यों के लिए किया गया था? इस तरह के सवालों के जवाब जातीय-पुरातत्व और प्रयोगात्मक पुरातत्व के माध्यम से दिए जा सकते हैं।

जातीय पुरातत्व

जातीय पुरातत्व वह पद्धति है जो वर्तमान समुदायों का अध्ययन कर के पुरातात्विक रिकॉर्ड को समझने के लिए अपनाई जाती है। इस विधि में किसी विशेष गतिविधि से सम्बन्धित प्रक्रिया का अवलोकन करके यह समझने का प्रयास किया जाता है कि पुरातात्विक रिकार्ड में ये गतिविधियाँ किस प्रकार का पैटर्न उत्पन्न कर सकती है। उदाहरण के लिए, वर्तमान में पारंपरिक मिट्टी के बर्तनों के उत्पादन की तकनीक का अध्ययन करने से प्राचीन मिट्टी के बर्तनों को समझने में मदद मिल सकती है। उत्पादन के चरणों के दौरान विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा छोड़ी गई प्राचीन मिट्टी के बर्तनों पर पैटर्न को समझने में संचालन के अनुक्रम (chane operatoire) उपयोगी सिद्ध होते हैं। पुरातत्व विज्ञान में विभिन्न प्रकार के अध्ययनों में जातीय पुरातत्व विधियों को नियोजित किया गया है। इसमें शिकार, संग्रह, जैसी निर्वाह तकनीकों के बारे में जानकारी शामिल है। और वे विभिन्न शिल्प परम्पराओं को समझने में अधिक लोकप्रिय है। इस प्रकार, पुरातात्विक सवालों का जवाब देने के लिए वर्तमान में समुदायों की प्रथाओं का अध्ययन करना जातीय पुरातत्व विज्ञान के लिए सामान्य है।

प्रयोगात्मक पुरातत्व

प्रयोगात्मक पुरातत्व के तहत, प्राचीन व्यवहार प्रक्रियाओं को समझने के लिए पुरातत्वविद् नियंत्रित स्थितियों के तहत प्रयोगात्मक पुनर्निर्माण को दोहराने का प्रयास करते हैं। जातीय-पुरातत्व के विपरीत, जहाँ वर्तमान में विशेष वस्तुओं का निर्माण करने वाले समुदायों द्वारा किए गए कार्यों का अवलोकन किया जाता है, पुरातत्वविद् खुद इन प्रयोगों को करते हैं। औज़ारों के लिए पत्थर को तराशने में प्रयोगात्मक पुरातत्व सफलतापूर्वक लागू किया गया है जिसने यह समझने में मदद की है कि पत्थर के उपकरण बनाने के लिए मूल पत्थर से परतें कैसे उतारी जाती हैं। कई अन्य अध्ययन किए गए हैं, जिनमें प्रक्रियाओं का पुनर्निर्माण शामिल है, जैसे इंग्लैंड के स्टोनहेंज में विशाल चट्टानों को कैसे खींचा गया और स्टोनहेंज का निर्माण किस तरह हुआ।

स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (SEM) जैसी माइक्रोस्कोपकी तकनीक वस्तुओं पर छोड़े गए कार्यों के निशान या माइक्रोवेयर पैटर्न का अध्ययन करती है। इससे प्रयोगों के सूक्ष्म चिन्हों की तुलना आधुनिक प्रयोगों के साथ की जा सकती है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि उन्हें कैसे बनाया गया था। पौधों के रस जैसे कार्बनिक अवशेषों के निशान उपकरणों पर पाए जा सकते हैं। यदि उन्हें कटाई के लिए इस्तेमाल किया गया था, तो उनका भी अध्ययन किया जा सकता है।

विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देने के लिए विभिन्न तकनीकों का उपयोग एक ही नमूने पर किया जा सकता है। कभी-कभी, धातु की वस्तुओं को दो धातुओं को मिलाकर बनाया जाता है। ट्रेस

एलीमेंट एनालिसिस का उपयोग करके यह पता लगाया जा सकता है। प्राचीन धातु की वस्तुओं की सूक्ष्म धातु विज्ञान संबंधी जाँच हमें बताती है कि पुरातात्विक वस्तुएँ बनाने के लिए ढलाई, हथौड़ा (कोल्ड हैमरिंग) आदि किस तकनीक का उपयोग किया जाता था। इस तरह की वस्तुएँ हमें प्राचीन तकनीक और ज्ञान के स्तर के पायरो-प्रौद्योगिकी के बारे में सूचित करती हैं। दिल्ली के कुतुब कॉम्प्लेक्स में स्थित लगभग 4वीं शताब्दी सी.ई. में बने जंग रहित महरौली लोहे के खंभे अतीत की ऐसी तकनीक की दक्षता का एक अच्छा उदाहरण है।

2.4.3 व्यापार और विनिमय

पुरातत्व के माध्यम से हम समझ सकते हैं कि विभिन्न समुदाय भूमि अथवा समुद्र के मार्ग द्वारा किए जाने वाले व्यापार में कैसे लगे? जब हम कच्चे माल से बने उन अवशेषों को ढूंढते हैं जो स्थानीय रूप से नहीं पाए जाते थे, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे व्यापार के माध्यम से आए थे। ऐसी वस्तुओं का वितरण पैटर्न हमें उस भौगोलिक सीमा के बारे में बताता है जहाँ व्यापार फैला हुआ था। पेट्रोग्राफिक परीक्षा और ट्रेस एलीमेंट एनालिसिस, एक्स-रे फ्लुओरेसेन्स (एक्सआरएफ) और एक्स-रे डिफ्रेक्शन (एक्सआरडी) जैसी तकनीक स्थानीय को गैर-स्थानीय वस्तुओं से अलग कर सकती है और उस क्षेत्र की ओर भी इशारा करती हैं, जहाँ वे वस्तुएँ मूल रूप से पाई जाती थीं। उदाहरण के लिए, भारत में पुरातात्विक स्थलों पर पाए जाने वाले एम्फ़ोरा, जो लगभग 2000 साल पहले इंडो-रोमन साम्राज्य के व्यापार में शामिल थे, उन एम्फ़ोरा के अध्ययनों के माध्यम से हम रोमन साम्राज्य के उस क्षेत्र को सीमित कर सकते हैं, जहाँ से विभिन्न एम्फोरा भारत पहुँचे थे। इस तरह के अध्ययन हमें प्राचीन व्यापार मार्गों और नेटवर्क के बारे में भी बताते हैं।

2.4.4 पर्यावरणीय पुरातत्व

विकास के प्रारंभिक चरणों से ही मानव लगातार बदलते परिवेश में जी रहा है। अतीत में कई हिम युगों के उतार-चढ़ाव वाले वातावरण ने उन्हें प्रभावित किया। अतीत के वातावरण का वैश्विक स्तर पर पुनर्निर्माण पुरातत्व द्वारा किया जा सकता है। समुद्री तल की तलछट और स्तरीकृत बर्फ की चादरों पर हज़ारों वर्षों के जलवायु इतिहास के प्रमाण हैं। कोर के समस्थानिक विश्लेषण के द्वारा गहरे समुद्र के तल और स्तरीकृत बर्फ की चादरों से प्राचीन तापमान, बारिश और हवा के पैटर्न का पता लगाया जा सकता है।

पुरातत्व-वनस्पति विज्ञान और पुरातत्व-जीव विज्ञान : पुरातात्विक स्थलों में पौधे और जानवरों के अवशेष होते हैं जो हमें बताते हैं कि मानव ने इन का कैसे प्रयोग किया और उनके साथ मिलकर काम किया। प्राचीन पौधों के अवशेषों के अध्ययन को पुरातत्व-वनस्पति विज्ञान कहा जाता है। पुरातात्विक स्थलों पर पाए जाने वाले पौधों के अवशेषों को स्थूल और सूक्ष्म वनस्पति अवशेषों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

i) स्थूल-वनस्पति (Macro-botanical) के अवशेष नग्न आंखों द्वारा देखे जाने के लिए पर्याप्त बड़े होते हैं। वे आमतौर पर अनाज, बीज, फल आदि के रूप में जीवित रहते हैं, जो गलती से या जानबूझकर जला दिए गए होते हैं। खुदाई के दौरान वे एक जाली के माध्यम से खुदाई की गई सूखी या गीली मिट्टी के छानने के द्वारा पाए जाते हैं। एक अन्य तकनीक जिसे फ्लोटेशन कहा जाता है, उसमें मिट्टी के नमूनों को पानी और हल्के कार्बनिक पदार्थों में मिलाया जाता है जो तैरते हुए अलग हो जाते हैं। इनके सूखने के बाद उनका परीक्षण किया जाता है। कभी-कभी, पौधे के अवशेष या उनकी छापों को मिट्टी के बर्तनों, ईंटों या मलबे के अवशेषों में देखा जा सकता है। जो लकड़ी के टुकड़ों में मिलते हैं, उनकी प्रजातियों की पहचान करने के लिए स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप (SEM) के माध्यम से उनके माइक्रोस्ट्रक्चर का विश्लेषण किया जा सकता है।

ii) सूक्ष्म वनस्पति अवशेषों को नग्न आँखों से नहीं देखा जा सकता है और उन्हें स्थल पर

व्यवस्थित रूप से लिए गए मिट्टी के नमूनों से निकाला जाता है। सूक्ष्म वनस्पति अवशेषों के दो प्रमुख विश्लेषण हैं:

अ) पराग विश्लेषण या पैलिनोलॉजी, और ब) फाइटोलिथ विश्लेषण।

पराग कणों के अध्ययन से वनस्पति में उतार-चढ़ाव की जानकारी मिलती है। कि क्या अधिक पेड़ों या खुली घास के मैदानों के साथ वन भूमि थी? फाइटोलिथ पौधों की कोशिकाओं से प्राप्त सिलिका के कण हैं जो प्राचीन अवसादों में अच्छी तरह से जीवित रहते हैं। वे आमतौर पर राख, मिट्टी के बर्तनों, प्लास्टर, पत्थर के औज़ारों और यहाँ तक कि जानवरों के दांतों की परतों में पाए जाते हैं। फाइटोलिथ्स का अध्ययन हमें मनुष्यों द्वारा विभिन्न पौधों के उपयोग के बारे में बताता है।

पुरातात्विक स्थलों पर पाए जाने वाले पशु अवशेषों के माध्यम से पर्यावरण का पुनर्निर्माण भी किया जा सकता है। प्राचीन काल के अवशेषों के अध्ययन को ज़ूआर्कयोलॉजी कहा जाता है। पशु अवशेष निम्न में विभाजित हैं:

- सूक्ष्म जीव, और
- स्थूल जीव।

सूक्ष्म जीवों में विभिन्न प्रकार के कीटभक्षी, कृंतक, चमगादड़, पक्षी, मछली और मोलस्क आदि शामिल हैं। वे पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। यह उन पर्यावरणीय परिस्थितियों के आधार पर संपन्न होता है, जिनके लिए उन्हें प्रजनन और पनपने की आवश्यकता होती है। स्थूल जीवों में बड़े जानवरों के अवशेष शामिल हैं जो आम तौर पर पुरातात्विक स्थलों पर मौजूद हैं। वे पुरातात्विक स्थलों के वातावरण में मौजूद प्रजातियों की संख्या का पता लगाने में मदद करते हैं। वे पर्यावरण के बहुत अच्छे संकेतक नहीं माने जाते क्योंकि वे विभिन्न प्रकार के पौधों पर पनप सकते हैं और तापमान में व्यापक बदलाव का सामना कर सकते हैं।

2.4.5 आहार और जीवन निर्वाह

पर्यावरण के बारे में जानकारी के अलावा, पौधे और जानवरों के अवशेष अतीत में लोगों के आहार और निर्वाह की जानकारी देते हैं। आहार से तात्पर्य लंबी अवधि में उपभोग के पैटर्न से है। कई तरीकों से हम यह निर्धारित कर सकते हैं कि अतीत में मनुष्यों का आहार कैसा रहा होगा? कुछ अनाज जैसे गेहूँ, जौ, मक्का, चावल, सूखने या जलाने से संरक्षित स्थूल हो जाते हैं। खाना पकाने के बर्तनों के रासायनिक अवशेषों के विश्लेषण से पके हुए भोजन की पहचान की जा सकती है कि वह अनाज या फलियों से संबंधित है या नहीं। उदाहरण के लिए, कुछ एम्फ़ोरा शड्र्स के विश्लेषण से साबित होता है कि इन भंडारण के बर्तनों में शराब और जैतून का तेल रखा जाता होगा।

एम्फ़ोरा शड्र्स केरल के पट्टानम से खुदाई में मिले थे। श्रेयः केरल काउंसिल फॉर हिस्टोरिकल रिसर्च, तिरुवनंतपुरम।

पौधे के अवशेष की तरह पशु अवशेष भी मानव आहार के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। हालांकि, जानवरों की हड्डियाँ पुरातात्विक स्थलों पर अलग-अलग कारणों से आ सकती हैं और यह हमेशा मानव उपभोग से संबंधित नहीं है। इसलिए, केवल उन जानवरों को मनुष्यों द्वारा उपभोग किया गया माना जाता है, जिनकी हड्डियों पर मानव द्वारा काटने के निशान मिलते हैं।

बहुत ही कम उदाहरणों में, मानव अवशेष प्रत्यक्ष रूप से इस बात का प्रमाण देता है कि मानव ने बने और तैयार भोजन के रूप में क्या खाया। व्यक्तिगत भोजन के बारे में जानकारी पेट की सामग्री के विश्लेषण और जीवाश्म मानव मल के अध्ययन के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। ममीकृत निकायों को छोड़कर पेट की सामग्री शायद ही कभी बचती है। इसी तरह, जीवाश्म मल, जिसे 'कोप्रोलाइट' और उसके अध्ययन को 'कोप्रोलोजी' के नाम से जाना जाता है, अतीत में लोगों ने क्या खाया, इसके बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। कॉप्रोलाइट्स में विभिन्न प्रकार के स्थूल अवशेष होते हैं जैसे हड्डी के टुकड़े, पौधे के फाइबर, लकड़ी का कोयला, बीज, मछली के अवशेष, पक्षी, सीप के टुकड़े आदि।

जैव पुरातत्व

जैसा कि देखा गया है, मानव अवशेष के जीवाश्म से क्या खाया गया था, के बारे में जानकारी प्रदान कर सकते हैं। भोजन से प्राप्त पोषण को निर्धारित करने के लिए अन्य तकनीकों जैसे आइसोटोपिक तकनीकों का उपयोग हड्डियों पर किया जाता है। यह शरीर में विभिन्न खाद्य पदार्थों द्वारा छोड़े गए रासायनिक हस्ताक्षरों के अध्ययन पर आधारित है जो दाँतों और हड्डियों में दिखाई देते हैं। नाइट्रोजन आइसोटोप 15N और 14N, 15N और 13C के अनुपात की तुलना शाकाहारी और माँसाहारी आहार का संकेत देती है। इसी तरह, बच्चों में माँ का दूध छोड़ने की उम्र का निर्धारण नाइट्रोजन के विश्लेषण के माध्यम से किया जा सकता है, जैसा कि इनामगांव के स्थल पर किया गया है, जिसकी चर्चा बाद के भाग में की गई है। तत्व स्ट्रोंटियम की सांद्रता भी आहार पर तथ्य-संकलन प्रदान करती है। शाकाहारी लोगों की हड्डियों में स्ट्रोंटियम की उच्च सांद्रता के संकेत मिलते हैं।

सामाजिक जानकारी के लिए कब्रें एक बहुत महत्वपूर्ण स्रोत है। आमतौर पर, कब्रों में दफनाने के साथ कुछ सामान शामिल होते हैं, जो किसी व्यक्ति की हैसियत को दर्शाते हैं और कब्रों के सामान की तुलना हमें सामाजिक अंतर के बारे में बताती है। कब्रों में मूल्यवान वस्तुओं की उपस्थिति व्यक्ति की उच्च स्थिति का सुझाव देती है। मूल्य का पता लगाने का एक साधन यह है कि कब्र में रखा हुआ सामान दुर्लभ हैं, उन्हें दूर-दूर से कारोबार करके लाया गया होगा। उदाहरण के लिए, मेसोपोटामिया में उर के शाही कब्रों में हड़प्पा की लंबी बैरल कार्नेलियन मोती पाए गए हैं। मुखिया तंत्र और राज्य व्यवस्था में यह अंतर अत्यधिक चिह्नित है। किसी व्यक्ति द्वारा अपने जीवनकाल में उच्च दर्जा प्राप्त किया गया होगा। हालाँकि, उच्च स्थिति आनुवंशिकता के मामले में भी संभव हो सकती है। बहुमूल्य सामान के साथ बच्चों के कब्र ऐसे मामलों को दर्शाते हैं।

2.4.6 प्राचीन समाजों की जाँच-परख

पुरातात्विक विधियाँ प्राचीन मानव समाजों के सामाजिक पहलुओं की जाँच करने में भी मदद करती हैं। प्राचीन समाजों की प्रकृति और पैमाने को समझने के लिए मानवविज्ञानी एलमैन सर्विस ने समाजों का चार भागों में वर्गीकरण किया:

i) घुमक्कड़ शिकारी समूह,

ii) खंड समाज (segmentary),

iii) मुखिया तंत्र, और

iv) राज्य व्यवस्था

हालाँकि पुरातत्वविदों द्वारा आलोचना की गई है, लेकिन कुछ संशोधनों के साथ इस ढाँचे का व्यापक रूप से उपयोग किया जा सकता है। उनके बस्ती विश्लेषण और उत्खनन के आधार पर अंतर के बारे में पता लगाया जा सकता है। घुमक्कड़ शिकारी समूहों की बस्तियाँ अस्थायी शिविर हैं, खंड समाज के स्थायी गाँव, मुखिया तंत्र के किलेदार केंद्र, और अनुष्ठान केंद्र और राज्य व्यवस्था शहरों, कस्बों और सीमांत सुरक्षा द्वारा चिह्नित की जाती है।

दूरस्थ अतीत में मनुष्यों के संज्ञानात्मक पहलुओं को प्रकट करने में पुरातत्व ने भी प्रगति की है। दूसरे शब्दों में, अब हम अतीत में "मनुष्यों" द्वारा छोड़े गए भौतिक साक्ष्यों का व्यवस्थित रूप से विश्लेषण के द्वारा मनुष्य की सोच के बारे में जान सकते हैं। भाषा जो प्रतीकों और ध्वनियों का इस्तेमाल करती है, मानव की इन चिन्हों के प्रयोग करने की क्षमता की ओर संकेत करती है। पुरातत्वविदों का मानना है कि कुछ भाषाएँ होमो-हेबिलिस तथा होमो-इरेक्टस द्वारा विकसित की गई थी। यह उनके सुडौल और सुंदर ऐशुलियन हाथ-कुल्हाड़ियों द्वारा परिलक्षित होता है। बड़ी संख्या में इस तरह की हाथ-कुल्हाड़ियों का उत्पादन करने की क्षमता एक प्रभावी संचार प्रणाली की उपस्थिति का सुझाव देती है। अपने मृतकों को दफनाने की प्रणाली भी एक विश्वास की धारणा की ओर संकेत करती है।

पाषाण कला का अध्ययन अतीत के बारे में बहुमूल्य जानकारी देता है। चित्रों और नक्काशियों में विषयवस्तु की एक विस्तृत श्रृंखला जैसे निर्वाह प्रथाओं, मानव आकृतियों, जानवरों, पौधों, पारिवारिक दृश्यों, सामाजिक गतिविधियों से लेकर कर्मकांड के पहलुओं तक को दर्शाया जा सकता है। चित्रकारी भी अमूर्त पैटर्न दर्शाती हैं जो मनुष्य की मान्यताओं का प्रतीक हो सकता है। पुरातत्वविदों ने पाषाण कला बनाने के औचित्य के बारे में कई स्पष्टीकरण दिए हैं।

बाएँः भोपाल, मध्य प्रदेश के पास शैल गुफा 8, भीमबेटका में चित्रकारी। ए.एस.आई. स्मारक संख्या एन.एम.पी. 225। श्रेयः डॉ. अभिषेक आनन्द।

दाएँः शैल गुफा 3, भीमबेटका में चित्रकारी। श्रेयः डॉ. अभिषेक आनन्द।

धर्म, अस्तित्व का एक अभिन्न अंग है और पुरातत्व प्राचीन धार्मिक प्रथाओं को समझने में मदद करता है। यह धार्मिक संरचनाओं के सबूतों की विभिन्न श्रेणियों का उपयोग करता है, जैसे डेल्फी में अपोलो का मंदिर, सांची स्तूप आदि। कुछ पुरातात्विक स्थलों पर खुदाई के दौरान मिली मूर्तियों की पूजा की गई होगी। जहाँ पर देवी-देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, वे स्थान पूजा के स्थल माने जाते हैं। उत्खनन के जरिये उन पवित्र स्थानों को सावधानी से चुना जाता है, जैसे बाघोर के प्रागैतिहासिक मंदिर।

हाल ही में, आणविक आनुवंशिकी ने पुरातत्व को प्रभावित किया है। विभिन्न सामाजिक समूहों और वंशावली के आनुवंशिक संबंधों को फिर से संगठित करने के लिए प्राचीन दफन के डीएनए विश्लेषण का उपयोग किया जा रहा है। डीएनए विश्लेषण पर आधारित जीनोग्राफिक

परियोजनाओं ने स्थापित किया है कि पृथ्वी पर पूरी मानव आबादी का एक साझा वंश है, जो होमो-सेपियंस की शाखा है, जो अफ्रीका में विकसित हुई और अफ्रीका से बाहर चली गई है। स्ट्रोंटियम आइसोटोप विश्लेषण का उपयोग अतीत में पलायन को समझने में भी किया गया है। स्ट्रोंटियम आइसोटोप विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भिन्न होते हैं जो दाँतों पर अलग-अलग रासायनिक हस्ताक्षर छोड़ते हैं। ये रासायनिक हस्ताक्षर लोगों के आवागमन को भी चित्रित करने में मदद करते हैं।

2.4.7 जल मग्न पुरातत्व

जल मग्न पुरातत्व, पुरातत्व की एक शाखा है जो उन बस्तियों की जाँच करती है जो पानी के नीचे डूब गई हैं, जैसे कि अतीत में झील-रेत तटों के पास स्थित बस्तियाँ। समुद्र या झील के स्तरों में वृद्धि के कारण कुछ हिस्से या पुराने बंदरगाहों का पूरा क्षेत्र पानी के नीचे डूब गया है। जल मग्न पुरातत्व जहाजों की भी जाँच करता है। अनुभवी समुद्री पुरातत्वविदों को पुरानी बस्तियों, बंदरगाहों या जहाजों के अवशेषों का पता लगाने, खुदाई करने और तथ्य-संकलन करने के लिए कई गोते लगाने पड़ते हैं। कांस्य युग से ही विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र समुद्री व्यापार नेटवर्क से जुड़े हुए थे। व्यापारिक जहाजों के ध्वस्त जहाज समय के कैप्सूल की तरह होते हैं जो विभिन्न उत्पादों के साथ डूब जाते हैं जिन्हें वे ले जा रहे थे। भूमध्य सागर में कई जहाज़ों की खोज की गई है जो लौह युग से ही यूरोप, उत्तरी अफ्रीका और लेवांत के क्षेत्रों के बीच व्यापार कर रहे थे। जल मग्न पुरातत्व के माध्यम से पुराने अलेक्जेंड्रिया के डूबे हुए हिस्सों, मिस्र और टाइटैनिक जैसे जहाजों की जाँच की गई है। भारत में भी समुद्री पुरातत्वविदों ने हड़प्पा काल के कुछ समय पहले का बेट द्वारका, जहाँ कुछ पत्थर की संरचनाओं और पत्थर के लंगर पाए गए हैं, की खोज की है।

समुद्र के किनारे की जगहों को खोजने के लिए जल मग्न पुरातत्व में जियोफिजिकल तरीकों का भी उपयोग किया जाता है। एक जहाज से संचालित, मल्टी-बीम साइड-स्कैन सोनार सर्वेक्षण जैसी तकनीकें स्पष्ट चित्र और जहाज के टुकड़ों का सटीक माप देती हैं।
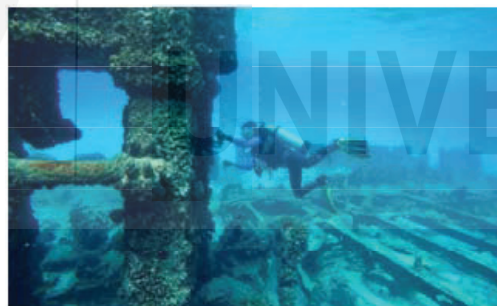
बाएँ: श्रेय: हस्तकीय यूरोपीय विज्ञान फोटो प्रतियोगिता 20105, क्रियटिव कॉमन्स एट्रीब्यूशन – शेयर अलाईक 4.0, इंटरनेशनल लाईसेंस (विकिमीडिया कॉमन्स)।

दाएँ: जल मग्न पुरातत्व द्वारा मापा गया डूबे हुए जहाज का इंजन, श्रेय: द्वी सुमैय्या मखमुर। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Underwater_archaeology.jpg).

बोध प्रश्न 1

1) पुरातात्विक अन्वेषण और उत्खनन के बीच क्या अंतर है?

....

....

....

....

2) पुरातत्व विज्ञान में प्रयुक्त विभिन्न स्रोतों को सूचीबद्ध करें।

....

....

....

....

2.5 भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ प्रमुख पुरातात्विक स्थल

अब हम भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ प्रमुख स्थलों पर पाए जाने वाले पुरातात्विक साक्ष्यों को देखेंगे। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि पुरातत्व किसी भी समयावधि तक सीमित नहीं है और तत्कालीन से लेकर समकालीन तक की भौतिक संस्कृति पर आधारित है।

- **भीमबेटका**

भीमबेटका मध्य प्रदेश के भोपाल के 45 किमी. दक्षिण-पूर्व में रायसेन जिले में स्थित है। इसकी खोज 1957 में वी. एस. वाकणकर ने की थी। यहाँ विंध्य पहाड़ियों के बलुआ पत्थर की संरचनाओं में 700 से अधिक गुफाओं और शैल गुफाओं का एक परिसर है। स्थल पर नियमित उत्खनन ने पुरापाषाणकाल से मध्यपाषाणकाल तक एक लंबे अनुक्रम को नियमित रूप में प्रकट किया है। मध्यपाषाणकाल के बाद कुछ मानवीय उपस्थिति और गतिविधियाँ ऐतिहासिक अवधि तक रुक-रुक कर जारी रहीं। भीमबेटका में सभी ऐतिहासिक चरणों में मध्यपाषाणकाल अवधि बहुत अच्छी तरह से अपने लघुपाषाण उद्योग के साथ परिभाषित है, और पाषाण कला की भव्यता के लिए जानी जाती है। भीमबेटका की पाषाण कला में मुख्य रूप से लाल गेरूआ में किए गए चित्र शामिल हैं। हालाँकि सफेद, पीले और हरे रंग का भी उपयोग किया गया है। ये चित्रकारी प्राकृतिक, आलंकारिक और अमूर्त कला का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें कई तरह के दृश्य शामिल हैं:

- शिकार,
- मछली पकड़ने,
- शहद संग्रह,
- नाच, और
- कुछ दृश्य ऐसे भी हैं जो शायद कबीले धर्म से संबंधित थे।

भीमबेटका में मध्यपाषाणकाल 7वीं सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. तक कालबद्ध की जा सकती हैं। अपने सार्वभौमिक ऐतिहासिक महत्व के कारण भीमबेटका को 2003 में यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में अंकित किया गया था।

- **मेहरगढ़**

भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे आरंभिक गाँव बस्तियों में से एक, मेहरगढ़ वर्तमान पाकिस्तान में बलूचिस्तान के पास, कच्छी मैदान के उत्तरी भाग के बोलन घाटी में स्थित है। मेहरगढ़ में खुदाई से 200 हेक्टेयर के क्षेत्र में बिखरे हुए सात व्यवसायिक स्तर का पता चला है।

काल-1 और काल-1 नवपाषाणकाल और इसके बाद के ताम्रपाषाणकाल के हैं। मेहरगढ़ में प्रारंभिक स्तरों में नवपाषाण की शुरुआत को 8वीं सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. में रखा गया है। लोग हाथ से बने कच्ची ईंटों से बने छोटे आयताकार कमरों के घरों में रहते थे। पत्थर के औज़ारों में नवपाषाणकाल की ग्राउंड या पॉलिश की गई कुल्हाड़ियाँ मिलीं हैं, हालाँकि ब्लेड-आधारित लघुपाषाण के औज़ार प्रचुर मात्रा में है। घिसने के पत्थर और कुछ हड्डी के उपकरण जैसे कि सुतारी और सुइयाँ भी पाए गए हैं।

विस्तृत स्तर पर एक कब्रिस्तान पाया गया है। एक किनारे में एक कोना कटा हुआ है जिसमें शरीर और कब्र का सामान रखा गया है। इसे मिट्टी की ईंटों की एक दीवार द्वारा बंद कर दिया गया था। शरीर लाल गेरूआ से ढंका था, जो प्रजनन संबंधी विश्वास का ओर संकेत देता है। कब्र में रखे जाने वाले सामानों में बिटुमेन से लेपी गई टोकरी, ताम्र और सीप मनके आदि थे। कुछ कंकाल सर की पट्टी और कमर पर सीप मनकों के हारनुमा बेल्ट के साथ पाए गए हैं। इसमें फ़िरोज़ा और लाज़वर्द मनके भी हैं जो उत्तरी बलूचिस्तान और अफगानिस्तान से लाए गए होंगे। सीप की उत्पत्ति मकरान तट पर हुई होगी, जो लगभग 500 किमी, दूर है। इससे पता चलता है कि बहुत पहले ही व्यापारिक नेटवर्क स्थापित हो चुके थे।

मेहरगढ़ की शुरुआती अवधि में निर्वाह गतिविधियों के बारे में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त होती है। इसमें शिकारी-संग्रहकर्ता जीवन पद्धति से पशुपालन की ओर संक्रमण दिखाई देता है। विभिन्न किस्म के पौधों के अवशेष यहाँ से एकत्रित किए गए हैं। इन पौधों की कटाई बिटुमेन में स्थापित पत्थर के ब्लेड से की जाती थी, इसका उपयोग संभवतः दरांती के रूप में किया जाता था। नवपाषाण काल में जानवर का शिकार करने से लेकर पशुपालन तक संक्रमण दिखाई देता है।

मेहरगढ़ का पुरातात्विक स्थल। पाकिस्तान में बी.ए 28 का स्मारक चित्र। श्रेयः एम. एच. तुरी। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mehrgarh.jpg)।

- **हड़प्पा**

हड़प्पा पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में स्थित है। यह हड़प्पा सभ्यता का पहला पुरातात्विक स्थल था जिसकी 1920 में खुदाई की गई थी; इसलिए इसके नाम पर सभ्यता का नाम रखा गया। हड़प्पा के पुरातात्विक स्थल का आकार लगभग 150 हेक्टेयर है। यह रावी नदी के किनारे स्थित था, लेकिन अब यह नदी 10 किमी की दूरी पर बहती है। हड़प्पा दुर्ग ऊँचे टीलें पर स्थित है और बाकी शहर निचले टीले पर स्थित है। मोटे तौर पर समांतर चतुर्भुज के आकार का गढ़ मिट्टी की ईंट की दीवार से घिरा हुआ है। इसमें बड़े बुर्ज और द्वार हैं। एक अन्न भंडार, 18 गोलाकार फर्श और कामगार के क्वार्टर की पहचान माउंड एफ के उत्तर में की गई है। निचले शहर के क्षेत्रों में विभिन्न कार्यशालाओं का पता चला है जहाँ सीप, तांबा, गोमेद की वस्तुओं को बनाया गया था। निचले शहर के कुछ हिस्सों में घरों, नालियों, स्नानागारों आदि का पता चला है। हड़प्पा में गढ़ टीले के दक्षिण में दो कब्रिस्तान – कब्रिस्तान एच और आर-37 हैं।

हड़प्पा का पुरातात्विक स्थल। एएसआई स्मारक संख्या एन-पीबी -32। श्रेयः शेफाली। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ancient_Harappa_Civilisation.jpg)।

- **मोहनजोदड़ो**

हड़प्पा सभ्यता का सबसे बड़ा स्थल मोहनजोदड़ो पाकिस्तान के सिंध प्रांत में सिंधु नदी से 5 किमी. दूर स्थित है। स्थल का आकार लगभग 200 हेक्टेयर है। उच्च और निम्न शहर – दो टीले शामिल हैं। उच्च क्षेत्र, 400 × 200 मीटर के क्षेत्र में, एक कृत्रिम मिट्टी और कच्ची ईंटों के चबूतरे पर बनाया गया है। इस चबूतरे पर स्थित महास्नानागार एक उत्कृष्ट संरचना है, जो हड़प्पा के लोगों के विज्ञान कौशल का प्रतिनिधित्व करती है। यह 14.5 मी. लंबा, 7 मी. चौड़ी और 2.5 मीटर गहरा है। इस चबूतरे पर अन्य संरचनाओं में एक भंडारगृह, पुरोहितों का कॉलेज और एक सभागार स्थित है। निचले शहर को चार व्यापक सड़कों द्वारा प्रमुख ब्लॉकों में विभाजित किया गया था जो उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम की ओर जाते हैं। निचले शहरों में विभिन्न आकारों के कई घरों के अवशेष पाए गए हैं। ये संभवतः सामाजिक अंतर का संकेत देते हैं। इनमें से एक घर में प्रसिद्ध पुरोहित राजा की पत्थर की मूर्ति पाई गई है। बड़ी संख्या में दुकानें और तांबे का काम, मनका बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, सीप वर्कशॉप की भी पहचान की गई है। घरों में स्नानागार के अलावा यह अनुमान लगाया गया है कि मोहनजोदड़ो में 700 से अधिक कुएँ रहे होंगे जो शहर की अनुमानित आबादी केलिए उपयुक्त थे।

मोहनजोदड़ो के उत्कीर्ण खंडहर, अग्रभूमि में महान स्नानागार और पृष्ठभूमि में भंडारगार। श्रेयः साकिब कय्यूम। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Mohenjo-daro.jpg)।

- **धौलावीरा**

धौलावीरा गुजरात के कच्छ में खादिर बेट नामक एक द्वीप पर स्थित है। यह भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे बड़े परिपक्व हड़प्पा स्थलों में से एक है। अन्य हड़प्पा स्थलों के विपरीत, पक्की ईंटों के बजाय धोलावीरा की संरचनाएँ बलुआ पत्थर से निर्मित है। धोलावीरा की बस्ती अन्य बस्तियों से भिन्न है, जैसे कि उच्च शहर और निचले शहर के दोहरे विभाजन की बजाय इसे तीन भागों में विभाजित किया गया हैः उच्च शहर, मध्य शहर और निचला शहर। उच्च शहर और मध्य शहर के बीच एक खुले क्षेत्र की पहचान एक स्टेडियम के रूप में की गई है, जिसका उपयोग संभवतः औपचारिक प्रयोजनों के लिए किया जाता था। शहर ने एक अद्वितीय जल संचयन और प्रबंधन प्रणाली का दावा किया है। यह स्थल दो धाराओं के बीच स्थित है, जिन पर बने बांध बड़े आयताकार जलाशयों में पानी को चैनलाइज करता था। ये जलाशय उच्च शहर, मध्य शहर और निचले शहर के आसपास स्थित थे। इन तीन प्रभागों के चारों ओर एक किलेबंदी की दीवार थी जिसके प्रत्येक कोने पर आयताकार गढ़ थे।

बाएँः धोलावीरा में सुरंग। दाएँः जालीदार कुँआ। श्रेयः नागार्जुन कंदुकुरु।
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Tunnel_(16496213599).jpg; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Meshed_well_(16494773048).jpg)।

- **तक्षशिला**

तक्षशिला सिंधु नदी के पूर्व पाकिस्तान के रावलपिंडी में स्थित है। इसका महत्व बौद्ध, जैन और ब्राह्मणवादी ग्रंथों के साथ ग्रीक-रोमन ग्रंथों से पता चलता है। पुरातात्विक दृष्टि से, यह भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे व्यापक रूप से उत्खनित प्राचीन शहर है। तक्षशिला में तीन टीले हैं – भीर, सिरकप और सिरसुख – जो प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के हैं। भीर सबसे पुराना शहर है जो छठी-पांचवीं शताब्दी बी.सी.ई. के आसपास शुरू हुआ था और दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. तक जारी रहा। मौर्य काल के दौरान तक्षशिला बेतरतीब था। इसमें चार मार्ग, पांच गलियों और संबद्ध घरों की पहचान की गई है। कुछ खुले स्थानों और सड़कों पर नागरिकों द्वारा कूड़े के डिब्बे रखने का संकेत मिलता है। दूसरी बस्ती सिरकप की स्थापना दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. में हुई थी। इसमें मुख्य सड़क के साथ ग्रिड योजना को अपनाया गया था। यह योजना चार शताब्दियों तक चली और इसने पूर्व-ग्रीक, इंडो-ग्रीक और शक-पह्लव काल का प्रतिनिधित्व किया। पहली शताब्दी के अंत में कुषाणों ने सिरसुख स्थल पर एक नया शहर बसाया।

जौलियान में बौद्ध मठ, तक्षशिला। श्रेयः मोहम्मद ओमार। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Jaulian_Buddhist_Monastery_in_Taxila.jpg)।

- **अमरावती**

अमरावती आंध्र प्रदेश के गुंटूर जिले में स्थित है। इसे धान्यकटक के रूप में जाना जाता था, जो बाद में सातवाहन की राजधानी बनी। यह तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. से तीसरी शताब्दी सी.ई. तक फला-फूला। वहाँ एक गढ़ था जो एक विशाल मिट्टी के किलेबंदी से घिरा हुआ था। अमरावती में एक प्रमुख बौद्ध प्रतिष्ठान था। यहाँ स्थित स्तूप आंध्र क्षेत्र में सबसे बड़ा था और इसे महाचैत्य के रूप में जाना जाता था। स्तूप के स्थल का 18वीं और 19वीं शताब्दी के अंत में अन्वेषण और उत्खनन का अपभ्रा इतिहास है। बाद में सुंदर मूर्तिकला पैनलों और संगमरमर के खंभों को हटा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप स्तूप का विघटन हो गया और अब स्थल पर केवल स्तूप का ड्रम (Drum) और कुछ संगमरमर की रेलिंग के अवशेष मौजूद हैं।

बाएँः अमरावती स्तूप पर उभरी हुई नक्काशी। श्रेयः सोहम बनर्जी। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Amaravati_Stupa_relief_at_Museum.jpg)।

दाएँः राजकुमार सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का महान प्रस्थान, अमरावती। श्रेयः सेलको। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Andhra_pradesh,_la_grande_dipartita,_da_regione_di_amaravati,_II_sec.JPG)।

- **सांची**

सांची, मध्यप्रदेश के रायसेन जिले में स्थित भारत के सबसे महत्वपूर्ण बौद्ध मठ परिसरों में से एक है। यह बुद्ध के जीवन की किसी घटना से जुड़ा नहीं है, लेकिन तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. में मौर्य सम्राट अशोक के समय से ही प्रमुख रहा है। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने मूल स्तूप का निर्माण किया था और एक अशोक स्तंभ स्थापित किया था।

बाद में, इसे न केवल शाही राजवंशों जैसे शुंगों और सातवाहनों से संरक्षण प्राप्त हुआ, बल्कि

इसमें भिक्षुओं को भी रखा गया। सांची परिसर में कई स्तूप हैं लेकिन उनमें से तीन अपने बड़े आकार और संरक्षण की स्थिति के कारण विशिष्ट हैं। अन्य आकार में छोटे हैं और इसमें संरचनात्मक और एक चट्टानी या स्मृति स्तूप दोनों शामिल हैं। स्तूप I सबसे बड़ा स्तूप है जिसे महान स्तूप भी कहा जाता है। उत्खनन में इस स्तूप में पुरावशेष पाए गए हैं, स्थापत्य विशेषताओं के संदर्भ में यह सबसे विस्तृत है। इसका व्यास 36.60 मीटर है। और रेलिंग और छतरी के बिना इसकी ऊँचाई 16.46 मीटर है। स्तूप के पत्थर का गुंबद एक पूर्ववर्ती ईंट स्तूप को ढके हुए है जो संभवतः अशोक द्वारा बनाया गया था। यह एक पत्थर की रेलिंग (वेदिका) से घिरा हुआ है, जिसमें चार कार्डिनल दिशाओं पर चार तोरण (स्मारक द्वार) हैं। ये तोरण सातवाहनों द्वारा बनवाए गए थे। प्रत्येक तोरण पर विभिन्न प्रकार के विषयों को तराशा गया है जिसमें *जातक* के दृश्य, बुद्ध के जीवन के दृश्य, बौद्ध धर्म के बाद के इतिहास की घटनाएँ आदि शामिल हैं।

बाएँ: सांची में महान स्तूप जिसमें बुद्ध के अवशेष शामिल हैं। पूर्वी द्वार। श्रेय – रवीश व्यास। स्रोतः https://www.flickr.com/photos/32392356@N04/ 3311834772. विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Sanchi_Stupa_from_Eastern_gate,_Madhya_Pradesh.jpg)।

दाएँ: सजावटी स्तंभ, सांची गुंबद की ओर स्थित। एएसआई स्मारक संख्या एन-एमपी -220। श्रेयः अमीगो और ऑस्कर। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स ((https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ornamental_Pillar_leading_to_Sanchi_Dome_(N-MP-220).jpg) ।

बाएँ: सांची में माया के सपने की अभिव्यक्ति, स्तूप I पूर्वी गेटवे। श्रेयः बिस्वरुप गांगुली। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/ File:Maya%27s_dream_Sanchi_Stupa_1_Eastern_gateway.jpg)।

दाएँ: बुद्ध से मिलने के लिए श्रावस्ती को छोड़ते हुए कोशल के राजा प्रसेनजीत का जुलूस, सांची स्तूप I उत्तरी गेटवे। श्रेयः बिस्वरुप गांगुली। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Procession_of_Prasenajit_of_Kosala_leaving_Sravasti_to_meet_the_Buddha.jpg)।

स्तूप II मुख्य परिसर से थोड़ा दूर स्थित है। इसकी वेदिका को विस्तृत रूप से चित्रांकित किया गया है लेकिन यह किसी भी तोरण से रहित है। खुदाई में कई बौद्ध शिक्षकों के अवशेष

मिले। स्तूप III से सारिपुत्र और मौदगल्यायन के अवशेष – बुद्ध के दो सबसे बड़े शिष्य – पाए गए। इन स्मारकों के अलावा एक बड़े मठ के अवशेष हैं। सांची विदिशा नामक एक बहुत समृद्ध व्यापारी शहर के पास एक महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग पर स्थित है। यहाँ के दान अभिलेखों से पता चलता है कि सांची संरक्षण का लाभार्थी था। यह गुप्त काल में भी महत्वपूण था। यह यहाँ के गुप्तकाल के मन्दिरों से प्रमाणित होता है। यह 13वीं शताब्दी सी.ई. तक फला-फूला और बाद में इसका पतन हो गया। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में जनरल टेलर द्वारा इसको खोजा गया।

पुरातत्व केवल प्राचीन काल तक ही सीमित नहीं है। उपर्युक्त पुरातात्विक स्थलों के अलावा कुछ उत्खनन स्थल हैं जो बाद के काल से भी संबंधित हैं। लाल कोट और विजयनगर ऐसे स्थलों में प्रमुख हैं। दिल्ली के महरौली में स्थित लाल कोट में खुदाई से दो सांस्कृतिक काल का पता चलाः

i) 11वीं शताब्दी के मध्य से 12वीं शताब्दी सी.ई. के अंत तक की अवधि।

ii) 12वीं शताब्दी के अंत से 14वीं शताब्दी के अंत तक की अवधि का काल (Period II) द्वितीय सल्तनत काल का था। पहले तुर्क सुल्तानों ने लाल कोट क्षेत्र में ही अपनी राजधानी बनाई थी, इसे दिहली-ए-कुहना (पुरानी दिल्ली) कहा जाता था। मध्ययुगीन विजयनगर के अवशेषों की खोज इसकी राजधानी हम्पी, कर्नाटक में की गई है। विजयनगर अनुसंधान परियोजना (वीआरपी) और विजयनगर महानगर सर्वेक्षण (वीएमएस) दो बड़े पैमाने पर पुरातात्विक परियोजनाएँ हैं, जो विजयनगर के अनुसंधान पर केंद्रित हैं।

बोध प्रश्न 2

1) भारतीय उपमहाद्वीप के आरंभिक केन्द्रों में जौ और चावल की खेती के हमारे पास क्या तथ्य हैं? मेहरगढ़ के संदर्भ में चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) बौद्ध धर्म से संबंधित प्रमुख पुरातात्विक स्थलों पर कला और वास्तुकला से सम्बन्धित विभिन्न विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2.6 सारांश

पुरातत्व मानव द्वारा छोड़ी गई सामग्री के अध्ययन से अतीत को समझने में मदद मिलती है।

फील्ड-वॉकिंग द्वारा अन्वेषण एवं गैर-विनाशकारी वैज्ञानिक तरीकों के जरिए हम सामग्री इकट्ठा कर सकते हैं। पुरातात्विक स्थलों पर उत्खनन से हमें पुरावशेषों और इकोफैक्ट्स के बारे में जानकारी मिलती है। सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान की तकनीक अपनाने से अवशेषों की जाँच की जा सकती है। वे हमें मानव व्यवहार, बस्तियों, उत्पादन प्रक्रियाओं और प्राचीन प्रौद्योगिकियों, व्यापार और विनिमय, निर्वाह और आहार के बारे में जानकारी देते हैं। सामाजिक जीवन के पहलुओं जैसे स्थिति, धर्म और अनुष्ठान के बारे में हम जान सकते हैं। एक स्रोत के रूप में पुरातत्व का महत्व प्राचीन काल तक सीमित नहीं है लेकिन इसे मध्ययुगीन और यहाँ तक कि समकालीन काल के भौतिक अवशेषों तक अपनाया जा सकता है।

2.7 शब्दावली

सी.ई. : सामान्य युग (Common Era)। इसका उपयोग अन्नो डोमिनी (एडी) के स्थान पर किया जाता है, इस वर्ष ईसा मसीह का जन्म हुआ था। चूंकि इस युग का उपयोग केवल ईसाई दुनिया तक ही सीमित नहीं है, बल्कि आमतौर पर दुनिया भर में उपयोग किया जाता है, इसलिए इसे कॉमन एरा के नाम से जाना जाता है।

बी.सी.ई. : इसका प्रयोग बिफोर क्राइस्ट (ईसा पूर्व) के स्थान पर किया जाता है।

बी.पी. : वर्तमान से पहले (Before Present)। रेडियोकार्बन डेटिंग वर्तमान वर्ष 1950 में तय की गई है। उदाहरण के लिए, 4950 बीपी को 3000 बी.सी.ई. के रूप में परिवर्तित किया जाएगा।

अशुलियन (Acheulian) : फ्रांस में सेंट अशुल के स्थल के नाम पर एक व्यापक प्रारंभिक पाषाण युग की संस्कृति। इसमें बहुउद्देश्यीय पत्थर के उपकरण जैसे हाथ-कुल्हाड़ी और क्लीवर शामिल थे। यह अफ्रीका, यूरोप और एशिया में फैला हुआ था। यह लगभग 1.65 मिलियन वर्ष पूर्व से 1,00,000 वर्ष पूर्व की है।

इस्तेमाल के सूक्ष्म चिन्ह : उपयोग, पॉलिशिंग या घर्षण के कारण उपकरणों के किनारे की क्षति के पैटर्न का विश्लेषण केवल माइक्रोस्कोप के माध्यम से किया जा सकता है। इन चिन्हों का विश्लेषण बताता है कि उपकरण कैसे उपयोग किए गए होंगे।

पेट्रोग्राफी : चट्टानों की संरचना का अध्ययन। पुरातत्व विज्ञान में आम तौर पर मिट्टी के खनिज घटकों की पहचान करके यह अनुमान लगाया जाता है कि इसका उपयोग कैसे हुआ।

पायरो-प्रौद्योगिकी : मानव द्वारा आग का जानबूझकर और नियंत्रित उपयोग। विभिन्न शिल्प प्रस्तुतियों में हीट ट्रीटमेंट

आवश्यक है, जिसके लिए कुछ तापमानों को प्राप्त करना और आवश्यकतानुसार बनाए रखना होता है।

टाइपोलॉजी : यह उपकरण को डिजाइन और दक्षता में सुधार के आधार पर और मिट्टी के बर्तनों और गहनों को रूप और सजावट के अनुसार अनुक्रमों में बाँटता है।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको सर्वेक्षण के गैर-विनाशकारी पहलू पर ज़ोर देना चाहिए और इसमें प्रयुक्त तकनीकों का उल्लेख करना चाहिए। अन्वेषण की एक सीमा यह है कि सतह पर पाए गए अवशेष अपने मूल संदर्भों में नहीं है। पुरावशेष और इकोफैक्ट को उनके उचित संदर्भ में समझने के लिए, स्थलों की खुदाई की जाती है। अन्वेषण और उत्खनन पर अनुभाग देखें।

2) आपको विभिन्न तरीकों और तकनीकों को सूचीबद्ध करना चाहिए जो साक्ष्यों से जानकारी निकालने में मदद करते हैं। भाग 2.4 को देखें।

बोध प्रश्न 2

1) मेहरगढ़ पर भाग 2.5 को देखें।

2) अमरावती और सांची के लिए भाग 2.5 के उपभागों को देखें।

2.9 संदर्भ ग्रंथ

चक्रवर्ती, डी. के. (2001) *इंडिया, एन आर्कोयोलॉजिकल हिस्ट्रीः पैल्योलिथिक बिगनिग्स टू अर्ली हिस्टोरिक फाउण्डेशन्स.* नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ड्रिवेट, पी. एल. (1999) *फील्ड आर्कोयोलॉजी : एन इंट्रोडक्शन.* लंदनः यूसीएल प्रेस।

ग्रीन, के. (2002) *आर्कोयोलॉजी : एन इंट्रोडक्शन.* लंदन और न्यूयॉर्कः रूटलेज।

रैनफ्रू, सी. एवं पी. ब्हान (2012) *आर्कोयोलॉजी : थ्योरीज़, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* छठवाँ संस्करण, लंदनः थेम्स और हडसन।

इकाई 3 भारतीय इतिहास : प्राकृतिक विशेषताएँ, गठन एवं लक्षण*

इकाई की रूपरेखा

---

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-1 से ली गई है।

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि :

- किसी देश के इतिहास के अध्ययन के लिए इसके भौगोलिक लक्षणों और विशेषताओं की जानकारी आवश्यक क्यों है?
- इतिहास के एक विद्यार्थी के रूप में प्राकृतिक विशेषताओं को हम किस तरह देखते हैं?
- पर्यावरण, भूगोल और इतिहास के बीच क्या सम्बन्ध है?
- भारतीय उपमहाद्वीप में ऐतिहासिक विकास का स्वरूप असमान क्यों है?
- भारतीय इतिहास के विभिन्न चरणों को समझने के लिए (भारतीय) भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी क्यों आवश्यक है?
- इन क्षेत्रों का उदय कैसे हुआ? तथा
- एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र से किस रूप में भिन्न था?

3.1 प्रस्तावना

बिना भूगोल के इतिहास प्रायः अधूरा रहता है और अपने एक प्रमुख तत्व से वंचित हो जाता है, यानी स्थान की अवधारणा के अभाव में इतिहास अपने लक्ष्य से भटक सकता है। यही कारण है कि इतिहास को मानव जाति के इतिहास और पर्यावरण के इतिहास, दोनों के रूपों में ही देखा जाता है। इन दोनों को अलग करना कठिन है। मानव इतिहास और पर्यावरण का इतिहास दोनों ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मिट्टी, वर्षा, वनस्पति, जल-वायु और पर्यावरण मानव संस्कृतियों के क्रमिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वस्तुतः मानव प्रगति का सार प्रकृति को नियंत्रित करके मानव जीवन को बेहतर बनाने में है। इस सम्बन्ध में तकनीकी प्रगति पर्यावरण को अपने नियंत्रण में लाने में मनुष्य की मदद करती है। मनुष्य प्रभावशाली ढंग से अपने पर्यावरण पर नियंत्रण स्थापित करने में इतिहास के बहुत आगे के चरण में ही सफल हो पाया। अतः जब हम अपने अतीत को समझने का प्रयास करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस भूगोल, पर्यावरण और उन प्राकृतिक क्षेत्रों को समझने और जानने का प्रयास करें जिन्होंने भारतीय इतिहास को प्रभावित किया। इस इकाई में हम आपको भारतीय उपमहाद्वीप की उन प्राकृतिक विशेषताओं से अवगत कराने का प्रयास करेंगे जिनका कि भारत के ऐतिहासिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारतीय उपमहाद्वीप कई क्षेत्रों से मिलकर बना है और प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेषताएँ हैं। देश के ऐतिहासिक उद्भव की प्रक्रिया में क्षेत्रों ने विशेष सांस्कृतिक विशेषताएँ ग्रहण की तथा कई आधारों पर जैसे ऐतिहासिक परंपरा, भाषा, सामाजिक संगठन, कला आदि के माध्यम से हम एक क्षेत्र से दूसरे की भिन्नताओं को इंगित कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय इतिहास में समान सामाजिक तथा सांस्कृतिक रीतियों एवं संस्थाओं तथा साथ ही क्षेत्रीय विशिष्टताओं की संरचना के स्थायित्व की दोहरी प्रक्रिया देखने को मिलती है।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इतिहास में क्षेत्रों के उदय की प्रक्रिया का स्वरूप असमान रहा है। अतः वर्तमान की भांति भूत में भी विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में काफी असमानताएँ रही हैं। यद्यपि कोई भी क्षेत्र कभी भी पूरी तरह से कटा हुआ नहीं रहा है। इस इकाई में भारतीय इतिहास के क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया तथा क्षेत्रीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। स्थान एवं काल के आधार पर भारतीय समाज के उद्भव के विभिन्न चरणों में भिन्नता को समझने के लिए भारतीय उप महाद्वीप का गठन करने वाले क्षेत्रों के स्वरूप की जानकारी अत्यावश्यक है।

3.2 प्राकृतिक भूगोल और इतिहास

मिट्टी, स्थलाकृति, वर्षा और जलवायु की विविधता ने अलग-अलग प्रकार के अनेक ऐसे क्षेत्र बनाए हैं जिनके प्राकृतिक लक्षण और पहचानें भी अलग-अलग हैं। प्राकृतिक क्षेत्र सांस्कृतिक क्षेत्रों के अनुरूप होते हैं। इन भिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास ही भिन्न प्रकार का रहा है। तात्पर्य यह है कि ये क्षेत्र भाषा, बोली, पोषाक, फसल, जनसंख्या घनत्व, जाति, संरचना आदि की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश और उत्तरी बिहार जैसे कुछ क्षेत्रों में, यानी गंगा घाटी के उपजाऊ मैदानों में, जनसंख्या घनत्व बहुत अधिक है। जबकि पठारी मध्य भारत की बसावट काफी छितरी हुई है। इसी प्रकार मगध, कौशल, अवन्ति, महाराष्ट्र, आंध्र, कलिंग और चोल देश जैसे कुछ क्षेत्र प्रारंभ में विकसित क्षेत्रों के रूप में उभरे, जबकि अन्य क्षेत्र विकास की दृष्टि से पिछड़े रहे। ऐतिहासिक रूप से विभिन्न प्रदेशों के उद्भव की प्रक्रिया असमान रही और विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों का विकास हुआ जो मुख्य रूप से भूगोल और पर्यावरण से संबंधित थीं और उनसे प्रभावित थीं। एक अन्य उदाहरण में हम देखते हैं कि गेहूं पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोगों का मुख्य भोजन है जबकि बंगाल, बिहार और उडीशा जैसे पूर्वी भारत के प्रदेशों के लोगों का मुख्य भोजन और वहाँ की मुख्य फसल चावल है। ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए है कि :

- विभिन्न फसलों के प्राकृतिक वास क्षेत्र भिन्न होते हैं;
- वे फसलें विशेष प्राकृतिक परिस्थितियों में उगती हैं; और
- समय के साथ बाद में ये फसलें उस स्थान विशेष के लोगों की भोजन सम्बन्धी आदतों को प्रभावित करती हैं।

इसी प्रकार सिंचाई के साधन भी अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग हैं।

- नदियों और नहरें उत्तर भारत में सिंचाई का सर्वाधिक प्रमुख साधन रहे हैं;
- प्राकृतिक तालाब पूर्वी भारत में बहुत उपयोगी रहे हैं;
- जलाशयों द्वारा सिंचाई ने दक्षिण भारत की कृषि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इन भिन्नताओं का अर्थ यह नहीं है कि पूर्वी या दक्षिणी प्रदेशों में नदियों का महत्त्व नहीं रहा है। बल्कि इनसे जो बात सामने आती है वह यह है कि विभिन्न प्रदेशों में जल संसाधनों में वृद्धि के लिए लोग विभिन्न तरीके अपनाते हैं। एक क्षेत्र विशेष में अपनाया गया तरीका इस बात पर निर्भर करता है कि वह उस क्षेत्र के लिए कितना उपयोगी है।

भूगोल और पर्यावरण, वस्त्र शैलियों के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, हम कश्मीरी, राजस्थानी तथा तटवर्ती क्षेत्रों में रहने वालों के वस्त्र और उनके पहनने ओढ़ने के तरीकों की तुलना कर सकते हैं। विभिन्न प्रदेशों की वस्त्र शैलियों पर उन प्रदेश की जलवायु और पर्यावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

गंगा के मैदान और डेल्टा उन्नत संस्कृतियों के जन्म स्थान रहे हैं, और यहाँ उनका युगों तक पोषण भी हुआ जबकि मध्य भारत के पर्वतीय इलाकों में अलग-अलग क्षेत्रों के आदिवासी लोगों की अच्छी बसावट रही है। इस तरह जहाँ नदियों के मैदानों में भरपूर प्राकृतिक सम्पदा रही है और मैदानी लोगों का अपना एक विशिष्ट जीवन रहा है, वहाँ अलग-अलग क्षेत्रों में बसे लोगों का जीवन अन्य भू-क्षेत्रों में प्रगति से अप्रभावित रहा। इसलिए भारतीय उपमहाद्वीप की वस्त्र शैली से संबंधित या भोजन सम्बन्धी आदतों या संस्कृतियों से सम्बद्ध विविधताओं के सहअस्तित्व को यहाँ के प्राकृतिक भूगोल के संदर्भ में ही ठीक से समझा जा सकता है।

प्राकृतिक भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा पोषित क्षेत्रीय भिन्नताएँ और उनसे संबंधित भिन्न

क्षेत्रीय पहचानें भारतीय इतिहास में स्थायी अखिल भारतीय राज्यों के उदय के मार्ग में बाधा बनी रही हैं। समूचा भारतीय उपमहाद्वीप कभी भी एक राजनीतिक इकाई नहीं रहा। यह बात मौर्य साम्राज्य, दिल्ली सल्तनत, मुगल साम्राज्य और साथ ही ब्रिटिश भारत पर समान रूप से लागू होती है। साथ ही यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि हालांकि भौगोलिक संरचनागत क्षेत्रीय विविधताओं ने हमारे इतिहास में अखिल भारतीय राज्यों के विकास में बाधा पैदा की फिर भी इन विविधताओं ने किसी भी काल में विभिन्न राष्ट्रीयताओं को जन्म नहीं दिया।
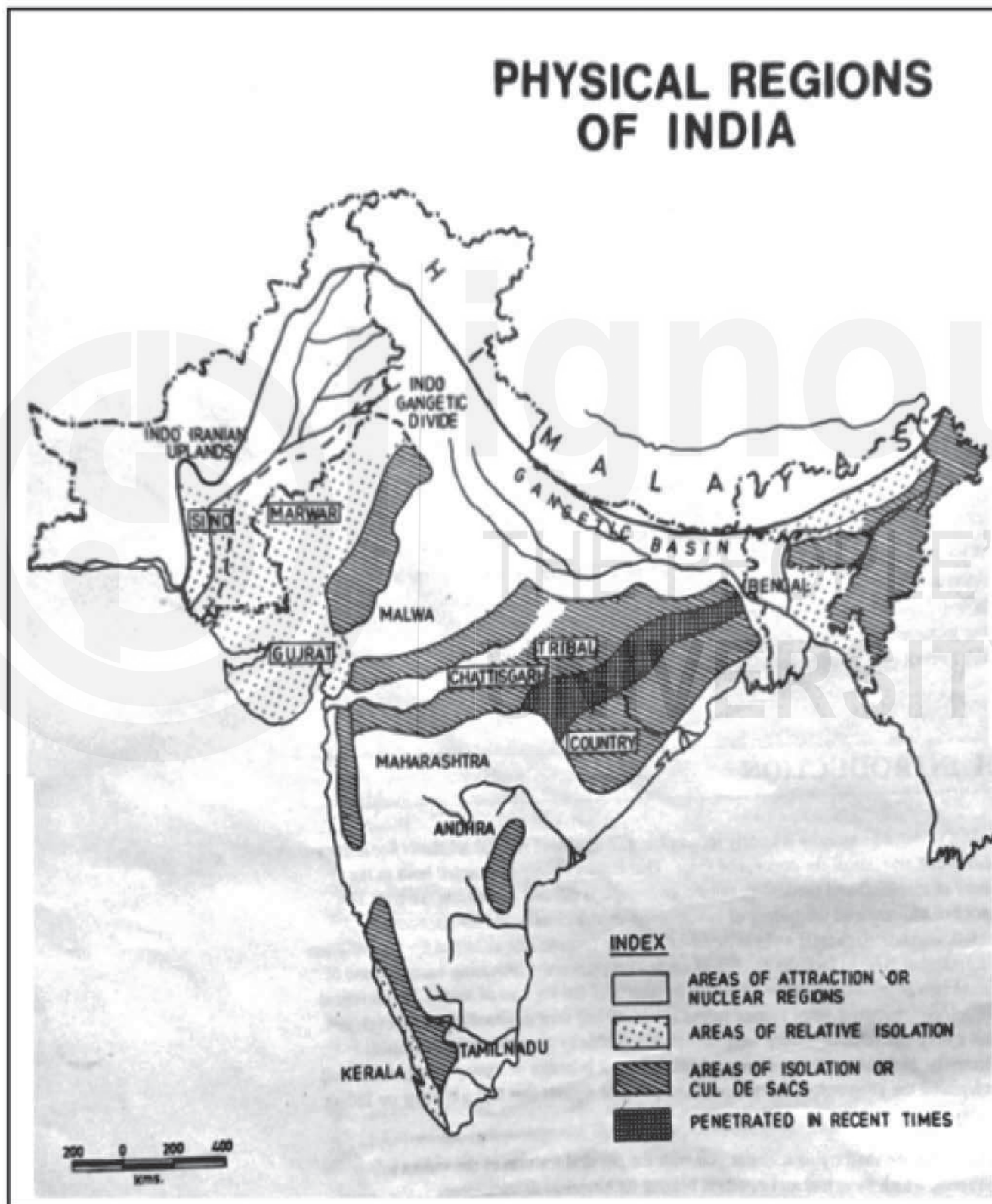
भारत के प्राकृतिक क्षेत्र। स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-1।

3.2.1 पर्यावरण और मानव बस्तियाँ

प्राकृतिक भूगोल मानव बस्तियाँ और बसावट की शैलियों का परस्पर सम्बन्ध एक और ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, सिंध प्रदेश आज अपेक्षाकृत गर्म और शुष्क है क्योंकि इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है। फिर भी हम जानते हैं कि अतीत में इसी क्षेत्र के अधिकांश भागों में हड़प्पा की सभ्यता का विकास हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि उस समय इस क्षेत्र की जलवायु नम रही होगी और वर्षा भी अपेक्षाकृत अधिक होती होगी, जिसके कारण यहाँ उच्चस्तरीय सभ्यता का विकास हो सका और लम्बे समय तक यह सभ्यता बनी रह सकी। कुछ विद्वानों द्वारा यह तर्क भी दिया जाता है कि प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण प्राकृतिक वनस्पति के क्षेत्र को नुकसान पहुँचा और साथ ही शुष्क जलवायु पैदा होने से लोगों के जीवन-निर्वाह का आधार ही खतरे में पड़ गया। इस प्रकार यह सभ्यता नष्ट हो गई (इस विषय पर विस्तृत जानकारी के लिए देखें इकाई 5)। अनुपयोगी भौगोलिक स्थितियों और भूमि तथा संसाधनों पर पड़ने वाले संभावित जनसंख्यात्मक दबाव ने लोगों को सभ्यता के इस केंद्र से पलायन करने पर मजबूर कर दिया। इस प्रकार यह सभ्यता धीरे'-धीरे नष्ट हो गई।

दूसरी ओर मगध साम्राज्य की सफलता और इस साम्राज्य द्वारा स्थापित किया गया राजनीतिक प्रभुत्व हमें आश्चर्य में डाल देता है। इसके क्या कारण थे? यह तर्क दिया जा सकता है कि इस साम्राज्य की स्थापना में कई तत्व सहयोगी बने :

- अत्यधिक उपजाऊ जमीन;
- पर्याप्त वर्षा और उससे होने वाली धान की वार्षिक अच्छी फसल;
- लोहे की खानों तथा छोटा नागपुर पठार के पत्थर और लकड़ी के स्रोतों का निकट होना;
- नदियों द्वारा पर्याप्त संचार और व्यापार की सुविधा उपलब्ध कराना;
- मानव बस्तियों की निकटता और निरंतरता, जो बहुत कुछ इन प्राकृतिक सुविधाओं के कारण संभव हुई, अत्यधिक जनसंख्या घनत्व की ओर इशारा करती है।

संयुक्त रूप से इन तथ्यों ने आसानी से उत्तरी गांगेय मैदान पर विजय प्राप्त करने में मदद दी। वास्तव में इन्हीं कारणों से सिंधु-गांगेय का मैदानी प्रदेश, कृषि उत्पादकता और जनसंख्या की दृष्टि से अन्य प्रदेशों से आगे था। उत्तरी मैदानों की ओर सीमाई विस्तार से उस समय निर्विवाद भारतीय सर्वोच्चता की स्थापना का आधार मिला। इस तरह इस क्षेत्र में एक के बाद एक घटने वाली घटनाओं को एक क्रम में देखा जा सकता है। मगध राज्य का भारत पर अधिपत्य उसकी उत्तरी मैदानों की विजय पर आधारित था। इन मैदानों की भूमि, वर्षा, वनस्पति, सहज संचार सुविधा और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि ने मगध साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने में मदद की।

मगध के राजनीतिक प्रभुत्व के बढ़ने से इसकी राजधानी पाटलीपुत्र उत्तरी भारत की राजधानी बन गई। साम्राज्यवादी राजधानी के रूप में पाटलीपुत्र का महत्त्व कई शताब्दियों तक बना रहा। पाटलीपुत्र के उत्थान और पतन के अनेक भौगोलिक कारण गिनाए गए हैं। पाटलीपुत्र के इतिहास के प्रारंभिक दिनों में गंगा, सोन और गंडक जैसी नदियाँ उसे प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करती थीं। साथ ही व्यापार और परिवहन की सहज सुविधाएँ भी देती थीं। लेकिन प्रथम सहस्त्राब्दि सी.ई. के मध्य तक लगातार बाढ़ों के कारण इन नदियों का महत्त्व कम हो गया। यह सर्व विदित है कि गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में व्यापार की क्षति हुई और नगरों का पतन हुआ। गुप्त काल और उत्तर गुप्त काल में उत्तर भारत में व्यापार और वाणिज्य के पतन के साथ मानव गतिविधियों के कम हो जाने और गंगा नदी का मार्ग बदल जाने से इन नदियों की उपयोगिता कम हो गई। इस काल में गांगेय उत्तर भारत में नगरों के पतन के

कारणों में आंतरिक क्षेत्रों में वनों की कटाई और परिणामतः वर्षा में कमी जैसे भौगोलिक कारण भी बताए गए हैं। हो सकता है कि ये कारण पूरी तरह से सही न हों। फिर भी ये उदाहरण निश्चित रूप से यह बताते हैं कि ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और भौगोलिक विशेषताओं के बीच सदैव ही निकट सम्बन्ध रहा है।

3.2.2 भौगोलिक नियतत्ववाद के विरुद्ध तर्क

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्राकृतिक विशेषताओं और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के विकास के बीच अन्तर्सबन्ध को देखना और समझना एक बात है, परन्तु इतिहास को भौगोलिक नियतत्ववाद के अर्थ में देखना एक पूरी तरह भिन्न बात है। भौगोलिक तथ्यों की जानकारी से सांस्कृतिक विकास को ठीक प्रकार से समझने में मदद मिलती है। इससे विभिन्न प्रदेशों में विकास के अलग-अलग तरीकों और शैलियों को भी समझने में सहायता मिलती है। फिर भी भूगोल और पर्यावरण को एकमात्र या प्रमुख नियामक कारक के रूप में नहीं लिया जा सकता क्योंकि अंततः प्राकृतिक क्षेत्र मात्र संभावनाओं वाले क्षेत्र होते हैं और उन संभावनाओं को मनुष्य अपनी तत्कालीन तकनीकी उपलब्धियों के आधार पर कार्यान्वित करता है। यह कहा जा सकता है कि ''प्रकृति, विकास का मार्ग तय करती है, जबकि मनुष्य विकास की अवस्था और उसकी गति को तय करता है।'' इसलिए न तो प्रकृति का प्रभाव स्थायी होता है और न ही मनुष्य और पर्यावरण के सम्बन्ध ही सुस्थिर हैं। मनुष्य अपने अनुभव और अपने औज़ारों के बल पर प्रकृति द्वारा लगाई गई सीमाओं और बाधाओं पर विजय प्राप्त करता रहा है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो मानवीय अनुभव को निरंतर समृद्ध बनाती है और पर्यावरण पर मनुष्य के नियंत्रण की सीमाओं को निरंतर विस्तार देती जाती है। एक समय में जो प्राकृतिक विशेषताएँ और पर्यावरण से सम्बद्ध स्थितियाँ प्रतिकूल प्रतीत होती हैं दूसरे चरण में वे ही समृद्ध संभावनाओं वाली हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, आखेटक-संग्राहक लोग जंगलों के निकट, या जिन्हें आज हम सीमांत क्षेत्र कहते हैं, वहाँ रहना पसंद करते थे। लेकिन प्रारंभिक किसानों को लोहे आदि के हल इत्यादि के अभाव में स्वयं को गंगा-यमुना दो-आब के पश्चिम में नर्म भूमि तक ही सीमित रहना पड़ा। ये किसान, गांगेय उत्तरी भारत के समृद्ध जलोढ़ मैदानों पर लोहे के आगमन के साथ ही पहुँच सके और तभी वे घनी वनस्पति और भारी तथा उपजाऊ मिट्टी वाली भूमि का दोहन कर सके।

3.3 आधारभूत भू-आकृतिक विभाजन

अब हम भारतीय उपमहाद्वीप के प्राकृतिक लक्षणों की और इन लक्षणों द्वारा निर्मित विभिन्न प्रदेशों की विशिष्टताओं की चर्चा करेंगे। भू-आकृतिक लक्षणों के आधार पर उपमहाद्वीप को तीन भागों में बांटा जा सकता हैः

1) हिमालय के पर्वतीय प्रदेश;

2) सिंधु गंगा के मैदान; और

3) प्रायद्वीपीय भारत।

इनमें से प्रत्येक का आगे भी विभाजन किया जा सकता है। यह माना जाता है कि हिमालय पर्वत श्रृंखला की ऊँचाई अब भी बढ़ रही है। हिमालय की पर्वतीय श्रृंखलाओं के अपक्षय और भूमि कटाव के कारण जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी निरंतर बह कर भारी मात्रा में इन मैदानों में आती है। हिमालय की बर्फ के पिघलते रहने से सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र तीन बड़ी नदियों में निरंतर जल प्रवाह बना रहता है। उत्तर भारत का कछारी मैदान लगभग 3200 किलोमीटर तक एक धनुष के आकार में सिंधु के मुहाने से लेकर गंगा के मुहाने तक फैला हुआ है। लगभग 320 किलोमीटर चौड़ाई वाला यह मैदान तमाम संभावनाओं से भरा हुआ है। सिंधु के मैदान में भारतीय उपमहाद्वीप की पहली सभ्यता का विकास हुआ जबकि गंगा के मैदान में

पहली सहस्राब्दि बी.सी.ई. से नगर जीवन, राज्य, समाज और सम्राज्य सम्बन्धी ढांचे का पोषण और विकास हुआ।

उत्तर के मैदान और प्रायद्वीपीय भारत को, एक विशाल मध्यवर्ती क्षेत्र जिसे किसी बेहतर शब्दावली के अभाव में मध्य भारत कहा जा सकता है, अलग करता है। यह मध्यवर्ती क्षेत्र गुजरात से लेकर पश्चिमी उडीशा तक लगभग 1600 किलोमीटर तक फैला हुआ है। राजस्थान की अरावली पहाड़ियाँ सिंधु के मैदान को प्रायद्वीप से अलग करती हैं। मध्यवर्ती क्षेत्र में विंध्याचल और सतपुड़ा की पर्वत श्रृंखला और छोटा नागपुर का पठार है जो बिहार, बंगाल और उडीशा के कुछ क्षेत्रों तक फैला है। इस मध्यवर्ती क्षेत्र यानी मध्य भारत को चार उप प्रदेशों में बांटा जा सकता है :

1) उदयपुर और जयपुर के बीच राजपूतों की भूमि;

2) उज्जैन के आस-पास माल्वा का पठार जो प्राचीन समय में अवन्ति के नाम से प्रसिद्ध था;

3) विदर्भ या नागपुर के आस-पास का उप-क्षेत्र; और

4) पूर्वी मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ का मैदान जो प्राचीन काल में दक्षिण कौशल के नाम से जाना जाता था।

हालांकि सामान्य रूप में इस मध्यवर्ती क्षेत्र में संचार तथा आवागमन कभी भी आसान नहीं रहा फिर भी इन चार प्रत्यक्ष रूप से अलग-अलग उप प्रदेशों के बीच आपस में सम्पर्क बना रहा, तथा मध्यवर्ती क्षेत्र और अन्य भौगोलिक क्षेत्रों के बीच भी सम्पर्क बना रहा।

मध्यवर्ती क्षेत्र या मध्य भारत के दक्षिणी सिरे पर वह भू-रचना शुरू होती है जिसे प्रायद्वीपीय भारत कहा जाता है यह एक प्राचीन भू-भाग है जिसमें स्थायित्व के सभी लक्षण मौजूद हैं। यह भू-भाग पठारी है। इस पठारी चट्टानी संरचना का झुकाव पश्चिम से पूर्व की ओर है। इसमें चार प्रमुख नदियाँ हैं जो बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। ये नदियाँ हैं महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। इन नदियों के कारण इस पठारी क्षेत्र में जलोड़ बने और इन मैदानों तथा नदियों के डेल्टाओं में मूल आवास क्षेत्रों का विकास हुआ। यहाँ दीर्घ काल तक सांस्कृतिक विकास की धारा प्रवाहित हुई जो प्राचीन काल से प्रारंभ होकर मध्यकाल से होते हुए आधुनिक काल तक निरंतर बहती रही।

मध्य भारत में बहने वाली नर्मदा और ताप्ती नदियों का प्रवाह पश्चिम की ओर है। पर्वतीय मध्य भारत में लम्बी दूरी तय करने के बाद ये नदियाँ गुजरात में अरब सागर में गिरती हैं। उपमहाद्वीप के इस भाग की प्रमुख विशेषता दक्कन का पठार है। यह उत्तर में विंध्य पर्वत श्रेणियों से लेकर कर्नाटक की दक्षिणी सीमाओं तक फैला हुआ है। महाराष्ट्र तथा मध्य भारत के भू-भागों में काली मिट्टी विशेष रूप से उपजाऊ है, क्योंकि इसमें नमी बनी रहती है और इस जमीन को 'स्वहलित' भूमि यानी ऐसी भूमि कहा जाता है जिसमें जुताई की आवश्यकता नहीं होती। भूमि की इस विशेषता के कारण वार्षिक वर्षा की कमी और सिंचाई संबंधी अन्य कठिनाइयाँ फसल के लिए बड़ी बाधा नहीं बनतीं। यह भूमि कपास, ज्वार, मूंगफली और तिलहन की अच्छी फसल देती है इसलिए यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि पश्चिम और मध्य भारत में प्रारंभिक कृषि संस्कृतियाँ (ताम्र पाषाण संस्कृति) इसी क्षेत्र में उदित हुई। दक्षिण का यह पठार पश्चिम में पश्चिमी घाट तक फैला है और पूर्व में इसकी सीमाएँ पूर्वी घाट से लगी हुई हैं। पूर्वी घाट इसको पूर्वी तटवर्ती मैदानों से अलग करता है। मैदान पश्चिम के संकरे मैदानों की तुलना में कहीं अधिक चौड़े हैं। नीलगिरी और कार्डोमम पहाड़ियाँ मूल प्रायद्वीपीय संरचना की उत्पत्ति मानी जाती हैं।

बोध प्रश्न-1

1) सही कथन पर (✓) का चिह्न लगाइए।

प्राकृतिक भूगोल की जानकारी

i) विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की जीवन शैलियों को समझने में मदद करती है,

ii) अतीत में सांस्कृतिक विकास की प्रकृति को समझने में कोई मदद नहीं करती,

iii) इतिहास के विद्यार्थी के लिए कोई महत्त्व नहीं है,

iv) आपको केवल विशेष क्षेत्रों के अध्ययन तक सीमित कर देती है।

2) मगध के उत्थान की उत्तरदायी प्राकृतिक विशेषताओं का उल्लेख करिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) रिक्त स्थान भरिए :

i) भौगोलिक तथ्य मगध के .... (उत्थान और पतन/बाढ़ग्रस्त होने) के कारणों को तय करने में .... (हमारी मदद करते हैं/हमारी मदद नहीं करते हैं)

ii) मनुष्य प्रकृति को सफलता से नियंत्रित .... (करता है/करने का प्रयास करता है)

iii) भारत में मूल भू-आकृतिक विभाजन .... है। (पाँच/दो/तीन)

iv) मध्यवर्ती क्षेत्र में .... (मूल भू-आकृतिक/उपक्षेत्र) शामिल हैं।

3.4 क्षेत्रीय प्राकृतिक विशेषताएँ

अभी तक हमने मोटे तौर पर भौगोलिक विभाजनों की विशेषताओं का सामान्य आधार पर विवेचन किया है। अब हम उन विशिष्ट प्रमुख भौगोलिक इकाइयों को लेंगे जो आमतौर पर भाषा पर आधारित विभाजनों को पुष्ट करती हैं, और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उनकी प्राकृतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।
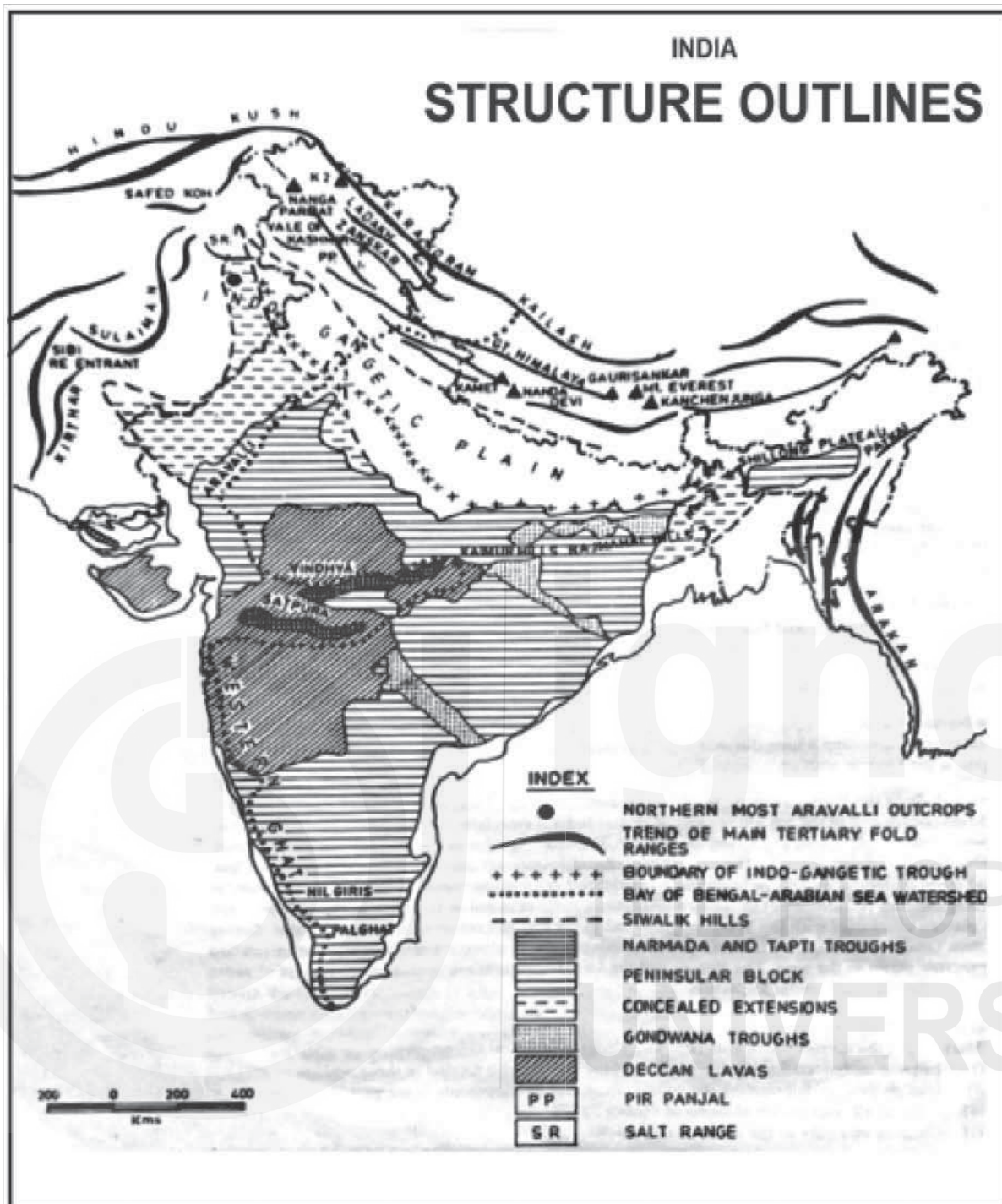
स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-1

3.4.1 हिमालय और पश्चिमी सीमा प्रदेश

हिमालय को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है। हर भाग की अपनी विशेषतायें हैं :

- पूर्वी हिमालय
- पश्चिमी हिमालय और
- मध्यवर्ती हिमालय

पूर्वी हिमालय पर्वत श्रृंखला ब्रह्मपुत्र के पूर्व में उत्तर दक्षिण दिशा में असम से लेकर दक्षिण चीन तक फैली हुई है। हालांकि पूर्वी हिमालय पर्वतमाला के बीच से गुजरने वाले मार्ग दुर्गम हैं फिर भी प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक कालों में दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिण चीन से

सांस्कृतिक प्रभावों का आना नहीं रुका। मध्यवर्ती हिमालय पर्वत श्रृंखलाएँ, जो भूटान से चित्राल तक फैली हुई हैं। तिब्बत के विशाल पठार की सीमा पर स्थित हैं। भारत और तिब्बत के बीच व्यापार तथा अन्य प्रकार के सम्बन्ध इसी सीमा प्रदेश के माध्यम से बने रहे।

संकरी हिन्दुकश पर्वत श्रृंखला हिमालय से दक्षिण पश्चिम की ओर प्राचीन गांधार प्रदेश को घेरती हुई अफगानिस्तान में दूर तक फैली है। भौगोलिक और सांस्कृतिक रूप से पश्चिमी अफगानिस्तान का गहरा सम्बन्ध और समानतायें पूर्वी ईरान से है लेकिन दक्षिण-पूर्वी अफगानिस्तान सांस्कृतिक रूप से नवपाषाण काल से ही भारतीय उपमहाद्वीप के निकट रहा है। खैबर दर्रा और अन्य दर्रे तथा काबुल नदी इस क्षेत्र को सिन्धु के मैदान से जोड़ते हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि अफगानिस्तान के इस भाग में स्थित शोर्तुगई हड़प्पा की सभ्यता का एक प्रमुख व्यापारिक बाह्य केंद्र था। काबुल और कन्धार जैसे प्राचीन नगर ईरान और भारत के बीच व्यापार मार्गों पर स्थित है।

बलूचिस्तान की ओर चलते हुए दक्षिण पश्चिम अफगानिस्तान में रेगिस्तानी हालात काफी प्रखर रूप से सामने आते हैं। इस क्षेत्र में नवपाषाण काल से ही पशुचारण को जीवन के लिए एक लाभदायक अनुकूल नीति के रूप में अपनाया जाता रहा है। बलूचिस्तान का तटवर्ती क्षेत्र जो कि मकरान कहा जाता है, मानव बस्तियों के लिए कभी भी उपयुक्त क्षेत्र नहीं रहा। उदाहरण के लिए, भारत अभियान से वापस लौटते हुए जब सिकन्दर अपनी सेना के एक भाग को मकरान तट से होकर ले गया तो उसे भोजन और पानी की कमी के कारण भारी जन हानि उठानी पड़ी। यह प्रदेश एक प्रकार का केंद्रीय स्थल रहा है क्योंकि यहाँ से एक ओर तो मध्य एशिया और चीन के लिए रास्ते निकलते हैं, तो दूसरी ओर ईरान और सुदूर पश्चिम की ओर रास्ते निकलते हैं। वे सभी प्रमुख मार्ग, जो अफगानिस्तान होकर भारत के मैदानों को ईरान और मध्य एशिया से जोड़ते हैं, गोमाल, बोलन और खैबर दर्रों से होकर जाते हैं। ऐतिहासिक कालों अथवा उससे भी पहले व्यापारी, हमलावर और विविध सांस्कृतिक प्रभाव इन सभी प्रमुख मार्गों से होकर भारत आते रहे। यूनानी, शक, कुषाण, हूण और अन्य हमलावर इन्हीं मार्गों से भारत आए। बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति के अन्य प्रभाव अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक इन्हीं दर्रों से होकर पहुँचे। इस तरह ऐतिहासिक रूप से अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र महत्त्वपूर्ण सीमान्त क्षेत्र रहे हैं।

3.4.2 सिंधु का मैदान

इन दर्रों से निकलने वाले ये मार्ग सिंधु के उपजाऊ मैदानों की तरफ ले जाते हैं। इस मैदान को दो भागों में बांटा जा सकता है :

- पंजाब और
- सिंध

पंजाब (इस समय भारत और पाकिस्तान के बीच विभाजित) का शाब्दिक अर्थ है पाँच नदियों की भूमि। विस्तृत जलोढ़ मैदान के बीच से बहने वाली सिंधु नदी की पाँच सहायक नदियों ने इस क्षेत्र को उपमहाद्वीप का बहु-धान्य प्रदेश बना दिया है। इस मैदान का पूर्वी भाग गंगा की घाटी से जा मिलता है। पंजाब विभिन्न संस्कृतियों का मिलन स्थल और उनके परस्पर एकीकृत होने का स्थान रहा है। पूर्व स्थापित संस्कृतियों के तथा बाहर से आने वाले नये तत्व यहाँ घुल-मिल कर एक होते रहे हैं। पंजाब की सामरिक स्थिति और यहाँ की समृद्धि सदा ही हमलावरों को आकर्षित करती रही है।

सिंधु घाटी का निचला क्षेत्र और डेल्टा मिल कर सिंध प्रदेश का निर्माण करते हैं। यह प्रदेश उत्तर पश्चिम में बलूचिस्तानी पहाड़ियों और दक्षिण-पूर्व में थार के रेगिस्तान से घिरा हुआ है।

इस प्रदेश के गुजरात के साथ ऐतिहासिक सम्बन्ध रहे हैं। इस प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है लेकिन यहाँ की जलोढ़ भूमि बहुत उपजाऊ है। सिंध प्रदेश, सिंधु नदी का प्रदेश है और बड़ी मात्रा में चावल और गेहूं उत्पन्न करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सिंधु मैदान में 3-2 सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप की पहली नगरीय संस्कृति पनपी। इनके दो प्रमुख नगर हड़प्पा और मोहनजोदड़ों क्रमशः पंजाब और सिंध में स्थित हैं।

3.4.3 गांगेय उत्तरी भारत

सिंधु के मैदान की तुलना में गंगा का मैदान जलवायु की दृष्टि से अधिक आद्र है। वार्षिक वर्षा जो सिंधु-गंगा विभाजक पर 50 सेंटीमीटर होती है वह बंगाल तक पहुँचते-पहुँचते बढ़ कर दो सौ सेंटीमीटर हो जाती है। गंगा के मैदानी क्षेत्र को तीन उप-क्षेत्रों में बांटा जा सकता है :

- ऊपरी क्षेत्र,
- मध्य क्षेत्र, और
- निचला क्षेत्र

पश्चिम और मध्य उत्तर प्रदेश के ऊपरी मैदानी क्षेत्र में अधिकांश दोआब का इलाका शामिल है। यह *संघर्ष* और सांस्कृतिक संश्लेषण का क्षेत्र रहा है। हड़प्पा संस्कृति के इस क्षेत्र तक फैले होने के बहुतायत में साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं। यह क्षेत्र ''चित्रित धूसर या भूरे भांड संस्कृति'' का केंद्र भी था और उत्तर वैदिक काल में हलचल भरी गतिविधियों का केन्द्र प्रयागराज रहा। प्राचीन प्रयाग भी दोआब की सीमा पर गंगा और यमुना नदियों के *संगम* पर स्थित है। गांगेय मैदान का मध्य क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक फैला हुआ है। यह वही क्षेत्र है जहाँ प्राचीन कौशल, काशी और मगध स्थित थे। यह क्षेत्र छठी शताब्दी बी.सी.ई. से नगर जीवन, मौद्रिक अर्थव्यवस्था तथा व्यापार का केंद्र रहा है। इसी प्रदेश ने मौर्य साम्राज्य के विस्तार को आधार प्रदान किया और यह भू-प्रदेश राजनीतिक दृष्टि से गुप्त काल पाँचवी शताब्दी सी.ई. तक महत्त्वपूर्ण बना रहा।

गंगा के मैदान का ऊपरी और मध्य क्षेत्र भौगोलिक रूप से उत्तर में हिमालय पर्वत शृंखलाओं और दक्षिण में मध्य भारत की पर्वत शृंखलाओं से सीमाबद्ध होता है। गंगा के मैदान का निचला क्षेत्र बंगाल प्रान्त के साथ फैला हुआ है। बंगाल का विस्तृत मैदान, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लाई गई जलोढ़ यानी कछारी मिट्टी से निर्मित हुआ है। मैदान के निचले क्षेत्रों में भारी वर्षा होने से यहाँ पर घने जंगल और दल-दल हैं। इनके कारण बंगाल में प्रारंभिक बस्तियों की बसावट में काफी बाधाएँ आईं। इस जलोढ़ भूमि की उर्वरता का उपयोग तभी किया जा सका जब लौह तकनीक पर नियंत्रण और उसका प्रयोग अच्छी मात्रा में शुरू हो गया। इस क्षेत्र को देखते हुए तालाब और पोखर प्राचीन समय से ही बंगाल के जीवन में विशिष्ट बने रहे हैं। प्राचीन समय से ही मछली यहाँ के सभी वर्गों के भोजन का आवश्यक अंग रही है।

अन्य वृहद बसावट वाले क्षेत्रों की तुलना में गंगा का मैदान अनेक घनी बस्तियों वाला क्षेत्र रहा है। जनसंख्या घनत्व भी यहाँ अपेक्षाकृत अधिक रहा है। पहली सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. से ही यह क्षेत्र भारतीय सभ्यता का मुख्य केंद्र रहा है। अति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक इस प्रदेश की यह स्थिति बनी हुई है। बंगाल के मैदान से लगी हुई ब्रह्मपुत्र द्वारा निर्मित दूर तक फैली हुई असम घाटी है। यह 600 किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में फैली हुई है। सांस्कृतिक रूप से असम बंगाल के निकट है। लेकिन ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से यह प्रदेश उडीशा की तरह देर से विकास प्रक्रिया में आने वाला प्रदेश है।

3.4.4 पूर्वी, पश्चिमी और मध्य भारत

मध्य भारत जैसा कि पहले बताया जा चुका है, एक पूरी तरह भिन्न प्रकार का क्षेत्र है और उसमें कोई भी ऐसा विशेष स्थान नहीं है जिसे केंद्र स्थान मान कर बात की जा सके। यह एक पर्वतीय प्रदेश है जहाँ पहाड़ियाँ अधिक ऊँचाई तक नहीं पहुँचती। प्रतापीय ढाल इस क्षेत्र की पर्वत श्रृंखलाओं को बीच-बीच में खंडित करते हैं और घाटियाँ इन्हें विभाजित करती हैं। ये पर्वत श्रृंखलाएँ सामान्य रूप से पूर्व से पश्चिम की ओर चलती हैं। लेकिन इस भू-आकृतिक क्षेत्र के उत्तर, पश्चिम भाग में अरावली पर्वत श्रृंखलाएँ मरू प्रदेश राजस्थान को लगभग दो भागों में विभाजित करती हैं। अरावली पर्वत श्रृंखला के पूर्व में राजस्थान का दक्षिण पूर्वी भाग मालवा उप-क्षेत्र का एक अंग है। इस प्रदेश की मिट्टी उपजाऊ है। इसलिए यहाँ सिंचाई के अभाव के बावजूद अच्छी फसलें हो जाती हैं। इस प्रदेश में ताम्र-पाषाण युगीन बस्तियाँ काफी संख्या में फैली हुई थी। इसकी भौगोलिक अवस्थाओं को देखते हुए प्रतीत होता है कि यह प्रदेश हड़प्पा-कालीन समुदायों और मध्य भारत तथा उत्तरी दक्कन के दूसरे ताम्र पाषाण युगीन समुदायों के बीच सेतु के रूप में रहा होगा। सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश में उत्तर कालों में, उत्तरी मैदानों की संस्कृति का ही विस्तार हुआ। इस प्रदेश के पूर्व में ऊपरी महानदी क्षेत्र में छत्तीसगढ़ का मैदान एक छोटा उपजाऊ क्षेत्र है। यहाँ अच्छी वर्षा होती है और धान उगाया जाता है। चौथी-पाँचवीं शताब्दी से यहाँ का ऐतिहासिक विकास उसी प्रकार का था जैसा कि पश्चिमी उड़ीसा के ऊँचे पहाड़ी क्षेत्रों में हुआ। इन क्षेत्रों में भौगोलिक निकटता के कारण सांस्कृतिक और राजनीतिक आदान-प्रदान होता रहा।

यह अधिकांश भू-भाग जिसे हमने मध्य भारत बताया है, आज मध्य प्रदेश के नाम से जाना जाता है। इस प्रदेश में उत्तर से दक्षिण में विंध्य और सतपुड़ा पर्वत श्रृंखलाएँ तथा नर्मदा और ताप्ती नदियाँ रूकावट बनती हैं। मध्य भारतीय क्षेत्र, जिसमें विशेष रूप से दक्षिण बिहार, पश्चिम और पूर्वी मध्य प्रदेश आते हैं, आदिवासी बहुल क्षेत्र है। फिर भी यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें बाह्य तत्वों के प्रवेश की गति धीमी और निरंतर रही। इस प्रदेश के आदिवासी निकटवर्ती क्षेत्रों के सांस्कृतिक प्रभाव में आकर प्रारंभिक ऐतिहासिक कालों से या कहें कि गुप्त काल से ही, भारत समाज के प्रमुख जाति-कृषक आधार वाले ढांचे से जुड़ते रहे।

गुजरात मध्य भारत क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यह प्रदेश तीन प्राकृतिक भागों में बंटा हुआ है।

- सौराष्ट्र
- अनर्त (उत्तरी गुजरात)
- लता (दक्षिण गुजरात)

अनर्त की विशेषता यहाँ अर्ध शुष्क वायु प्रवाहित मिट्टी है तो लता में पश्चिम तट पर उपजाऊ क्षेत्र शामिल है। गुजरात का मध्यवर्ती प्रायद्वीप काठियावाड़ कहलाता है। इस प्रदेश का एक और प्राकृतिक भाग कच्छ के रण का निचला इलाका है। मानसून के दिनों में कच्छ का रण दलदली क्षेत्र में बदल जाता है। इस प्राकृतिक उप-विभाजन के बावजूद गुजरात की अपनी सांस्कृतिक पहचान और एकता रही है क्योंकि यह प्रदेश विंध्य पर्वत श्रृंखलाओं और पश्चिमी घाट से पूर्व में और उत्तर में मरुस्थल से सीमाबद्ध हैं। हालांकि यह एक अलग-थलग क्षेत्र प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में यह हड़प्पा कालीन समय से ही निरंतर प्राचीन बस्तियों का क्षेत्र रहा है। सौराष्ट्र में इसकी सिंधु नदी के साथ भौगोलिक निकटता के कारण हड़प्पा की सभ्यता का विस्तार हुआ। यह क्षेत्र प्रायः सिंधु तथा सुदूर पश्चिमी क्षेत्र और भारत के बीच संक्रान्ति का क्षेत्र रहा है। यहाँ का मैदान नर्मदा, ताप्ती, साबरमती और माही नदियों द्वारा मध्य भारतीय पर्वत श्रृंखलाओं से लाई गई कछारी भूमि से समृद्ध है। अपनी संरक्षित स्थिति और

लम्बी तट रेखा के कारण गुजरात चार हज़ार वर्षों से भी अधिक समय तक तटीय (समुद्र तटीय) और विदेशी व्यापार का केंद्र रहा है।

मध्य भारत पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्वी छोर पर गंगा के डेल्टा के दक्षिण पश्चिम में उडीशा के तटवर्ती मैदान हैं। हालांकि इसी तट पर बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली कुछ अन्य नदियाँ भी हैं। ये तटवर्ती मैदान पर्वत श्रृंखलाओं का ही एक विस्तार है और जैसा कि छत्तीसगढ़ के मैदान के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है, इसके कुछ प्राकृतिक लक्षण भी वैसे ही हैं। इस तरह उडीशा में दो भू-आकृतिक भाग हैं जो विकास की असमान प्रक्रियाओं को दर्शाते हैं। समृद्ध कृषि आधार वाला उपजाऊ तटवर्ती मैदान मानव गतिविधि का स्थल और सामाजिक सांस्कृतिक विकास का केंद्र रहा है। उडीशा ने अपनी भाषाई और सांस्कृतिक पहचान देर से पहली शताब्दी में बनायी थी।

3.4.5 प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत की सीमाएँ इसको घेरने वाले तटवर्ती मैदानों और दक्कन के पठार से निर्धारित होती हैं। तटवर्ती मैदान पूर्व में और सुदूर दक्षिण में चौड़े हैं, जबकि पश्चिम में ये संकरे हैं। और पालघाट के बीच का मैदान सर्वाधिकार संकरा है। दक्कन का पठार तीन प्रमुख भागों में बंटा हुआ है। ये भाग महाराष्ट्र, आंध्र और कर्नाटक राज्यों में पड़ते हैं। महाराष्ट्र में अन्य क्षेत्रों के अलावा दक्कन के पठार का उत्तरी भाग शामिल हैं। सुदूर दक्षिण के लिए सांस्कृतिक प्रभावों का प्रसार दक्कन द्वारा होता रहा है। और ऐसा इसलिए संभव हुआ होगा क्योंकि पश्चिमी भाग को छोड़कर वहाँ और घने जंगल नहीं हैं। महाराष्ट्र और आन्ध्र के बीच सीमा प्राकृतिक रूप से निर्धारित हुई प्रतीत होती है क्योंकि यह सीमा रेखा उपजाऊ काली मिट्टी के वितरण के आधार पर बनी हुई है। यानी इस सीमा के इस ओर महाराष्ट्र में उपजाऊ काली मिट्टी है तो सीमा के उस पार तेलंगाना में लाल मिट्टी है जो नमी सोखने में सक्षम नहीं है। इसलिए तेलंगाना तालाबों तथा अन्य प्रकार के कृत्रिम सिंचाई के साधनों का क्षेत्र रहा है। प्रारंभिक बस्तियों के विकास पर पर्यावरण सम्बन्धी भिन्नताओं का प्रभाव इस क्षेत्र में जितने रूप में सामने आता है उतना अन्य क्षेत्रों में नहीं। दक्षिण पश्चिम आन्ध्र के प्रारंभिक नव-पाषाण युगीन लोगों के अनुकूल व्यवहार नीति के रूप में पशु चारण को अपनाया तो उत्तरी दक्कन ताम्र-पाषाण युगीन मानव समुदायों ने कृषि को अपना उद्यम बनाया। कर्नाटक में दक्षिणी-पश्चिमी दक्कन शामिल हैं। कुछ छोटे-मोटे क्षेत्रों को छोड़कर दक्कन लावा का फैलाव यहाँ तक नहीं है, इसके अलावा पश्चिमी घाट और पश्चिमी तटवर्ती मैदान का एक भाग इस राज्य में शामिल है। राज्य के दक्षिण भाग में अपेक्षाकृत अधिक जल संसाधन हैं और यह क्षेत्र मानव बस्तियों के लिए उत्तर की तुलना में अधिक उपयुक्त है। महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच विभाजन रेखा किन्हीं विशेष प्राकृतिक दशाओं को नहीं दर्शाती। इस क्षेत्र में पर्यावरण द्वारा पैदा की गई बाधाओं की पर्याप्त पुष्टि इस क्षेत्र के नव-पाषाण युगीन लोगों के अपेक्षाकृत अपर्याप्त सांस्कृतिक अवशेषों से होती है।

चार दक्षिण भारतीय राज्यों में आन्ध्र विशालतम है। कृष्णा और गोदावरी नदियों के बीच का तटवर्ती क्षेत्र जो प्राचीन समय में वैंगी नाम से जाना जाता था धान का प्रमुख उत्पादन केंद्र रहा है। कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच रायचूर दोआब की तरह इस क्षेत्र के लिए भी प्राचीन ऐतिहासिक कालों में निरंतर *संघर्ष* होते रहे।

3.4.6 सुदूर दक्षिण

दक्कन का पठार सुदूर दक्षिण में नीलगिरी और कार्डामम पहाड़ियों जैसे अलग-अलग खंडों में विभाजित हो जाता है। ये पहाड़ियाँ मोटे तौर पर पूर्वी और पश्चिमी तटवर्ती मैदानों को विभाजित करती हैं। दक्षिण में विस्तृत पूर्वी तटवर्ती मैदान और इससे जुड़े भीतरी प्रदेश

तमिलनाडु में आते हैं। तमिलनाडु के तटवर्ती जिलों में भारी मात्रा में चावल पैदा होता है। कावेरी का मैदान और इसका डेल्टा इस क्षेत्र का अधिकेंद्र है। इस क्षेत्र की नदियाँ मौसमी है इसलिए यहाँ के किसान पल्लव, चोल कालों से ही सिंचाई के लिए तालाबों पर निर्भर रहते आए हैं। असिंचित क्षेत्रों में ज्वार, दलहन और तिलहन की फसलें होती हैं। यह जानना रोचक है कि इस पारिस्थितिक विविधताओं का उल्लेख, जिनके कारण विविध वैकल्पिक जीवन शैलियाँ अस्तित्व में आईं, इस भूमि के प्राचीनतम साहित्य यानी *संगम* साहित्य में प्राप्त होता है। भौगोलिक, भाषायी और सांस्कृतिक रूप से इस प्रदेश की अपनी निजी पहचान बनी है। पश्चिमी तटवर्ती मैदान भी सुदूर दक्षिण में मालाबार यानी आज के केरल राज्य तक फैला हुआ है। केरल में धान तथा अन्य फसलों के अलावा काली मिर्च तथा अन्य मसालों का उत्पादन भी होता है। पश्चिम के साथ केरल में इन मसालों का व्यापार उत्तर मौर्य काल से ही होता आया है। तमिलनाडु की ओर से केरल में प्रवेश पालघाट घाटी के द्वारा और पश्चिमी घाट के दक्षिणी छोर से संभव है। भूमि से अपेक्षाकृत अलग-थलग केरल राज्य समुद्र की ओर से पूरी तरह खुला हुआ है। यह एक रोचक सत्य है कि भारत में ईसाई प्रभाव और बाद में मुस्लिम प्रभाव समुद्र के माध्यम से ही आया। यह ध्यान देने योग्य है कि केरल और तमिलनाडु, दोनों ही प्रदेश गंगा के मैदान की तरह घने आबादी के क्षेत्र हैं।
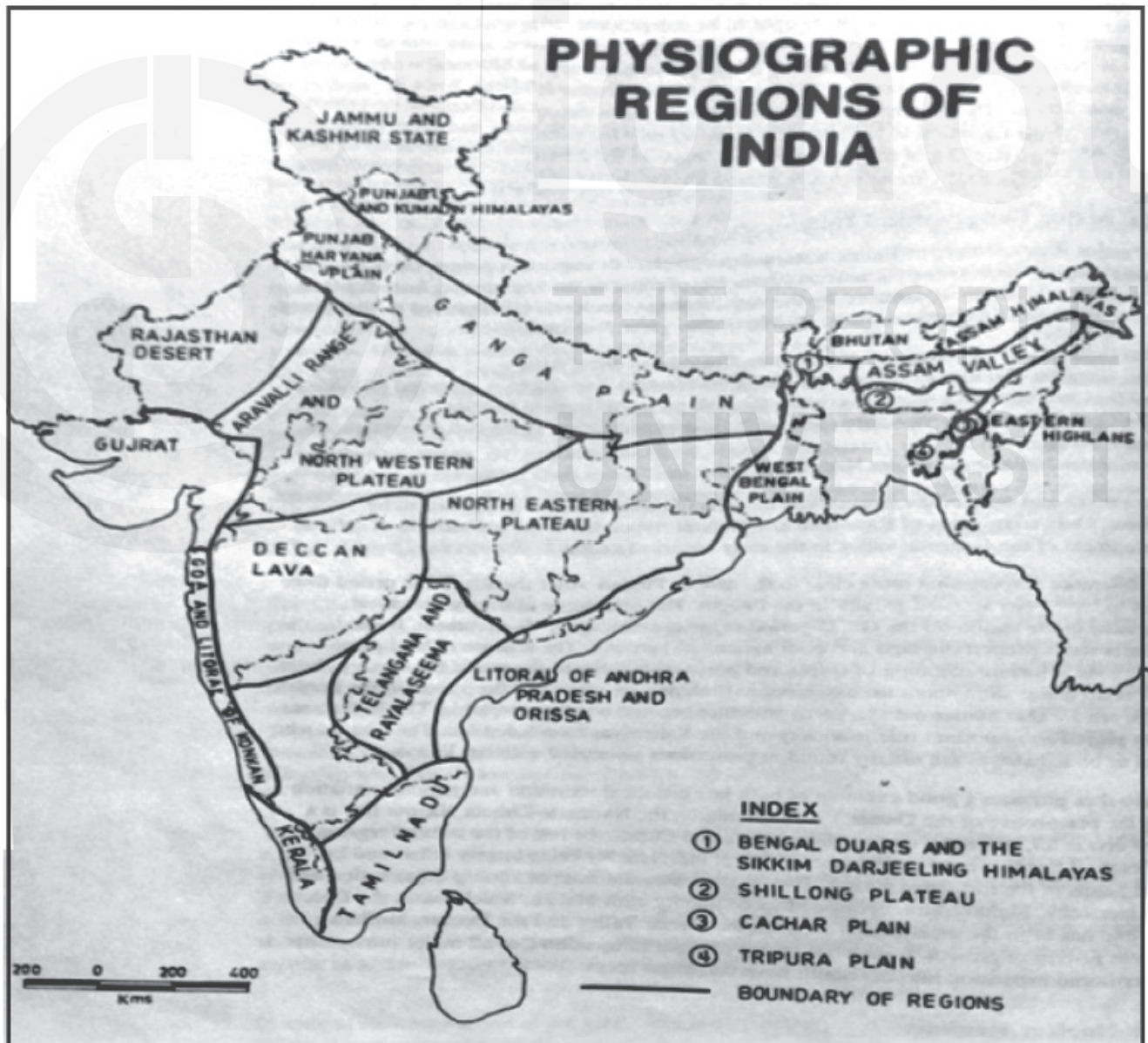
स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-2

बोध प्रश्न 2

1) निम्न में से कौन से कथन सही (✓) अथवा गलत (×) हैं :

   i) पूर्वी हिमालय क्षेत्र चीन के सांस्कृतिक प्रभावों से अछूता रहा।

   ii) हड़प्पा पंजाब में अवस्थित है।

   iii) गंगा के मैदान में सबसे अधिक मानव बस्तियाँ फली-फूलीं।

   iv) दक्कन पठार तटवर्ती मुम्बई और पालघाट के बीच बहुत चौड़ा है।

2) खाली स्थान भरिए :

   i) हिमालय को .... (पाँच/तीन) मुख्य .... (क्षेत्रों/इकाइयों) में बांटा जा सकता है।

   ii) कच्छ का रन .... (वर्षा/शरद) ऋतु के दौरान .... (समुद्र/दलदल) में बदल जाता है।

   iii) सुदूर दक्षिण की असिंचित भूमि .... (गेहूं/जौ/ज्वार) .... (तिलहन/चावल) पैदा करती है।

   iv) तेलंगाना .... (नदियों/तालाबों) की और कृत्रिम .... (खेती/सिंचाईं) की भूमि हो गई है।

3.5 क्षेत्रीय परिवर्तन के कारण

क्षेत्रों तथा क्षेत्रीय संस्कृतियों के बीच विभिन्नताओं के चिह्न संभवतः खाद्य उत्पादन के रूप में जीवन यापन के नए साधन की शुरुआत के साथ ढूंढ़े जा सकते हैं। उपमहाद्वीप की मुख्य नदियों के क्षेत्रों में कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की शुरुआत मात्र एक घटना नहीं बल्कि एक प्रक्रिया थी जो कई सहस्त्राब्दियों में फैली हुई थी। कच्छी मैदान (जो कि अब पाकिस्तान में है) के अंतर्गत मेहरगढ़ में कृषिगत गतिविधियाँ अपेक्षाकृत जल्दी लगभग 6000 बी.सी.ई. से पहले आरंभ हो गयीं थी तथा सिंधु घाटी में चौथी-तीसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. में गंगा की घाटी में कोलडिहवा (उत्तर प्रदेश) में 500 बी.सी.ई. में, चिरंद (बिहार) में तीसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई के उत्तरार्ध तथा अंतरजीखेड़ा (दोआब) में दूसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के पूर्वार्ध में कृषि की शुरुआत हुई। तथापि गंगा घाटी में पूर्ण रूप से नियोजित कृषि खेतीहर गाँव तथा अन्य सम्बद्ध लक्षण जैसे नगर का उदय, व्यापार तथा राज्य प्रणाली आदि प्रथम सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के मध्य में ही दिखाई देते हैं। मध्य एवं प्रायद्वीपीय भारत में ऐसे कई स्थान थे जहाँ बदलाव की यह प्रक्रिया प्रथम सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. की अंतिम शताब्दि में ही आरंभ हो सकी। इसी प्रकार गंगा, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी के क्षेत्रों में कृषक समुदाय तेजी से फैलता रहा और सभ्यता के चरणों की विभिन्न प्रक्रियाओं को तेजी से तय करता रहा। जबकि असम, बंगाल, गुजरात, उडीशा तथा मध्य भारत के काफी क्षेत्र जो कि बाकी क्षेत्रों से अपेक्षाकृत अथवा पूर्णतया कटे हुए थे, काफी लम्बे समय तक इन विकासों से अछूते रहे तथा आदिम अर्थव्यवस्था के चरण से आगे नहीं बढ़ पाए थे। अंततः जब कुछ अपेक्षाकृत कटे हुए क्षेत्रों में बदलाव की प्रक्रिया का ऐतिहासिक दौर शुरू हुआ तो अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा इन विकासों के बीच न केवल समय का लंबा अंतराल था बल्कि क्षेत्रों के गठन के स्वरूप में भी स्पष्ट अन्तर था। पूर्व विकसित क्षेत्रों के मुख्य केंद्रों का सांस्कृतिक प्रभाव इन कटे हुए क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया पर आरंभ से ही पड़ा। अतः आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से विकसित हुए तथा अभी भी कुछ क्षेत्र हैं जो अन्य की अपेक्षा पिछड़े हैं।

3.5.1 ऐतिहासिक क्षेत्रों के उदय की असमान प्रक्रियाएँ

अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास की असमान प्रक्रिया तथा ऐतिहासिक शक्तियों का असमान विन्यास भूगोल से अत्यधिक प्रभावित रहा। क्षेत्रों के असमान्य विकास को ऐतिहासिक स्थितियों द्वारा दर्शाया जा सकता है। उदाहरण के लिए तीसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के उत्तरार्ध में गुजरात में मध्य पाषाण युगीन संस्कृति मौजूद थी जबकि इसी समय दक्कनी क्षेत्रों में नवपाषाण युगीन पशु पालक काफी संख्या में मौजूद थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि अन्य क्षेत्रों के इन संस्कृतियों के युग में ही हड़प्पा जैसी विकसित सभ्यता विद्यमान थी। फलतः विकास के विभिन्न चरणों में क्षेत्रों एवं संस्कृतियों के एक दूसरे से प्रभावित होने के प्रमाण मिलते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय इतिहास के हर दौर में दिखाई देती है। दूसरे शब्दों में जहाँ एक ओर सिंधु एवं सरस्वती के क्षेत्रों में घुमक्कड़ लोग तीसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. में बसने लगे थे वहीं दूसरी ओर दक्कन, आंध्र, तमिलनाडु, उडीशा एवं गुजरात में बड़े पैमाने पर खेतिहार समुदाय बुनियादी रूप में लौह-युग में गठित हुए जो कि प्रथम सहस्त्राब्दि बी. सी.ई. का उत्तरार्ध अनुमानित किया जा सकता है।

लोहे के प्रादुर्भाव के साथ ही स्थायी कृषिगत गतिविधि पर आधारित भौतिक संस्कृति का प्रसार आरंभ हुआ। तीसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के आरंभ में गांगेय उत्तरी भारत तथा मध्य भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों की भौतिक संस्कृति में काफी कुछ समानता दिखाई देती है। यद्यपि अशोक के शिला लेखों (इकाई 13 व 14) के भौगोलिक वितरण (जो कि उत्तर से दक्षिण तक मिलते हैं) के कारण पूरे उपमहाद्वीप में कुछ हद तक सांस्कृतिक समानता स्वीकार की जाती है। विंध्याचल के दक्षिण के क्षेत्रों में जटिल सामाजिक संरचना वाले आरंभिक ऐतिहासिक साक्षर युग के उदय की प्रक्रिया मौर्य युग में तथा उसके उपरांत तेज हुई।

वास्तव में 200 बी.सी.ई. से 300 सी.ई. दक्षिण भारत तथा दक्कन के अधिकतर क्षेत्रों की संस्कृति के विकास का आरंभिक चरण था। इन क्षेत्रों की ऐतिहासिक बस्तियों की खुदाई से प्राप्त पुरातात्विक आंकड़ों से इस तर्क को बल मिलता है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि बीच के काफी क्षेत्र अथवा मध्य भारत की जंगली पहाड़ियाँ कभी भी पूरी तरह नहीं बसीं और आदिम युगीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न चरणों में आदिवासियों को शेष मानव समाज से अलग रहने का अवसर देती रहीं। इस उपमहाद्वीप में सभ्यता तथा पारंपरिक सामाजिक संगठन के रूप में अधिक जटिल संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न कालों में पहुँची तथा अपेक्षाकृत अधिक विकसित भौतिक संस्कृति का क्षेत्रीय प्रसार काफी असमान रहा।

3.5.2 मृत्तिका कला के प्रमाण

अपने अनश्वर गुण के कारण मृदमाण्ड किसी संस्कृति की पहचान का विश्वसनीय चिह्न होते हैं तथा पुरातत्वात्मक श्रेणीबद्धता का महत्त्वपूर्ण साधन होते हैं। विभिन्न संस्कृतियाँ अपने विशिष्ट मृदमाण्ड के आधार पर पहचानी जाती है। गेरू चित्रित 1000 बी.सी.ई. से पहले के हैं, चित्रित पूरे 800-400 बी.सी.ई. के बीच के हैं, काले-एवं-लाल उपरोक्त दोनों के बीच के काल के हैं, तथा उत्तरी काले पालिश वाले मृदमाण्ड 500-100 बी.सी.ई. के हैं। मृद्भाण्ड की प्रथम तीन श्रेणियाँ मुख्यतः भारत-गांगेय विभाजन तथा दोआब सहित ऊपरी गंगा घाटी में मिलती हैं। काली पॉलिश वाले मृद्भाण्ड उत्तरी मैदान से आरंभ होकर मौर्य काल के दौरान मध्य भारत तथा दक्कन तक फैल गए।

विभिन्न प्रकार के मृद्भाण्डों के वितरण से हमें संस्कृतियों की सीमाओं तथा उनके विस्तार के चरण के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। भारत-गांगेय विभाजन तथा ऊपरी गंगा क्षेत्र में एक नई संस्कृति का उदय सर्वप्रथम दूसरी सहस्त्राब्दि बी.सी.ई. के उत्तरार्ध में हुआ जो कि धीरे-धीरे पूर्व की ओर फैली जो मौर्य काल में संभवतः मुख्य गांगेय क्षेत्र से भी आगे बढ़ गई।

3.5.3 साहित्यिक प्रमाण

प्राचीन भारतीय साहित्य से हमें संस्कृति स्वरूप के भौगोलिक प्रसार के प्रमाण भी मिलते हैं। ऋग-वैदिक काल का भौगोलिक केद्र बिंदु सप्तसिंधु (सिंधु तथा इसकी सहायक नदियों की भूमि) तथा भारत-गांगेय विभाजन था। उत्तर वैदिक काल में दोआब ने यह स्थान ले लिया गया। बुद्ध के युग में मध्य गांगेय घाटी (कौशल एवं मगध) को यह गौरव प्राप्त रहा। यहाँ यह कह देना उपयुक्त होगा कि भौतिक संस्कृति के विकास के साथ ही भौगोलिक विस्तार के चरणों का विकास होता रहा। राज्य सीमा के अर्थों में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में आरंभ हुआ और इसी काल में कुरु और पाँचाल जैसे क्षेत्रों में छोटे-छोटे राजवंशों एवं राज्यों का उदय हुआ। बुद्ध के युग में (छठवीं शती बी.सी.ई.) सोलह *महाजनपदों* (बड़े क्षेत्रीय राज्य) का उदय हुआ। यह रुचिकर तथ्य यह है कि उत्तर पश्चिम में गांधार, मालवा में अवंती तथा दक्कन में अस्माक को छोड़कर अधिकतर *महाजनपद* ऊपरी एवं मध्य गांगेय घाटी में स्थित थे। कलिंग (प्राचीन तटवर्ती उडीशा) आंध्र, (प्राचीन बंगाल), राजस्थान एवं गुजरात जैसे क्षेत्रों को इस युग पर प्रकाश डालने वाले साहित्य में स्थान नहीं मिला जिसका अर्थ यह है कि इन राज्यों का तब तक ऐतिहासिक रंगमंच पर प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

विंध्याचल के दक्षिण के राज्यों, जैसे कलिंग का उल्लेख सर्वप्रथम पाणिनि ने पाँचवीं शती बी.सी.ई. में किया। सुदूर दक्षिण में तमिल भू-भाग का ऐतिहासिक काल में प्रवेश तक नहीं हुआ था। अतः विभिन्न क्षेत्रों का उदय और गठन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। अतः आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों की तकनीकी एवं सामाजिक-आर्थिक विकास का यह अन्तर बाद में पनपने वाली सांस्कृतिक विभिन्नता के मूल में था।

बोध प्रश्न 3

1) निम्न कथनों में से कौन-सा सही (✓) अथवा गलत (×) हैं :

   i) पूर्व के असमान विकास की व्याख्या ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर नहीं की जा सकती थी। ( )

   ii) पूर्व विकसित क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकासों ने पृथक् क्षेत्रों पर प्रभाव छोड़ा ( )

   iii) क्षेत्रों के अभ्युदय की प्रक्रिया हर स्थान पर समान रूपी थी। ( )

   iv) विभिन्न संस्कृतियों की पहचान उनके विशिष्ट मृदभाण्ड से होती है। ( )

   v) क्षेत्रों की पहचान करने में साहित्य का कोई उपयोग नहीं है। ( )

2) लगभग पाँच पंक्तियों में विभिन्न मृदभाण्ड कलाएँ और उनसे संबद्ध कालों का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

3.6 भारतीय इतिहास में क्षेत्रों की महत्ता

सभी क्षेत्रों में गाँव ही बुनियादी सामाजिक संगठन के इकाई रहे हैं और अपने निवासियों तथा शहरी जनता के जीवन यापन तथा राज्य की शक्ति का आधार रहे हैं। इनमें से कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व, ग्रामीण बस्तियाँ एवं नागरिक केंद्र अपेक्षाकृत अधिक था तथा शक्तिशाली विस्तारवादी राज्यों का इन क्षेत्रों में उदय हुआ। इन क्षेत्रों में नव पाषाण युग-ताम्र पाषाण युग से लगातार आबादियाँ तथा बस्तियाँ होने का प्रमाण मिलता है। यह विशेषता अन्य क्षेत्रों में दिखाई नहीं देती। क्षेत्रों के बीच के अन्तर की व्याख्या निम्न तथ्यों के आधार पर की जा सकती है :

- भूगोल
- भौतिक संस्कृति के प्रसार का तरीका एवं काल तथा
- ऐतिहासिक शक्तियों का विन्यास जैसे जनसंख्या, तकनीकी, सामाजिक संगठन, संचार आदि।

इन तमाम कारणों का संयोग क्षेत्रों की अलग पहचान बनाने में सहायक हुआ।

क्षेत्रों के पृथक् एवं मजबूत व्यक्तित्व तथा क्षेत्रीय शक्तियों की असमानता के कारण भारतीय उपमहाद्वीप राजनैतिक एकता प्राप्त न कर सका। कुछ ने अपनी आंतरिक शक्ति के कारण अखिल भारतीय, अथवा कई क्षेत्रों से सबसे बड़ी शक्ति बनने के उद्देश्य से राज्य विस्तार का प्रयास किया किंतु इन प्रयासों को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। मौर्य, तुगलक, मुगल तथा ब्रिटिश साम्राज्यों को राजनैतिक एकीकरण में आंशिक सफलता मिली फिर भी इनमें से कोई भी सभी भौगोलिक इकाइयों और संस्कृतियों में राजनैतिक एकता नहीं ला सका, यद्यपि ब्रिटिश बहुत हद तक इसमें सफल रहे थे। मध्य भारत, या मोटे तौर पर मध्यवर्ती क्षेत्र तथा भारतीय प्रायद्वीप का दूरवर्ती सदैव ही मजबूत विस्तारवादी अखिल भारतीय शक्ति के दायरे से बाहर रहा। विंध्याचल उत्तरी भारत तथा दक्षिणी प्रायद्वीप के इतिहासों को पृथक् करने में बहुत कुछ सफल रहा। इसी प्रकार अरावली पहाड़ियाँ कैम्बे खाड़ी के मुख से शुरू होकर दिल्ली तक एक सीमान्ती रेखा तैयार करती है। वास्तव में यह बहुत प्रभावी सीमा रही है।

तथापि सिंधु का निचली घाटी और गुजरात काफी लंबे समय तक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक केंद्र बने रहे। इस प्रकार जहाँ एक ओर बड़े पैमाने पर केंद्रीयकृत राज्य लम्बे समय तक बने न रह सके वहीं दूसरी ओर मगध, कौशल, अवन्ती, आंध्र, कलिंग, महाराष्ट्र, चेर, पाण्डय, चोल आदि जैसे प्राचीन राज्य किसी न किसी वंश के अंतर्गत बने रहे। उनके इस दीर्घकालीन स्थायित्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस प्राकृतिक क्षेत्र में राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र बने रहे।

3.6.1 *चक्रवर्ती* संकल्पना

चक्रवर्ती (विश्व सम्राट) की संकल्पना जो कि प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों का आदर्श थी इस विषय पर प्रकाश डालती है। आदर्श *चक्रवर्ती* के लिए विश्व विजेता होना तथा सम्पूर्ण विश्व पर प्रभुत्व स्थापित करना आवश्यक था। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* के अनुसार हिमालय से समुद्र तट का क्षेत्र *चक्रवर्ती* सम्राट का क्षेत्र था। रुचिकर तथ्य यह है कि उक्त क्षेत्र उतना ही है जितना भारतीय उपमहाद्वीप है। बाद की कृतियों में इस आदर्श को बार-बार दोहराया गया है। जो राजा विश्व-सम्राट का स्तर प्राप्त करना चाहता था उसे *अश्वमेध* यज्ञ करना होता था। प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारों में *चक्रवर्ती* की संकल्पना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इस प्रकार राजा की परिकल्पना सदैव विश्व प्रभुत्व से संबद्ध थी।

लेकिन न तो कौटिल्य और न ही उसके उत्तराधिकारी इस बात की व्याख्या करते हैं कि सम्पूर्ण भारतीय साम्राज्य का प्रशासन किस रूप में होना चाहिए। संभावना इस बात की है कि *चक्रवर्ती* आदर्श का अर्थ विरोधियों को वशीकृत करना, उनकी सीमाओं में अपने अधिकारों का विस्तार करना और इस प्रकार साम्राज्य को विस्तृत बनाना था। इसका अर्थ यह नहीं है कि वशीकृत राज्य हमेशा के लिए एक ही प्रशासन प्रणाली का अंग बन जाते थे अथवा उन पर कठोर नियंत्रण रखा जाता था। दूसरे शब्दों में, *चक्रवर्ती* का अर्थ श्रेष्ठ राजनैतिक शक्ति प्रदर्शन था और प्रशासन प्रबन्ध और संगठन जैसे पक्षों से इसका कोई मतलब नहीं था।

उक्त आदर्श की इस प्रकार की सीमाओं के बावजूद महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक क्षेत्रों की मजबूती और शक्तिशाली क्षेत्रवाद ने इस संकल्पना को साकार नहीं होने दिया। भारतीय उपमहाद्वीप को राजनैतिक रूप में एकीकृत करने के प्रयास यद्यपि अधिक सफल नहीं हुए लेकिन यह इच्छा लगातार बनी रही। इस तथ्य के बारे में हमें आरंभिक ऐतिहासिक युग के शिलालेखों से संकेत मिलता है कि छोटे-मोटे शासक भी *अश्वमेध* यज्ञ किया करते थे जिससे कि वे अपनी शक्ति और संप्रभुता तथा राज्य के प्रति अपने लम्बे चौड़े दावों का प्रमाण प्रस्तुत कर सकें। वास्तव में यह एक स्पष्ट उदाहरण है जो कि वास्तविकता और आदर्श के अन्तर पर प्रकाश डालता है और हमारे पूरे इतिहास में पृथक प्राकृतिक क्षेत्रों के बड़े पैमाने पर विद्यमान होने की ओर संकेत करता है।

3.7 क्षेत्रों की श्रेणीबद्धता

''देश'' शब्द की भांति ''क्षेत्र'' शब्द भी काफी विस्तृत अर्थ रखता है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। भूगोलशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने अपने अनुसंधान की आवश्यकताओं के अनुरूप क्षेत्रों को भिन्न रूपों में रेखांकित किया है। फलतः क्षेत्रों के वर्गीकरण में ''भाषायी क्षेत्र'', ''जातीय क्षेत्र'', ''भौतिक क्षेत्र'', ''प्राकृतिक क्षेत्र'', ''सांस्कृतिक क्षेत्र'' आदि का उल्लेख मिलता है। यद्यपि ये क्षेत्रीय सीमाएँ लगभग समान प्रतीत होती हैं परंतु आवश्यक रूप से हमेशा ऐसा नहीं होता। भौतिक एवं प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाएँ मिलते प्रतीत होती हैं। प्राकृतिक क्षेत्र अपनी विशिष्ट भाषायी, जातीय, पारिवारिक बंधुत्व संगठन तथा ऐतिहासिक परंपराओं के साथ स्वतंत्र संस्कृति क्षेत्र थे। तथापि आवश्यक नहीं है कि दो पड़ोसी क्षेत्र समरूप हों। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, भौगोलिक रूप से निकटवर्ती क्षेत्रों में भी सम्पूर्ण इतिहास के दौरान विपरीत सांस्कृतिक रुझान मौजूद थे। देश के ऐतिहासिक विकास के प्रतिरूप तथा ऐतिहासिक चरण की ओर संक्रमण में क्षेत्रीय असमानता क्षेत्रों के बीच श्रेणीबद्धता के अस्तित्व की ओर संकेत करती है। इस श्रेणीबद्धता की समझ के आधार पर क्षेत्रों के अंतरीय विशिष्टता तथा उनकी विभिन्न कालों में गठन को समझा जा सकता है।

3.7.1 बुनियादी भौगोलिक प्रभाव

''भारतीय ऐतिहासिक भूगोल की बुनियादी संरचना-रेखा'' अथवा भारतीय इतिहास को मुख्य भौगोलिक विशिष्टताओं जैसे नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा अथवा कैम्बे की खाड़ी से मथुरा तक जाने वाली रेखा, अरावली द्वारा संरचित रेखा आदि ने उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक प्रसार के प्रतिरूप को काफी प्रभावित किया, इनको निम्नलिखित रूप में चार बुनियादी मार्गों में विभाजित किया गया है :

- मध्य एवं पश्चिमी एशिया से प्रभाव ग्रहण करने वाले सिंधु के मैदान,
- गांगेय मैदान जो कि दिल्ली-मथुरा रेखा से आरंभ होते हैं तथा उत्तर-पश्चिम सीमाओं से आने वाले तमाम राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों को समाहित कर चुके हैं,

- केन्द्रीय भारतीय मध्य क्षेत्र जिनके गुजरात तथा उडीशा दो छोर हैं, तथा
- प्रायद्वीपीय भारत जो नर्मदा का दक्षिणी भाग है।

अरावली रेखा के उत्तर एवं पश्चिम में सामान्यतः सांस्कृतिक स्थिति भिन्न प्रतीत होती है। आरंभिक ऐतिहासिक दौर में केवल राजस्थान एवं गुजरात के कुछ क्षेत्रीय गांगेय घाटी के सांस्कृतिक विकास की मुख्य धारा से प्रभावित नज़र आते हैं।

पंजाब के संदर्भ में अन्तर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। ऋग वैदिक काल के बाद पंजाब में विकास की दर धीमी थी। गुप्त काल तक इस क्षेत्र में गैर-राजतंत्रीय *जनपदों* का नियमित अस्तित्व स्वतंत्र विकास का द्योतक है। इससे क्षेत्र में अविकसित सम्पत्ति संबंध तथा असंतोषजनक कृषि विकास की ओर भी संकेत मिलता है। पंजाब के मैदानों में भूमि अनुदान शिलालेखों की अनुपस्थिति, जो कि गुप्त काल तथा उत्तर गुप्त काल भारत में सामान्य बात थी, इस विश्वास को और भी बल प्रदान करती है। पंजाब के मैदानों में ब्राह्मणवाद ने कभी जड़ें नहीं पकड़ी थीं और न ही *वर्ण* व्यवस्था को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया था। ब्राह्मणों ने यदा कदा ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और क्षत्रिय *वर्ण* शीघ्र ही *वर्ण* व्यवस्था से लुप्त हो गया। खत्री जो कि स्वयं को क्षत्रिय बताते हैं अधिकतर वैश्यों के व्यवसाय से जुड़े हुए हैं।

इस प्रकार पंजाब गंगा घाटी के दृष्टिकोण से देर से हुए ऐतिहासिक परिवर्तन तथा क्षेत्रीय भिन्नता दोनों ही का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार नर्मदा-छोटा नागपुर रेखा बुनियादी विभाजन रेखा है क्योंकि गुजरात, महाराष्ट्र एवं उडीशा को छोड़कर इस रेखा के दक्षिण के सभी सांस्कृतिक क्षेत्र आरंभिक काल मे तमिल मैदानों से प्रभावित नज़र आते हैं। इन क्षेत्रों में भिन्न समुदाय-संगठन तथा जाति श्रेणियाँ मौजूद थीं। महाराष्ट्र, जिसकी सीमा मालवा से मिलती है और चूंकि मालवा और दक्कन लावा क्षेत्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा मालवा गंगा घाटी तथा दक्कन के बीच महत्त्वपूर्ण सेतु है, अतः यहाँ विकास प्रक्रिया भिन्न थी। यहाँ यह उल्लेख अनुचित न होगा कि दक्षिण की ओर जनसंख्या का आवागमन तथा सीमा विस्तार इसी रास्ते से हुआ।

3.7.2 केन्द्रीय क्षेत्र

भारतीय इतिहास में काफी पहले ही कुछ क्षेत्र शक्ति के स्थायी केंद्र बन गए थे। इन क्षेत्रों में निरंतर शक्तिशाली राज्य बने रहे। इसके विपरीत कुछ क्षेत्र इतने शक्तिशाली नहीं थे। भूगोलशास्त्री एवं इतिहासकार इन्हें तीन वर्गों में विभाजित करते हैं : i) स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र ii) अपेक्षाकृत अलग-थलग क्षेत्र तथा iii) अलग-थलग क्षेत्र। स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र गंगा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा तथा कावेरी जैसी मुख्य नदी घाटियों के क्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में मानवीय बस्तियाँ अधिक संख्या में पायी जाती रही हैं। संसाधनों की उपलब्धता तथा व्यापार एवं संचार के अभिसरण ने इन क्षेत्रों के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया था। तर्कसंगत ही है कि ये क्षेत्र महत्त्वपूर्ण शक्ति केन्द्रों में उभरें। किन्तु यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भूगोल और संसाधन केवल संभावनाएँ अथवा सीमाएँ प्रस्तुत करते हैं। किसी का महत्त्वपूर्ण केन्द्र होना इस बात पर निर्भर करता है कि ऐतिहासिक कारण क्षेत्र पर किस प्रकार अभिसारित होते हैं। वारंगल में काकतीय एवं गुजरात के चालुक्य राज्य ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण मौजूद हैं जोकि केन्द्रीय क्षेत्रों की परिधि से बाहर उदित हुए लेकिन ऐसे उदाहरण छिट-पुट ही हैं। मध्य भारत के अपेक्षकृत अलग-थलग क्षेत्र, जैसे भीलों का देश, बस्तर एवं राजमहल की पहाड़ियाँ, बस्तियों की संरचना, कृषिगत इतिहास, सामाजिक संगठन तथा राज्य प्रणाली की दृष्टि से केन्द्रीय क्षेत्रों से भिन्न थे। चूंकि क्षेत्रों का विकास ऐतिहासिक रूप में हुआ अतः तीनों प्रकार के क्षेत्रों में अन्तर सदैव एक ही जैसा नहीं था। एक बिन्दु पर एक श्रेणी का दूसरी श्रेणी में परिवर्तित होना संभव था।

3.7.3 समय एवं स्थान के संदर्भ में अधिवासीय (बस्तियों की) संरचना

क्षेत्रों में बस्तियों की संरचना स्थिर नहीं रही। क्षेत्रों में गाँव, खेड़े, नगर एवं शहर शामिल होते थे। मध्य गंगा में मैदानों एवं दक्कन जैसे कुछ क्षेत्रों में नगरों की संख्या अधिक थी। जैसे हम गुप्त काल की ओर बढ़ते जाते हैं शहरी केन्द्रों की संख्या कम होती जाती है। कृषि के विस्तार तथा नयी ग्रामीण बस्तियों के प्रसार के निरंतर प्रमाण मिलते हैं। कुछ स्थानों पर आदिवासियों के खेड़े खेतिहर गाँव बन गए। आर्थिक गतिविधियों एवं सामाजिक वर्गीकरण के स्तर पर ब्राह्मण एवं गैर-ब्राह्मण बस्तियों में अन्तर था। इस अन्तर का धीरे-धीरे उन क्षेत्रों में भी प्रसार हो गया जो आरंभिक चरणों में विकास की मुख्य धारा से पूर्णतया जुड़े हुए नहीं थे। इन क्षेत्रों में आदिवासी संस्कृति से अधिक जटिल सामाजिक संरचना की दिशा में परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, इन क्षेत्रों में संगठित धर्म, राज्य एवं वर्ग समाज का आधार तैयार हुआ। इन परिवर्तनों का अर्थ इन क्षेत्रों में नई बस्तियों का विस्तार तथा जनसंख्या में वृद्धि था। भारतीय इतिहास में सदैव जनसंख्या में अधिक घनत्व वाले क्षेत्र अपनी भूमिका निभाते रहे हैं। गंगा घाटी, तमिल मैदान एवं पूर्वी तट सभी ऐसे क्षेत्र थे जहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक था। संसाधन युक्त तथा अन्य सुविधाओं वाले क्षेत्र स्वाभाविक रूप से अधिक घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र थे तथा निरंतर मानवीय संसाधनों का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना राज्य की सैन्य शक्ति को बल प्रदान करता था।

बोध प्रश्न 4

1) भारतीय उपमहाद्वीप के राजनैतिक एकीकरण को बाधित करने वाले कारणों की चर्चा करें।

....

....

....

....

....

2) *चक्रवर्ती* संकल्पना से आप क्या समझते हैं? पाँच पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

i) प्राकृतिक .... (स्वतंत्र/आश्रित) संस्कृति क्षेत्र होते हैं।

ii) इतिहास में भिन्न संस्कृतियाँ .... (नहीं थी/सहअस्तित्व) में विद्यमान थी।

iii) पंजाब में सांस्कृतिक विकास गांगेय घाटी से .... (भिन्न/मिलता-जुलता) था।

iv) भारतीय (अंतरिक्ष विज्ञान/इतिहास) में .... (अधिक/कम) घनत्व वाले क्षेत्रों की अग्रणी भूमिका रही है।

3.8 प्राचीन भारत में कुछ क्षेत्रों का गठन

गंगा-यमुना दोआब, मध्य गंगा घाटी, मालवा, उत्तरी दक्कन, आंध्र, कलिंग (तटवर्ती उडीशा) एवं तमिल मैदान ऐसे मुख्य स्थायी केन्द्रीय क्षेत्र हैं जो शक्ति केन्द्र के रूप में काफी पहले उभर चुके थे। लेकिन कुछ ऐसे छोटे क्षेत्र भी हैं (जिन्हें उप-क्षेत्र कहा जा सकता है) जिन्होंने अपनी पहचान बनाए रखी। कोंकण, कनरा और छत्तीसगढ़ इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ क्षेत्र जैसे कृष्णा और तुगभद्रा के बीच वेंगी, ऐसे क्षेत्र थे जिनके कृषि संसाधनों की प्रचुरता के कारण इन पर प्रभुता स्थापित करने के लिए निरंतर युद्ध हुए। इन क्षेत्रों पर प्रभुता स्थापित होने से आसपास के क्षेत्र शक्तिशाली बन सकते थे। मुख्य केन्द्रीय क्षेत्र नदी की मिट्टी वाली उपजाऊ भूमि की विस्तृत उपलब्धता के कारण मुख्य कृषि क्षेत्र भी रहे हैं। अब कुछ उदाहरणों के आधार पर क्षेत्रों के गठन के प्रतिरूपों एवं कारणों पर दृष्टिपात करेंगे।

3.8.1 गांगेय घाटी

अधिक उच्च कृषि उत्पादकता तथा जनसंख्या के अधिक घनत्व के कारण गंगा के मैदान भारतीय उपमहाद्वीप में प्रभुत्वशाली रहे हैं। इसके समरूप किसी भी अन्य क्षेत्र का शक्ति आधार नहीं रहा है। किन्तु यह पूरा मैदान, पहले उल्लेख किया गया है, एक समरूपी भौगोलिक क्षेत्र नहीं है। हम पढ़ चुके हैं कि मध्य गंगा के मैदान कई कारणों से ऊपरी एवं निचले गंगा के मैदानों की अपेक्षा अधिक सफल क्षेत्र रहे और मौर्य काल तक आते-आते इस क्षेत्र ने पूरे उपमहाद्वीप पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। ऋग-वैदिक काल के दौरान भारत गांगेय विभाजन इसका केंद्र था। उत्तर वैदिक काल में 1000 बी.सी.ई. के आसपास भौगोलिक केन्द्र गंगा-जमुना दोआब बन गया। इसके साथ ही वैदिक कालीन बस्तियाँ पूर्व की ओर फैलने लगीं। लेकिन इसके अधिक महत्त्वपूर्ण विकास का दौर बैलों वाले हल के प्रयोग द्वारा स्थायी खेतिहर जीवन के आरंभ से होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सीमाएँ एवं राष्ट्र एवं *जनपदों* का उदय हुआ। कुरू और पाँचाल इसके अच्छे उदाहरण हैं। छठी शताब्दी बी.सी.ई. से *जनपदों* के उदय की प्रक्रिया तेज हो गयी थी। इसी समय सर्वप्रथम-*महाजनपदों* का उदय होता है जिसमें छोटे *जनपद* समाहित हो जाते हैं। समकालीन साहित्य में *महाजनपदों* की संख्या सोलह बतायी गयी है।

रहने योग्य स्थान बनाने के लिए घने जंगलों को आग लगाकर अथवा धातु के औज़ारों से साफ किया गया। धान की उपज वाली मध्य गंगा घाटी में लोहे के हल द्वारा गहरी जुताई के कारण अन्न का उत्पादन बढ़ गया। बढ़ती हुई जनसंख्या ने अधिक उपज की आवश्यकता को जन्म दिया। विशेषकर इस अधिक जनसंख्या वाले समाज का एक वर्ग जिसमें शासक, अधिकारी, पुरोहित, संन्यासी आदि शामिल थे किसी प्रकार की प्रत्यक्ष उत्पादन प्रक्रिया में भाग नहीं लेते थे। स्थानीय उपभोगी आवश्यकता से अधिक इस कृषि उत्पादन से नगरों के उदय एवं विकास को बढ़ावा मिला। इस काल के मिट्टी के बर्तन उत्तरी काली पालिश वाले (Northern Black Polish Ware) बर्तन हैं जो 500 बी.सी.ई. के लगभग के हैं। इसी समय सर्वप्रथम सिक्कों का चलन आरंभ होता प्रतीत होता है। बढ़ते हुए व्यापार एवं वाणिज्य के कारण सिक्कों की आवश्यकता महसूस की गयी। उत्तरी काली पालिश वाले बर्तनों का कौशल एवं मगध से उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला, पश्चिमी मालवा में उज्जैन तथा तटवर्ती आंध्र में अमरावती जैसे सुदूर नगरों तक फैल जाना संगठित वाणिज्य एवं संचार का द्योतक है जिसने इन सुदूर नगरों के बीच संबंध जोड़ दिया। इस विकास के साथ ही भारी सामाजिक परिवर्तन हुए। बस्तियों में स्थायी जीवन के जड़ पकड़ने के कारण वन विचरण तथा आदिवासी जीवन पद्धति धीरे-धीरे कम होने लगी। उत्तर वैदिक काल की जनता मूल निवासियों के काफी नजदीकी सम्पर्क में आयी। उत्तर वैदिक काल साहित्य में इस संपर्क तथा आपसी मेल-जोल के प्रमाण मिलते हैं। इन विकासों की पृष्ठभूमि में सर्वप्रथम कुछ हद तक श्रम-विभाजन और

तदोपरांत व्यवसायों के विस्तार एवं उनमें विशिष्ट दक्षता प्राप्त करने की नयी परिस्थिति ने चार वर्णों की जाति व्यवस्था के लिए उपयुक्त माहौल तैयार कर दिया।

जनपदों एवं *महाजनपदों* के अभ्युदय (विस्तृत जानकारी के लिए इकाई 10 देखें) के साथ ही काफी बड़े पैमाने पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन प्रकट हुए। प्रत्येक *जनपद* में आमतौर पर ग्राम निगम (बड़ी बस्तियाँ जहाँ व्यापार विनिमय होता था) एवं नगर हुआ करते थे। जंगल (वन) भी *जनपदों* का एक हिस्सा होते थे। *जनपद* मूलतः सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र होते थे। इन्होंने राज्य के गठन का आधार तैयार किया, जिसे 6वीं सदी बी.सी.ई. में मूर्तरूप प्राप्त हुआ। *महाजनपदों* के उदय के साथ महानगरों और तदानुरूप घनी एवं निर्धन सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। यह पूरी प्रक्रिया मध्य गंगाघाटी में अपना चर्मोत्कर्ष पर मौर्य काल में पहुंची। इस प्रकार समाज में सत्ता का जन्म हुआ। सत्ताधारी वर्ग शक्तिशाली धार्मिक व्यवस्थाओं जैसे ब्राह्मणवाद, बुद्धमत, जैनमत आदि का प्रयोग करके नयी सामाजिक व्यवस्था तथा स्वयं को स्थायित्व प्रदान करने का भरपूर प्रयास कर रहा था। इन विकासों की पृष्ठभूमि में उत्तरी गांगेय भारत पूरी तरह इतिहास का पात्र बन जाता है।

3.8.2 तमिल देश

तमिल कविताओं के संग्रह से, जिन्हें उनके समग्र रूप में *संगम* साहित्य के नाम से जाना जाता है, प्राचीन तमिल देश (*तमिलाहम्*) में पूर्व आदिवासी वन-विचरण चरण से इन कविताओं से हमें एक ही समय में भिन्न पर्यावरणीय क्षेत्रों के अस्तित्व तथा भिन्न किन्तु अंतःसंबंधित जीवन शैली जैसे भोज्य पदार्थ एकत्रण, प्रारंभिक कृषि, मछली पकड़ना, पशुपालन से लेकर बड़े पैमाने पर खेती के सहअस्तित्व की ओर संकेत मिलता है। कावेरी, पेरियार एवं पैगाई की उपजाऊ नदी घाटियों (मारूतम् क्षेत्र) में कृषि उत्पादन भारी मात्रा में होता था तथा यही वे क्षेत्र थे जो कि तीन प्राचीन अग्रणी वंशों, चोल, चेर एवं पांड्य के प्रभाव क्षेत्र थे। यद्यपि बी.सी.ई. शताब्दियों में लड़ाकू सरदारों, पशु प्राप्ति के लिए आक्रमण, युद्ध एवं लूट आदि का प्रभुत्व था लेकिन धीरे-धीरे लोग किसानों के रूप में बस्तियों में वास करने लगे और एक श्रेणीबद्ध समाज का उदय हुआ जिससे कृषक, भाट, योद्धा एवं कबिलाई सरदार मुख्य श्रेणियाँ थीं। पद के रिवाज ने योद्धा वर्ग को अपने मुखिया के अधीन प्रभुत्वमान बना दिया। धावों से बचाव एवं छुटकारा पाने की दृष्टि से किसान वर्ग एक ऐसी व्यवस्था में समाहित होने के लिए तैयार था जिसमें अविकसित राज्य व्यवस्था अस्तित्व में आ चुकी थी। राज्य के गठन की प्रक्रिया तेज़ होने के निम्नलिखित कारण थे :

- आरंभिक सी.ई. शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार,
- नगरों का उदय, तथा
- ब्राह्मणों के साथ उत्तरी सभ्यता (आर्य) की संस्कृति का आगमन।

सी.ई. युग की आरंभिक शताब्दियों में रोम के साथ व्यापार का महत्त्व बढ़ रहा था। साथ ही *तमिलाहम्* में विभिन्न क्षेत्रों के बीच आंतरिक तथा *तमिलाहम्* एवं दक्कन के बीच व्यापार को काफी महत्त्व प्राप्त हो चुका था। इस आरंभिक काल में केरल तमिलाकम् का अभिन्न हिस्सा था। पहाड़ियों एवं सीमांती कृषि वाले क्षेत्रों के छोटे-छोटे असंख्य कबीले तीन राज्यों की परिधि में लाए गए। सामाजिक रूप से यह प्रक्रिया जाति व्यवस्था के गठन में परिलक्षित होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत किसान *शूद्र* के स्तर पर पहुंचा दिए गए। इस प्रकार आरंभिक तमिलनाडु में राज्य के उदय का आधार तैयार किया जा चुका था।

3.8.3 दक्कन : आंध्र एवं महाराष्ट्र

आंध्र एवं उत्तरी दक्कन में लोहे के इस्तेमाल करने वाले महा-पाषाण युगीन समुदायों ने जोकि नवपाषाण युगीन तथा मध्यपाषाण युगीन संस्कृतियों का अनुसरण कर रहे थे स्थायी कृषि के

लिए आधार तैयार किया और इन क्षेत्रों के परिवर्तन का पथ प्रशस्त किया। पाँचवीं से तीसरी सदी बी.सी.ई. के बीच आंध्र में समुद्र तटवर्ती भूमि पर अधिक उपज वाली धान की फसलें उगाना जारी रहा। महा पाषाणकालीन शवाधानों की परम्परा से निम्नलिखित प्रमाण मिलते हैं:

- शिल्पकला में अल्पविकसित विशेषज्ञता,
- अविकसित विनिमय व्यवस्था जिसके अंतर्गत खनिज संसाधन उत्तर दक्कन भेजे जाते थे, तथा
- स्तर विभाजन

यहाँ काले-एवं-लाल बर्तनों के स्थल प्रचुर मात्रा में मिले जिनका अर्थ है कि यहाँ संभवतः जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी। तीसरी सदी बी.सी.ई. से महापाषाणकाल में परिवर्तन विस्तृत रूप से समता आधारित समाज में परिवर्तन की शुरुआत थी, फलतः वर्गीकृत समाज की नींव पड़ी। दूसरी सदी बी.सी.ई. के आरंभ से धातु के सिक्के का चलन, रोम से व्यापार तथा शहरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। शिलालेखों तथा पुरातत्वशास्त्र से प्राप्त जानकारी के आधार पर आंध्र और महाराष्ट्र में काफी संख्या में नगरों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। इस समय तक बौद्ध धर्म दक्कन में फैल चुका था और बौद्ध केन्द्र एवं मठ स्थापित हो चुके थे। साथ ही मौर्य साम्राज्य के ऐतिहासिक विस्तार के रूप में एक अन्य स्थिति उत्पन्न हुई जिसने इन विकासों की प्रक्रिया को और तेज कर दिया।

मौर्य प्रसार के साथ महापाषाण युगीन संस्कृति ने आरंभिक ऐतिहासिक बस्तियों का पथ प्रशस्त किया। दक्कन में कई शहरी केन्द्र एवं मठ जिनमें से कई केन्द्रीय स्थल बन गए इसी काल में अस्तित्व में आए। यही अंतःसंबंध दक्कन में स्थानीय बस्तियों के उदय में सहायक रहे। यह स्थानीय बस्तियाँ उत्तरी भारतीय *जनपदों* के समरूप समझी जा सकती हैं। सतवाहनों के युग तक स्थानीय बस्तियों ने दक्कन में पूर्व ऐतिहासिक राज्य गठन का आधार तैयार किया। दूसरी सदी बी.सी.ई. के बाद से धीरे-धीरे खेतिहर बस्तियों के विस्तार एवं नए समुदायों के समाहित होने की प्रक्रिया दिखायी देती है। सामाजिक मेल-जोल का पथ सर्वप्रथम बुद्धमत एवं मठों ने तदोपरांत ब्राह्मणों एवं ब्राह्मणवाद ने प्रशस्त किया। निवासी समुदायों के बीच त्रिकोणी संबंध प्रतीत होता है। यह तीन पक्ष निवासी समुदाय, राज्य, मठ अथवा/एवं ब्राह्मण थे। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया तटवर्ती आंध्र में इक्शवाकु वंश, कर्नाटक में कदम्ब तथा महाराष्ट्र में वाकाटक के अधीन और तेज हुई। प्रथम सहस्त्राब्दि सी.ई. के मध्य तक उक्त दो क्षेत्र अपनी अलग पहचान बना चुके थे।

3.8.4 कलिंग एवं प्राचीन उडीशा

दक्कन की भांति ही उडीशा में भी चौथी एवं तीसरी सदी बी.सी.ई. के दौरान महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 300 बी.सी.ई. तथा 300 शताब्दी सी.ई. के बीच उडीशा का इतिहास आदिवासी समाज के आंतरिक परिवर्तन का इतिहास है। यह परिवर्तन आंशिक रूप से स्वतंत्र था तथा कुछ अंश तक गंगा के मैदानों की सुसंस्कृत सभ्यता से प्रभावित था जिसका आरंभ नंद एवं मौर्य काल के समय में इंगित किया जा सकता है। इसके उपरांत चौथी शताब्दी सी.ई. से नवीं शताब्दी के बीच इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर कई उप-क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ। दसवीं शताब्दी तक यह विकास प्रक्रिया स्पष्ट रूप ले चुकी थी। तथापि यह प्रक्रिया प्रत्येक स्थान पर समरूपी नहीं थी।

डेल्टा तट के तटवर्ती क्षेत्रों में क्षेत्र के अंदर की जंगली भूमि और ढलानों की अपेक्षा, जो कि निकटवर्ती छत्तीसगढ़ एवं बस्तर उपक्षेत्रों से काफी मिलते-जुलते हैं, ऐतिहासिक चरण की दिशा में परिवर्तन जल्दी हुए। केंद्रीय एवं पश्चिमी उडीशा में धीमा और असमान परिवर्तन देखने को मिलता है। बड़ी संख्या में यहाँ आदिवासियों का बसना तथा भू-आकृति के कारण यहाँ गंगा प्रदेश की सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन प्रक्रिया की पुनरावृत्ति नहीं हो सकी, उडीशा

में *वर्ण* व्यवस्था के अंतर्गत जातिगत समाज देर से उभरा और जब उभरा भी तो काफी मूल अंतरों के साथ उभरा। सामाजिक संरचना की दृष्टि से उडीशा क्षेत्रीय भिन्नता का अच्छा उदाहरण है।

3.8.5 उत्तर-पश्चिम

उत्तर-पश्चिम में सिंध और बलूचिस्तान के विषय में अभी बहुत कम चर्चा हुई है। इसका कारण इन क्षेत्रों की सीमांती स्थिति है। यह क्षेत्र आरंभिक ऐतिहासिक दौर में अधिकतर विशाल भारतीय रेगिस्तान में हो रहे सांस्कृतिक विकासों की मुख्यधारा से कटे रहे। इस तथ्य पर चर्चा की आवश्यकता नहीं कि यह क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से विकासरहित था। जिस काल की हम चर्चा कर रहे हैं उस काल में इन क्षेत्रों में जो भी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई हैं वह अधिकतर मध्य एशिया, अफगानिस्तान अथवा ईरान के संदर्भ से हुई हैं, केवल कुषान काल के बाद से ही इन क्षेत्रों में एक अंतर्क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हुई जिसमें उत्तरी भारत का भी एक बड़ा भाग शामिल था। उत्तर-पश्चिम में गांधार क्षेत्र इसका अपवाद था।

छठवीं शताब्दी बी.सी.ई. में ही गांधार 16 महा-*जनपदों* की सूची में था। मगध के राजा बिम्बसार के गांधार का राजा के साथ राजनैतिक संबंध था। गांधार की राजधानी तक्षशिला शिक्षा एवं व्यापार का केंद्र थी। गांधार का विस्तृत आर्थिक आधार था। मथुरा, मध्य भारत तथा रोम के साथ गांधार के व्यापार के प्रमाण हैं। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण गांधार विभिन्न लोगों एवं संस्कृतियों के मिलाप का केन्द्रीय स्थान था। छठी शताब्दी बी.सी.ई. के अंतिम 25 वर्षों में यह क्षेत्र राजनीतिक रूप से ईरानी (आकेमिनिड) साम्राज्य का हिस्सा था। 500 शताब्दी बी.सी.ई. से 500 शताब्दी सी.ई. तक लगभग 1000 वर्षों तक तक्षशिला में निरंतर शहरी जीवन के प्रमाण मिलते हैं। किंतु यह शहरी जीवन अपने चर्मोत्कर्ष पर दूसरी शताब्दी बी.सी.ई. से लेकर दूसरी शताब्दी सी.ई. तक रहा। इसी काल में सुविख्यात गांधार कला शैली विकसित हुई। भाव की दृष्टि से सामान्य यह कला यूनानी बौद्ध शैली के रूप में व्याख्यायित की जाती है क्योंकि यह गांधार शैली – यूनानी कला तथा बुद्धमत के सामंजस्य का परिणाम मानी जाती है। लेकिन अब निरंतर यह स्वीकार किया जा रहा है कि इस शैली पर बैक्ट्रिया का प्रभाव भी था। अतः गांधार शैली के विकास पर बैक्ट्रिया विचार पद्धति के प्रभाव को भी नहीं नकारा जा सकता। यहाँ जो कहने का प्रयास किया जा रहा है वह निम्नलिखित है :

1) प्रथमतः उत्तर पश्चिम में सिंध एवं बलूचिस्तान की तुलना में गांधार एक भिन्न विकास प्रक्रिया दर्शाता है, तथा

2) आरंभिक सी.ई. शताब्दियों में इस क्षेत्र की विशिष्ट पहचान अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण भिन्न बाहय प्रभावों के आधार पर बनीं।

बोध प्रश्न 5

1) निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन-सा गलत (×) हैं?

   i) गांगेय घाटी एक समरूपी भौगोलिक आधार है। ( )

   ii) मुद्रा के चलन की आवश्यकता व्यापार एवं वाणिज्य के कारण प्रस्तुत हुई।( )

   iii) राज्य-गठन की बुनियाद *जनपद* था। ( )

   iv) *संगम* साहित्य प्राचीन तमिल देश में राज्य के गठन पर कोई प्रकाश नहीं डालता है। ( )

   v) गांधार क्षेत्र का विकास भिन्न सांस्कृतिक कारणों से प्रेरित था। ( )

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

i) नगरों के .... (विकास, क्षति) में कृषि के अतिरिक्त उत्पादन ने मदद की।

ii) .... (*जनपदों/ महाजनपदों*) के उदय के कारण महानगरों का उदय संभव हो सका।

iii) आंध्र तटवर्ती क्षेत्रों में .... (पाँचवीं, तीसरी, प्रथम, दूसरी) शताब्दी बी.सी.ई. के दौरान अधिक उत्पादक .... (गेहूं/धान) उगाना प्रचलित था।

iv) उडीशा में .... (गैर आदिवासी/आदिवासी) परिस्थिति के कारण .... (उपमहाद्वीप/क्षेत्र) में परिवर्तन की प्रक्रिया में बाधा पड़ी।

स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-2
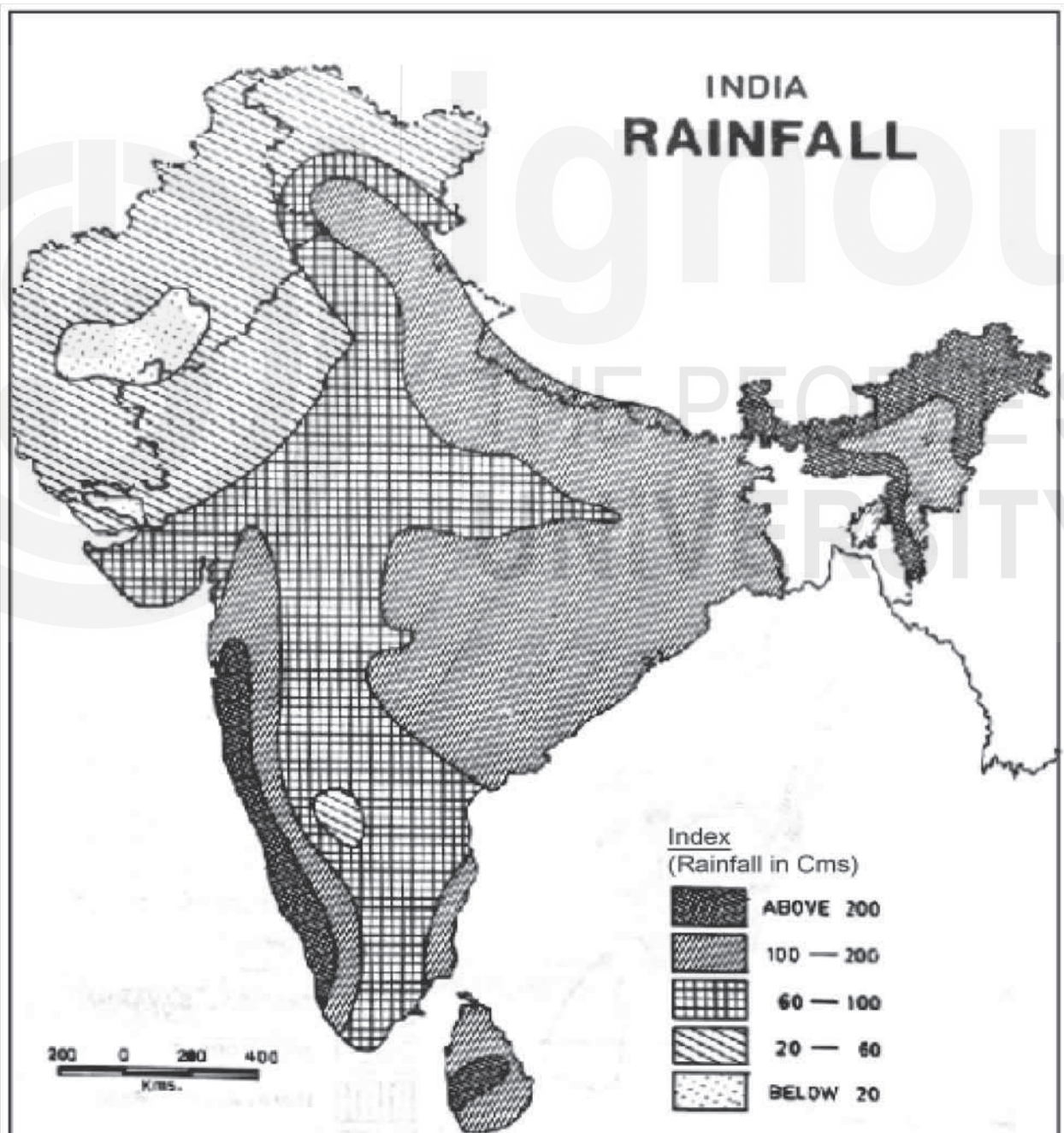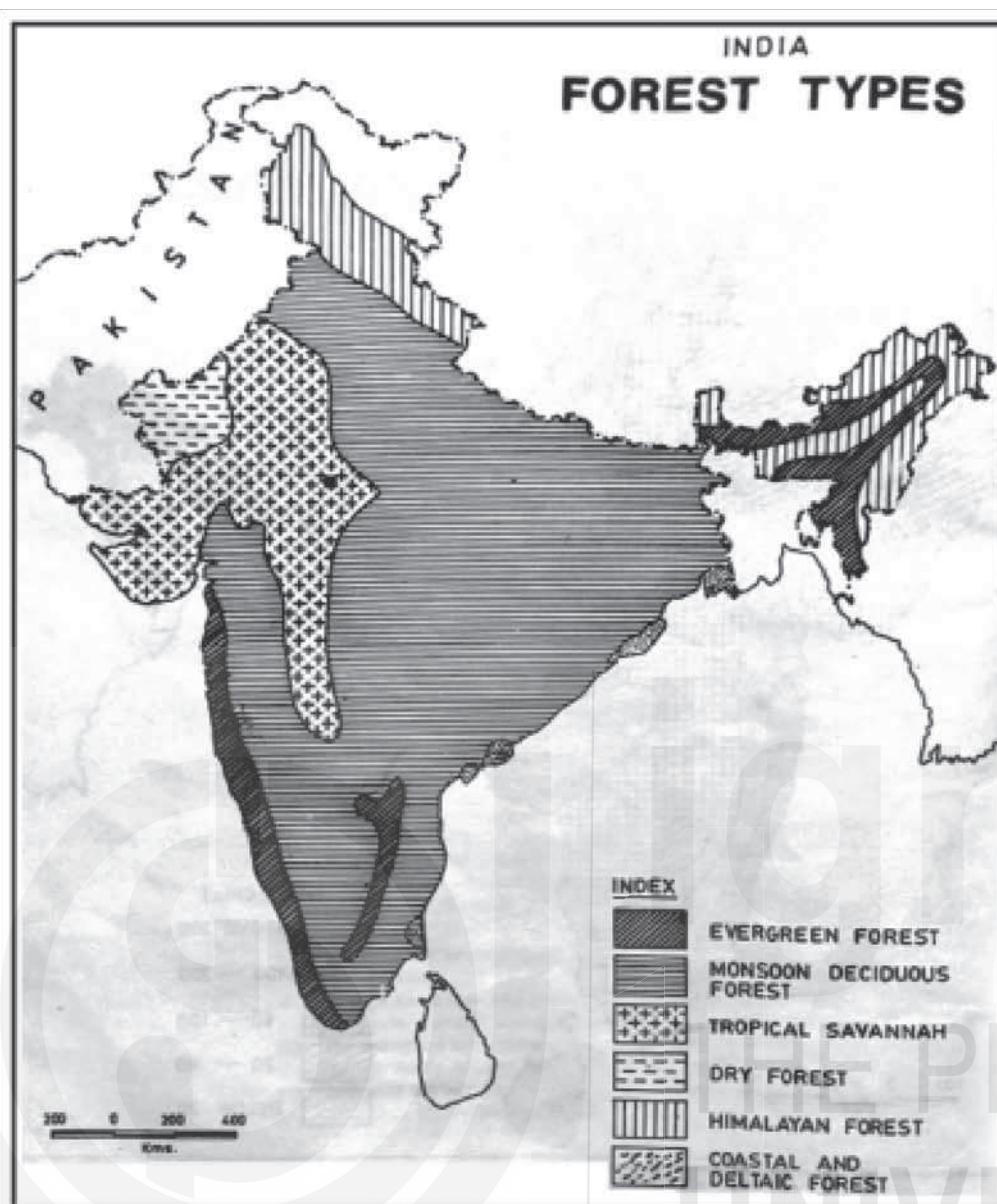
स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-2

3.9 सारांश

भारतीय उपमहाद्वीप में प्राकृतिक विभाजन मोटे तौर पर भाषाई क्षेत्रों के अनुरूप है। इन भाषाई क्षेत्रों ने समयानुकूल विकसित होकर अपनी अलग सांस्कृतिक पहचान कायम की। विभिन्न प्राकृतिक भागों में लोगों को विभिन्न रुचियाँ, भोजन संबंधी आदतें और वस्त्र शैलियाँ हैं। ये आदतें और रुचियाँ विभिन्न प्राकृतिक क्षेत्रों की सीमाओं के अंदर विकसित हुए संसाधनों के उपयोग के तरीके, पर्यावरणीय व्यवस्था और जीवन के ढंग से पैदा हुई। बृहद क्षेत्रों के अंदर और दो बृहद क्षेत्रों के बीच जो असमान विकास हुआ, उसे इन क्षेत्रों में उपलब्ध या अनुपलब्ध संसाधनों के संदर्भ में, और मानवीय तथा तकनीकी अंतःक्षेप के आधार पर समझा जा सकता है। देश की प्रमुख नदियाँ/घाटियाँ, जिनमें प्रति वर्ष वर्षा का औसत पचास से सौ सेंटीमीटर के बीच रहा है और जो बड़े पैमाने पर कृषि समुदायों को पोषण प्रदान करने में सक्षम रही है, वे युगों से पूरी तरह आबाद रही है। कम या अधिक वर्षा वाले क्षेत्र अनुवर्रता और घनी वन्य वनस्पति की समस्याओं से ग्रस्त रहे हैं। और ऐसे क्षेत्र कृषि के लिए अधिक उपयुक्त नहीं रहे हैं। उपमहाद्वीप में इष्टतम वर्षा वाले क्षेत्र और कृषि के लिए साफ किये गये क्षेत्रों में आश्चर्यजनक, सह-सम्बन्ध पाया गया है। ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के विकास सभी जगह न तो संतुलित हुआ और न एक जैसा।

उत्तर में हिमालय और दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व में समुद्री सीमाओं से घिरा भारतीय उपमहाद्वीप एक बंद और अलग क्षेत्र होने का आभास कराता है। मगर इन सीमाओं के पार से सांस्कृतिक प्रभावों का आदान-प्रदान होता रहा। और इस महाद्वीप के पश्चिम, पश्चिम-पश्चिम एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ समुद्री मार्ग से संबंध बने रहे। आंतरिक रूप से मध्य भारत की ऊबड़-खाबड़ और दुर्गम पहाड़ी प्रदेश, देश के विभिन्न प्रदेशों के बीच विचारों और प्रभावों के आदान-प्रदान के मार्ग में कभी भी वास्तविक बाधा नहीं बन सका। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि हालांकि भूगोल और पर्यावरण ऐतिहासिक विकास को पूरी तरह नियत नहीं करते, फिर भी उसे पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करता है।

हमारे इतिहास में क्षेत्र एवं क्षेत्रीयता की समस्या के सर्वेक्षण तथा क्षेत्रों के गठन की प्रक्रिया को रेखांकित करने वाले उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रों का सामाजिक सांस्कृतिक अंतर ऐतिहासिक रूप से काफी पुराना अंतर है। स्वाभाविक भौतिक क्षेत्रों का ऐतिहासिक/सांस्कृतिक क्षेत्रों के रूप में उदय भारतीय इतिहास के आरंभिक दौर में देखा भी जा सकता है। बाद के दौर में इन क्षेत्रों ने अपनी विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान तैयार की और पृथक सामाजिक राजनैतिक इकाई के रूप में उभरे। कुछ क्षेत्र, ऐतिहासिक शक्तियों के उनमें आरंभ में ही अभिसारित हो जाने के कारण अपेक्षाकृत जल्दी और तेजी से उभरे। अन्य क्षेत्रों के अंतर्गत विकास इन बुनियादी केंद्रों के साथ सांस्कृतिक संपर्क तथा इस संस्कृति को समाहित करने के साथ हुआ। कुछ हद तक इससे भिन्न क्षेत्रों की विशिष्टताओं और उनमें भिन्नताओं को समझा जा सकता है।

क्षेत्रीय विभिन्नताएँ गुप्त एवं उत्तर गुप्त काल में भाषा शिल्पकला, वस्तुकला एवं जाति व्यवस्था के माध्यम से अधिक स्पष्ट रूप में रेखांकित होती हैं। लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाएँ इसी काल में विकसित होती हैं। साथ ही प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग जाति व्यवस्था भी विकसित हुई। यह सांस्कृतिक अंतर केवल भिन्न क्षेत्रों के बीच ही नहीं थे बल्कि एक ही क्षेत्र में भी भिन्नताएँ देखी जा सकती हैं। यद्यपि क्षेत्र अपने आप में साधारणतया समरूपी इकाई थे लेकिन क्षेत्रों के अंतर्गत उपक्षेत्रों के अस्तित्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमने पहले भी देखा है कि गांगेय उत्तरी भारत किसी भी रूप में एक समरूपी क्षेत्र नहीं था। प्राचीन *तमिलाहम्* (तमिलनाडु) के अंतर्गत पर्यावरणीय विभिन्नतायें भी ध्यान में रखी जानी चाहिए। आंध्र, उडीशा, पंजाब और गुजरात के संदर्भ में भी यह तथ्य उतना ही सही जान पड़ता है। उपक्षेत्रों के अपने प्राचीन नाम भी थे। तथापि बदलते हुए राजनैतिक प्रतिरूपों और उपक्षेत्रों के एक दूसरे में समाहित हो जाने के कारण यह उपक्षेत्र बाद के समय में नये नाम ग्रहण करने लगे। निश्चित सीमाओं में एक इकाई के रूप में क्षेत्र ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के आधार पर उभरते हैं और भारतीय इतिहास की समझ के लिए क्षेत्रों की विशेषताओं और उनके गठन की प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है।

3.10 शब्दावली

साक्षर युग : इतिहास का वह काल जब समाज में साक्षरता और लिपि का ज्ञान था।

मृद्भाण्ड : मिट्टी के बर्तन।

***संगम* साहित्य** : तमिल क्षेत्र के लोगों का सबसे पुराना साहित्य। वह पहली से तीसरी शताब्दी सी.ई. के बीच संकलित किया गया।

भाट : वह घुमक्कड़ समूह जो गीतों के रूप में प्रशस्तियाँ गाते थे।

केन्द्रीय क्षेत्र : वह क्षेत्र जो किसी बड़े क्षेत्र के विकास में केंद्रीय बिन्दु की भूमिका निभाते हैं।

निवासी समुदाय : कबायली समुदाय के विपरीत एक स्थान पर रहकर कृषि तथा अन्य तरीकों से जीवनयापन करने वाले लोग।

अनुकूलन नीति : मनुष्य द्वारा अपनाई गई वह नीति या ढंग जिससे वह नए पर्यावरण या संस्कृति के साथ सामंजस्य करता है, उसके अनुकूल स्वयं को ढालता है।

जलोढ़ मैदान : नदी द्वारा लाई गई मिट्टी या बालू आदि के इकट्ठा होने से बना मैदान।

जाति-कृषक आधार : प्रारंभिक व्यवस्थित कृषि-समाज से संबंधित, जिसके सदस्य सामाजिक रूप से जाति-आधार पर वर्गीकृत थे। ये सदस्य अपने समाज के खेती करने वाले सदस्यों की पैदावार पर निर्भर रहते थे।

ताम्र-पाषाण युगीन बस्तियाँ : उस युग का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियाँ जिसमें पत्थर और तांबे दोनों से ही निर्मित वस्तुओं का उपयोग होता था।

सीमान्त क्षेत्र : एक कृषि बस्ती के बाहर का क्षेत्र। सामान्य रूप से ऐसे क्षेत्रों का कुछ सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध मुख्य बस्ती से होता था। उदाहरण के लिए, ऐसे सीमान्त क्षेत्रों में रहने वाले खानाबदोश मुख्य बस्ती को दूध, भेढ़, खाल, ऊन आदि की आपूर्ति किया करते थे।

भौगोलिक निकटता : प्राकृतिक रूप से निकटवर्ती या साथ-साथ लगे क्षेत्र।

भाषाई विभाजन क्षेत्र : प्राकृतिक क्षेत्र का उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाओं के आधार पर विभाजन।

तटवर्ती : समुद्र तट पर स्थापित।

चित्रित भूरे या धूसर, भांड संस्कृति : गंगा दोआब क्षेत्र में प्राप्त भूरे रंग के बर्तनों या भांडों से संबंधित संस्कृति।

पशुचारण : वह पेशा या व्यवसाय जिसके तहत पशु पाले जाते हैं।

तकनीकी हस्तक्षेप : एक क्षेत्र या संसाधन क्षमता के विकास में कई तकनीकों और जानकारियों का प्रभाव।

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i)

2) आपके उत्तर में भारी उपजाऊ भूमि, सिंचाई सुविधाएँ, पत्थर, लकड़ी जैसे विभिन्न संसाधनों की निकटता आदि को शामिल किया जाना चाहिए। देखिए उपभाग 3.2.1।

3) i) उत्थान और पतन, हमारी मदद करते हैं।

ii) करने का प्रयास करता है।

iii) तीन iv) उपक्षेत्र

बोध प्रश्न 2

1) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×

2) i) तीन, क्षेत्रों ii) वर्षा, दलदल iii) ज्वार, तिलहन iv) तालाब, सिंचाई

बोध प्रश्न 3

1) i) × ii) ✓ iii) × iv) ✓ v) ×

2) **संकेतः** चित्रित धूसर मृद्भांड, चमकाए हुए चित्रित मृद्भाण्ड, उनके काल का भी उल्लेख करें। देखें उपभाग 3.5.2।

बोध प्रश्न 4

1) आपके उत्तर में शक्तिशाली क्षेत्रीय इकाइयों के विकास, इकाइयों की शक्ति एवं क्षेत्रीय शक्तियों का मजबूत पक्ष आदि सम्मिलित होना चाहिए। देखें भाग 3.6।

2) देखें उपभाग 3.6.1।

3) i) स्वतंत्र ii) सहअस्तित्व iii) भिन्न iv) अधिक

बोध प्रश्न 5

1) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) × v) ✓

2) i) विकास ii) *महाजनपद* iii) पाँचवीं-तीसरी, धान iv) आदिवासी, क्षेत्र

3.12 संदर्भ ग्रंथ

चक्रबर्ती, डी. के. (2014). ऐडितोरियल-ऐस्पैक्टस ऑफ हिस्टोरिकल ज्यॉग्राफी, पृ. 3-2। डी. के. चक्रबर्ती एवं मक्खन लाल (संपादक) *हिस्ट्री ऑफ एशिएन्ट इंडिया*, वॉल्यूम-1, प्रिहिस्टोरिक रूट्स, विवेकानन्द इंटरनेशनल फाउंडेशन एण्ड आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली।

चट्टोपाध्याय, बी. डी. (1984). *ए समरी ऑफ हिस्टोरिक ज्योग्राफी ऑफ एशियण्ट इण्डिया.* कोलकता।

चौधरी, एस. बी. (1948). ''रीजनल डिविजन्स ऑफ ऐशियण्ट इंडिया'', *अन्नाल्स ऑफ द भंडारकर ओरिएँटल रिसर्च इंस्टीट्यूट.* वॉल्यूम-29, नवम्बर 1/4, पृ.123-146।

गाडगिल, माधव और गूहा, आर (1992). *द फिशर्ड लैंड : एन इकोलोजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, नई दिल्ली।

गाडगिल, माधव और थापर, रोमिला (1990). ह्यूमन इकोलॉजी इन इंडिया : सम हिस्टोरिकल पर्सपैक्टिव. *इंटरडिसिप्लीनरी साइंस रिव्यू*, वॉल्यूम 15, संख्या 3।

लॉ, बी. सी. (1954). *हिस्टोरिकल ज्योग्राफी ऑफ एंशियण्ट इंडिया.* पैरिस।

सिंह, आर. एल. (संपादक) (1971). *इण्डिया : ए रीजनल ज्योग्राफी*. वाराणसी।

स्पेट, ओ. एच. के. और लियरमंथ, ऐ. टे. ए. (1972). *इंडिया एण्ड पाकिस्तान, ए जनरल एण्ड रीजनल ज्योग्राफी.* चौथा संस्करण, लंदन।

सुब्बाराऊ, बी. (1958). *द पर्सनैलिटी ऑफ इंडिया.* बड़ौदा।

इकाई 4 शिकारी-संग्रहकर्ता: पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य, कृषि और पशु पालन का आरम्भ*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- प्रागैतिहासिक काल की शिकारी-संग्रहकर्त्ता अवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों को समझ सकेंगे;
- उन पुरातात्विक प्रमाणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे जिनसे उनके इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है;

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-1 से ली गई है।

- इस काल के लोगों के जीवन यापन के तरीकों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- उन औज़ारों के बारे में जान सकेंगे जिनका वे उपयोग करते थे। इसके अलावा इस बात की भी जानकारी मिल सकेगी कि प्रागैतिहासिक कला उनके संगठन के विषय में जानने में कितना सहयोग प्रदान कर सकती है।

इस इकाई में धातुओं का उपयोग होने के चरण से पहले कृषि के प्रारम्भ और पशुओं को पालने की शुरुआत पर भी विचार किया गया है। अनाजों की खेती और कृषि के विकास से यायावर शिकारी/संग्राहत स्थानबद्ध कृषक बन गया। इससे गांव की बस्तियों की और नए प्रकार के उपकरणों के विनिर्माण की शुरुआत हुई। मानव के विकास के इस चरण को नवपाषाण चरण कहा गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित के विषय में भी सीख सकेंगे :

- संस्कृति के नवपाषाण चरण के विशिष्ट लक्षण;
- नए प्रकार के पत्थर के औज़ारों, उगाए गए पौधों आदि के रूप में पुरातात्विक साक्ष्य जिनसे कृषि की शुरुआत प्रदर्शित होती है;
- पश्चिम एशिया और भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि के स्वरूप, और
- भारतीय उपमहाद्वीप के अलग-अलग क्षेत्रों में उगाई विभिन्न फसलें।

4.1 प्रस्तावना

आज इक्कीसवीं शताब्दी में हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि मनुष्य जाति ने अपने अस्तित्व के आरम्भ से लेकर आज तक का 99 प्रतिशत हिस्सा शिकारी/संग्रहकर्ता के रूप में बिताया है। कहने को तात्पर्य यह है कि मनुष्य ने मात्र 10,000 वर्ष पूर्व कृषि द्वारा उत्पादन करना सीखा। इससे पहले वह पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर था। अपने भोजन के लिए या तो वे प्रकृति से जड़ें, फल मूल आदि एकत्र करते थे या पक्षियों, जानवरों और मछलियों को पकड़कर अपना भोजन जुटाते थे। अपने अस्तित्व के अधिकांश कालों में मनुष्य प्रकृति और पर्यावरण पर पूर्णतः आश्रित रहा। इस तथ्य से कई बातें सामने आती हैं। एक तो यह कि उनके भोजन प्राप्त करने के तरीकों का प्रभाव उनके प्रकृति से संबंध और प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण पर पड़ा। दूसरी यह कि शिकारी/संग्रहकर्ता एक समूह में रहते थे और इसका संबंध उनके द्वारा भोजन जुटाने की पद्धति से है। यहां एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अन्य समूहों की अपेक्षा शिकारी/संग्रहकर्ता समूहों की बनावट कहीं ज्यादा लचीली थी।

मनुष्य काफी अरसे तक शिकारी/संग्रहकर्ता का जीवन बिताता रहा। इसलिए इस काल के मानव इतिहास को जानना जरूरी है। विश्व में ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहां आज भी लोग शिकारी/संग्रहकर्ता का जीवन जी रहे हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि मानव इतिहास में हुए सांस्कृतिक बदलावों के साथ-साथ हम उनकी संस्कृति के बारे में भी जानकारी हासिल करें। पर हम शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के बारे में जानेंगे कैसे? शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं के रहने के ढ़ंग, उनके सामाजिक संगठन और उनके पर्यावरण आदि विभिन्न पहलुओं पर कई मानव जाति वैज्ञानिकों/मानवेताओं ने प्रकाश डाला है। इन्होंने जीवित शिकारी/संग्रहकर्ता समूहों का अध्ययन किया है। इनके कार्यों से अतीत के शिकारी/संग्रहकर्ता समुदायों की जीवन पद्धति और स्थिति को जानने की अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। इन समुदायों के बारे में जानने के लिए हमें उन पुरात्तववेताओं और अन्य वैज्ञानिकों की सहायता लेनी पड़ती है जो उन समुदाय विशेष के औज़ारों, हड्डियों के अवशेषों और पर्यावरण विशेष के विशेषज्ञ होते हैं। इस प्रकार के अध्ययन के लिए कई प्रकार के शैक्षणिक संकायों का सहारा लेना पड़ता है। उनके जीवन को जानने के लिए कई प्रकार के साक्ष्यों जैसे जानवरों के अवशेष, पौधे और अन्य जैव अवशेषों का अध्ययन करना पड़ता है और उनका संबंध शिकारी/संग्रहकर्त्ता

अवस्था से जोड़ना पड़ता है और इनसे आदि मानव के तत्कालीन भौतिक पर्यावरण को जानने और इसके उपयोग को समझने की अंतर्दृष्टि मिलती है।

शिकारी/संग्रहकर्त्ताओं द्वारा उपयोग में लाए गए पत्थर के औज़ार पाए गए हैं। उन औज़ारों को इनके प्रकार तथा काल के अनुसार मध्यपाषाणीय, पुरापाषाणीय आदि वर्गों में विभाजित किया गया है। इन औज़ारों के बनाने के तकनीक पर भी पुरातत्ववेता विचार करते हैं। पशुओं के अवशेषों के अध्ययन से इस बात की जानकारी मिलती है कि प्रागैतिहासिक काल में उनका किस प्रकार उपयोग किया जाता था। पत्थर पर की गयी खुदाई और चित्रकारी से भी प्रागैतिहासिक काल के लोगों की अर्थव्यवस्था और समाज का पता चलता है।

4.2 पुरापाषाण युग

पुरापाषाण संस्कृति का उदय अभिनूतन (Pleistocene) युग में हुआ था। अभिनूतन युग (20 लाख वर्ष पूर्व) एक भूवैज्ञानिक काल है जिसमें हिम युग अपने अन्तिम चरण में था। इस युग में धरती बर्फ से ढकी हुई थी। पुरापाषाण युग के पत्थर के औज़ारों के वर्गीकरण के संबंध में भारत के पुरातत्ववेत्ताओं के बीच मतभेद हैं:

- कुछ विद्वान धारदार ब्लेड (Blade) और लक्षणों वाले काल को ''उच्च पुरापाषाण'' कहते हैं।
- कुछ विद्वान उच्च पुरापाषाण को यूरोपीय पुरापाषाण संस्कृति से जोड़ते हैं। पर अब उच्च पुरापाषाण का प्रयोग भारतीय संदर्भ में भी होता है।
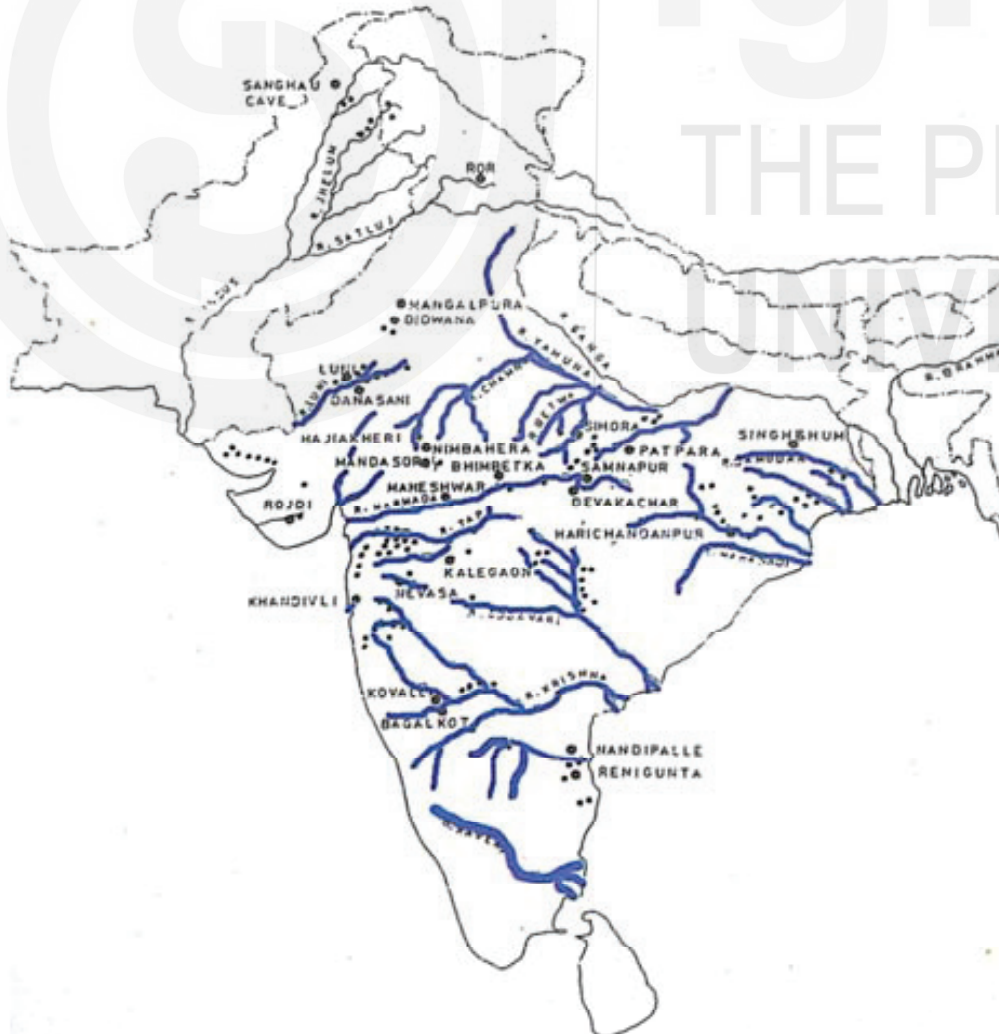
मध्य पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ (श्रेयः वी.एन.मिश्रा, 1989)। स्रोतः एम.एच.आई.-08, खंड-2, इकाई-5।
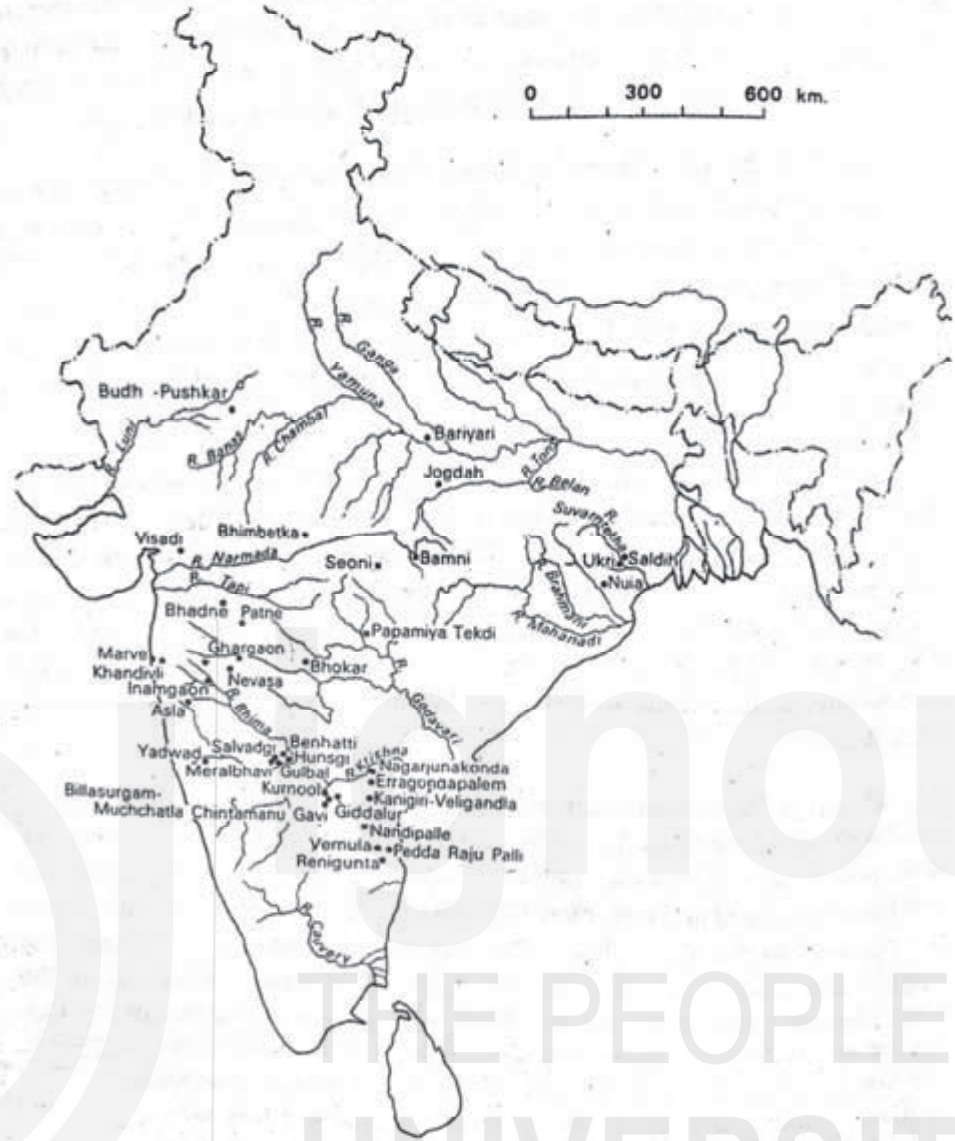
भारत में उच्च पुरापाषाण युगीन बस्तियों का विस्तार। स्रोतः एम.ए.एन.-002, खंड-5, इकाई-3।

4.2.1 पुरापाषाण युग के औज़ार

पर्यावरण और जलवायु में हुए परिवर्तन और मनुष्य द्वारा बनाए गए पत्थर के औज़ारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में बांटा गया है।

- निम्न पुरापाषाण चरण के औज़ारों में मुख्यतः हाथ की कुल्हाड़ी, तक्षणी, काटने का औज़ार आदि हैं।
- मध्य पुरापाषाण युगीन उद्योग काटने के औज़ारों पर आधारित था, और
- उच्च पुरापाषाण युग की विशेषता थी – तक्षणी और खुरचनी।

अब हम इस काल के कुछ औज़ारों और उनके उपयोग के बारे में चर्चा करेंगे।

- हाथ की कुल्हाड़ी (Handaxe) – इसका मूठ चौड़ा और आगे का हिस्सा पतला होता है। इसका उपयोग काटने या खोदने के लिए होता होगा।
- चीरने का औज़ार (Cleaver) – इसमें दुहरी धार होती है। इसका उपयोग पेड़ों को काटने और चीरने के लिए होता था।

- काटने के औज़ार (Chopper) – एक बड़ा स्थूल औज़ार जिसमें एक तरफा धार होती है और इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता था।
- काटने का औज़ार (Chopping tool) – यह भी चौपर के समान एक बड़ा स्थूल औज़ार है पर इसमें दुहरी धार होती है और इसमें कई पट्टे होते हैं। इसका उपयोग भी किसी चीज को काटने के लिए होता था पर अधिक नुकीली धार वाला होने से यह चौपर से अधिक कारगर होता था।
- परत (Flake) – यह एक प्रकार का औज़ार होता है जिसे पत्थर को तोड़कर बनाया जाता है परत की सतह पर सकारात्मक समाघात और इसके सारभाग में एक नकारात्मक समाघात (Negative bulb of percussion) होता है। जिस स्थान पर पत्थर के हथौड़े से चोट की जाती है उसे समाघात स्थल कहते हैं। इस चोट से जो गोल, हल्का उत्तल हिस्सा कट कर निकलता है उसे सकारात्मक समाघात कहते हैं। इस चोट के परिणामस्वरूप सारभाग का जो हिस्सा अवतल हो जाता है उसे नकारात्मक समाघात कहते हैं। परत बनाने की कुछ तकनीकें हैंः फ्री फ्लेकिंग तकनीक, स्टेप फ्लेकिंग तकनीक, ब्लॉक आन ब्लॉक तकनीक, द्विध्रुवीय तकनीक आदि।
- खुरचनी (Side scraper) – इसमें एक पत्तर या ब्लेड होता है और इसका किनारा धारदार होता है। इसका उपयोग पेड़ की खाल या जानवरों का चमड़ा उतारने में किया जाता होगा।
- तक्षणी (Burin) – यह भी पत्तर या ब्लेड के समान ही होता है, पर इसका किनारा दो तलों के मिलने से बनता है। तक्षणी के काम वाले हिस्से की लम्बाई 2-3 से.मी. से अधिक नहीं होती है। इसका उपयोग मुलायम पत्थरों, हड्डियों, कोरों या गुफाओं की दीवारों पर नक्काशी के लिए होता होगा।

पुरापाषाण युग के औज़ारः A) चीरने के औज़ार, B) काटने के औज़ार, C) काटने के औज़ार, D) खुरचनियाँ, E) तक्षणी, F) परत। स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-3।

4.2.2 पुरापाषाण युग की बस्तियाँ

अब हम पढ़ेंगे कि शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा प्रयुक्त औज़ार पुरातत्ववेताओं को किन-किन

क्षेत्रों में मिले हैं। इन औज़ारों के क्षेत्रीय फैलाव के बारे में पता चलने पर न केवल हमें शिकारी/संग्रहकर्ताओं के निवास स्थलों का पता चलेगा, बल्कि उस पर्यावरण की भी जानकारी मिलेगी जिसमें वे रहते थे।

विभिन्न क्षेत्रों में इनका अध्ययन करें :

i) कश्मीर घाटी दक्षिण पश्चिम में पीर पंजाल पहाड़ियों और उतर पूर्व हिमालय से घिरी है। कश्मीर में लिद्दर नदी के किनारे पहलगांव से एक हाथ की कुल्हाड़ी प्राप्त हुई थी। किन्तु पुरापाषाण युग के औज़ार कश्मीर में ज्यादा नहीं मिलते क्योंकि हिम युग में कश्मीर में अत्यधिक ठंड होती थी। पोतवार क्षेत्र (आज का पश्चिमी पंजाब और पाकिस्तान) पीर पंजल और साल्ट पर्वत श्रृंखला के बीच में पड़ता है। इस इलाके में विवर्तनिक बदलाव आया था और इस क्रम में सिंधु और सोहन नदियों की उत्पत्ति हुई थी। सोहन घाटी में हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औज़ार मिले हैं। ये औज़ार अड़ियाल, बलवाल और चौन्टरा जैसी महत्वपूर्ण पुरापाषाणीय बस्तियों में पाये गए हैं। ब्यास, बाणगंगा और सिरसा नदियों के किनारे भी पुरापाषाण युग के औज़ार पाए गए हैं।

ii) लूनी नदी (राजस्थान) के आसपास के क्षेत्र में कई पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। लूनी नदी का उद्गम अरावली क्षेत्र में हुआ था। चितौढ़गढ़ (गंभीर नदी घाटी) कोटा (चंबल नदी घाटी) और नगरई (बेराच नदी घाटी) में पुरापाषाण युग के औज़ार पाए गए हैं। मेवाड़ की वगांव और कदमली नदियों के आसपास भी मध्य पुरापाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं। इन इलाकों से कई प्रकर की खुरचनी, बेधक औज़ार और नुकीले औज़ार भी पाए गए हैं।

iii) गुजरात में साबरमती, माही और उनकी सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औज़ार पाए गए हैं। साबरमती नदी अरावली से निकल कर खम्बात की खाड़ी में जा गिरती है। ओरसंग घाटी के नजदीक भंडारपुर में भी मध्य पुरापाषाण युग के औज़ार पाए गए हैं। सौराष्ट्र में भद्दर नदी के आसपास पुरापाषाण युग के अनेक औज़ार मिले हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियाँ, खुरचनी, काटने के औज़ार, नुकीले औज़ार, बेधक औज़ार आदि। कच्छ क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के अनेक औज़ार मिले हैं जैसे – खुरचनी, हाथ की कुल्हाड़ी और काटने के औज़ार।

iv) नर्मदा नदी मैकॉल पर्वत श्रृंखला से निकलती है और खम्बात की खाड़ी में जाकर मिल जाती है। नर्मदा के समतलों में पुरापाषाण युग के अनेक औज़ार पाए गए हैं, जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां और चीरने के औज़ार। विंध्य क्षेत्र में अवस्थित भीमबेटका (भोपाल के निकट) में पहले एश्यूलियन (Acheulian) संस्कृति के औज़ार उपयोग में लाए जाते थे किंतु वहां बाद में मध्य पुरापाषाण युगीन संस्कृति का आगमन हुआ।

भीमबेटका में पूर्व-ऐतिहासिक शिलाश्रय। ए.एस.आई. स्मारक संख्या एन.-एम.पी. 225। श्रेयः डॉ. अभिषेक आनन्द।

जानवरों के प्रचुर चित्रण के कारण इस गुफा को चिड़ियाघर शिलाश्रय कहा जाता है। श्रेयः डॉ. अभिषेक आनन्द।

v) ताप्ती, गोदावरी, भीमा और कृष्णा नदियों के आसपास भी कई पुरापाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। पुरापाषाण युग की बस्तियाँ की उपस्थिति का संबंध पर्यावरण संबंधी बदलाव से भी है जैसे भू-स्खलन, मिट्टी की प्रकृति आदि। ताप्ती की तलहटी में काफी गहराई तक *रेगुर* काली मिट्टी पाई जाती है। भीमा और कृष्णा नदियों के ऊपरी हिस्से के आसपास के क्षेत्रों में कम पुरापाषाणीय बस्तियाँ पाई गई हैं। महाराष्ट्र में नवासा के नजदीक चिरकी में हाथ की कुल्हाड़ियां, काटने के औज़ार, बेधक औज़ार, खुरचनी और मिट्टी तोड़ने के औज़ार पाए गए हैं। महाराष्ट्र में कोरेगांव, चन्दौली और शिकारपुर पुरापाषाण युग की अन्य प्रमुख बस्तियाँ हैं।

vi) पूर्वी भारत में रोरो नदी (सिंहभूम, बिहार) में भी हाथ की कुल्हाड़ियां, काटने के औज़ार, पत्तर आदि अनेक पुरापाषाण युग के औज़ार पाए गए हैं। सिंहभूम में भी बहुत सी पुरापाषाण युग की बस्तियाँ मिली है। इन बस्तियाँ में मुख्यतः हाथ की कुल्हाड़ियां और काटने के औज़ार पाए गए हैं। दामोदर और सु*वर्णरे*खा नदियों की घाटी से भी पुरापाषाण युग के औज़ारों के पाए जाने की सूचना मिली है। यहां भी पुरापाषाणीय संस्कृति की उपस्थिति स्थलाकृतिक विशेषताओं से प्रभावित हुई है। उडीशा में वैतरनी, ब्राहमणी और महानदी के डेल्टा क्षेत्र में भी पुरापाषाण युग के कुछ औज़ार पाए गए हैं।

उडीशा में मयूरभंज में बुहार बलंग घाटी में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के कई औज़ार पाए गए हैं जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, नुकीले औज़ार और पत्तर।

vii) मालप्रभा, घाटप्रभा और कृष्णा की सहायक नदियों के आसपास पुरापाषाण युग की कई बस्तियाँ पाई गई हैं। घाटप्रभा नदी घाटी में एश्यूलियन (Acheulion) हाथ की कुल्हाड़ियां काफी संख्या में पाई गई हैं। अनगवाडी और बागलकोट घाटप्रभा नदी के पास स्थित दो बस्तियाँ है जहां प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युग के औज़ार पाए गए हैं। तमिलनाडु में पलर, पेनियार और कावेरी में भी पुरापाषाण युग के अनेक औज़ार पाए गए हैं। अतिरमपक्कम और गुड्डियम में प्रारंभिक और मध्य पुरापाषाण युगीन औज़ार पाए गए है जैसे हाथ की कुल्हाड़ियां, खुरचनी, पत्तर, ब्लेड आदि।

4.2.3 जीवय यापन के तरीके

पुरापाषाण युग की बस्तियों में भारतीय और विदेशी मूल के जानवरों के अवशेष काफी मात्रा

में पाए गए हैं। नर वानर, जिराफ, कस्तूरी मृग, बकरी, भैंसा, गाय और सुअर स्वदेशी मूल के पशु प्रतीत होते हैं। ऊँट और घोड़े से उत्तरी अमरीका से संबंध का पता चलता है। दरियाई घोड़ा और हाथी मध्य अफ्रीका से भारत आये थे। ये हिमालय की पूर्वी और पश्चिमी सीमा से होकर आये होंगे। अधिकांश जानवर भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा से होकर आये। उस समय अफ्रीका और भारत के बीच काफी आदान-प्रदान होता था।

पुरापाषाण युग के मनुष्य भोजन के लिए किन स्रोतों पर निर्भर करते थे? इस बारे में जानकारी जानवरों के अवशेषों से मिलती है। इन अवशेषों से पता चलता है कि लोग शिकारी और संग्रहकर्ता अवस्था में थे। एक इलाके के रहने वाले मनुष्यों और पशुओं की संख्या के बीच संतुलन रहा होगा। उस समय के लोगों ने आसपास पाये जाने वाले पशुओं और वानस्पतिक संसाधनों का भोजन के रूप में उपयोग किया होगा। मनुष्य छोटे और मध्यम आकार के जानवरों विशेषतः खुरों वाले पशुओं का शिकार करता होगा। साथ ही वह हिरण, गैंडे और हाथी का भी शिकार करता होगा। इस काल में किसी खास प्रकार की शिकारी प्रवृति का पता नहीं चलता है। कहीं-कहीं कुछ विशेष प्रकार के जानवरों के अवशेष बहुतायत में पाए गए, लेकिन इसका कारण यह है कि उस इलाके में उन विशेष जानवरों की बहुतायत थी और उनका शिकार करना आसान था। ऐसा लगता है कि शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा पशुओं और पेड़ों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करना काफी हद तक शुष्क/आद्र ऋतुचक्र पर आधारित था। पुरापाषाण युग के लोग मुख्य रूप से बैल, गवल, नीलगाय, भैंसा, चिंकारा, हिरण, बारहसिंगे, साम्भर, जंगली सुअर, कई तरह के पक्षियों, कुछओं, मछलियों, मधु और फलदायक पौधों के फलों, मूल, बीज और पत्तों को भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

यह कहा जाता है कि आज के वर्तमान शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा शिकार किए जाने वाले जानवरों से अधिक महत्व शिकारी/संग्रहकर्ताओं द्वारा संग्रहित भोजन का है। संग्रहित भोजन के अवशेष शिकार के अवशेषों की तुलना में अधिक समय तक सुरक्षित रहते हैं। पुरापाषाण युग के लोगों की खाने-पीने की आदतों के बारे में पता लगाना मुश्किल है। ये लोग किस प्रकार के पौधों या फलों का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे इस बारे में हमें उस प्रकार की जानकारी उपलब्ध नहीं है जैसी कि आजकल के शिकारी/संग्रहकर्ता समूहों के बारे में उपलब्ध है। यह मुमकिन है कि पुरापाषाण युग के लोग पशुओं के साथ-साथ फल-फूल को भी भोजन के रूप में इस्तेमाल करते होंगे।

पत्थर पर की गई चित्रकारी और खुदाई से भी हमें पुरापाषाण युग के लोगों के रहन-सहन और सामाजिक जीवन के बारे में पता चलता है। सबसे पुरानी चित्रकारी उत्तर पुरापाषाण युग की है। विन्ध्य क्षेत्र में स्थित भीमबेटका में विभिन्न कालों की चित्रकारी देखने को मिलती है। प्रथम काल में उतर पुरापाषाण युग की चित्रकारी में हरे और गहरे लाल रंग का उपयोग हुआ है। इन चित्रों में भैंसे, हाथी, बाघ, गैंडे और सुअर के चित्र प्रमुख हैं। ये चित्र काफी बड़े हैं और 2 से 3 मीटर तक है। पुरापाषाण युग के लोगों के शिकारी जीवन की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के जानवरों के कितने और किन रूपों में चित्र मिले हैं इसका बारीकी से अध्ययन करना होगा। खुदाई और चित्रकारी से पता चलता है कि शिकार ही जीवन यापन का मुख्य साधन था। इन चित्रों में बनी शारीरिक संरचना के आधार पर पुरूष और स्त्री में सरलता से भेद किया जा सकता है। इन चित्रों से यह भी पता चलता है कि पुरापाषाण युग के लोग छोटे-छोटे समूहों में रहते थे और उनका जीवन निर्वाह पशुओं और पेड़ पौधों पर निर्भर था।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी :निम्नलिखित प्रश्नों को सावधानी से पढ़ें और सही तथा सबसे उपयुक्त उत्तर पर निशान लगायें।

1) सामाजिक विकास का कौन सा काल शिकारी/संग्रहकर्ता चरण का प्रतिनिधित्व करता हैः

   क) पुरापाषाण युग

   ख) मध्य पुरापाषाण युग

   ग) पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग

   घ) नवपाषाण युग

2) प्रागैतिहासिक शिकारी/संग्रहकर्ता समाज का अध्ययन कैसे किया जाता है?

   क) लिखित स्रोतों की सहायता से

   ख) मुद्रा विषयक स्रोतों की सहायता से

   ग) शिलालेख स्रोतों की सहायता से

   घ) पुरातत्व अवशेषों की सहायता से

3) अभिनूतन (Pleistocene) युगः

   क) बहुत ठंडा था।

   ख) बहुत गर्म था।

   ग) तापक्रम सामान्य था।

   घ) बहुत सूखा था।

4) पुरापाषाण संस्कृति को तीन चरणों में निम्नलिखित में से किस आधार पर विभाजित करते हैंः

   क) जलवायु में परिवर्तन

   ख) पत्थर के औज़ारों के प्रकार

   ग) पशु-पक्षी अवशेष

   घ) पत्थर के औज़ारों के प्रकार, मौसम में परिवर्तन और पशु-पक्षी अवशेष

5) पुरापाषाण युग की अर्थव्यवस्थाः

   क) भोजन उत्पादन पर आधारित थी।

   ख) शिकार पर आधारित थी।

   ग) जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।

   घ) जानवरों के शिकार और जंगली पौधों से प्राप्त कंदमूल फल के संग्रह पर आधारित थी।
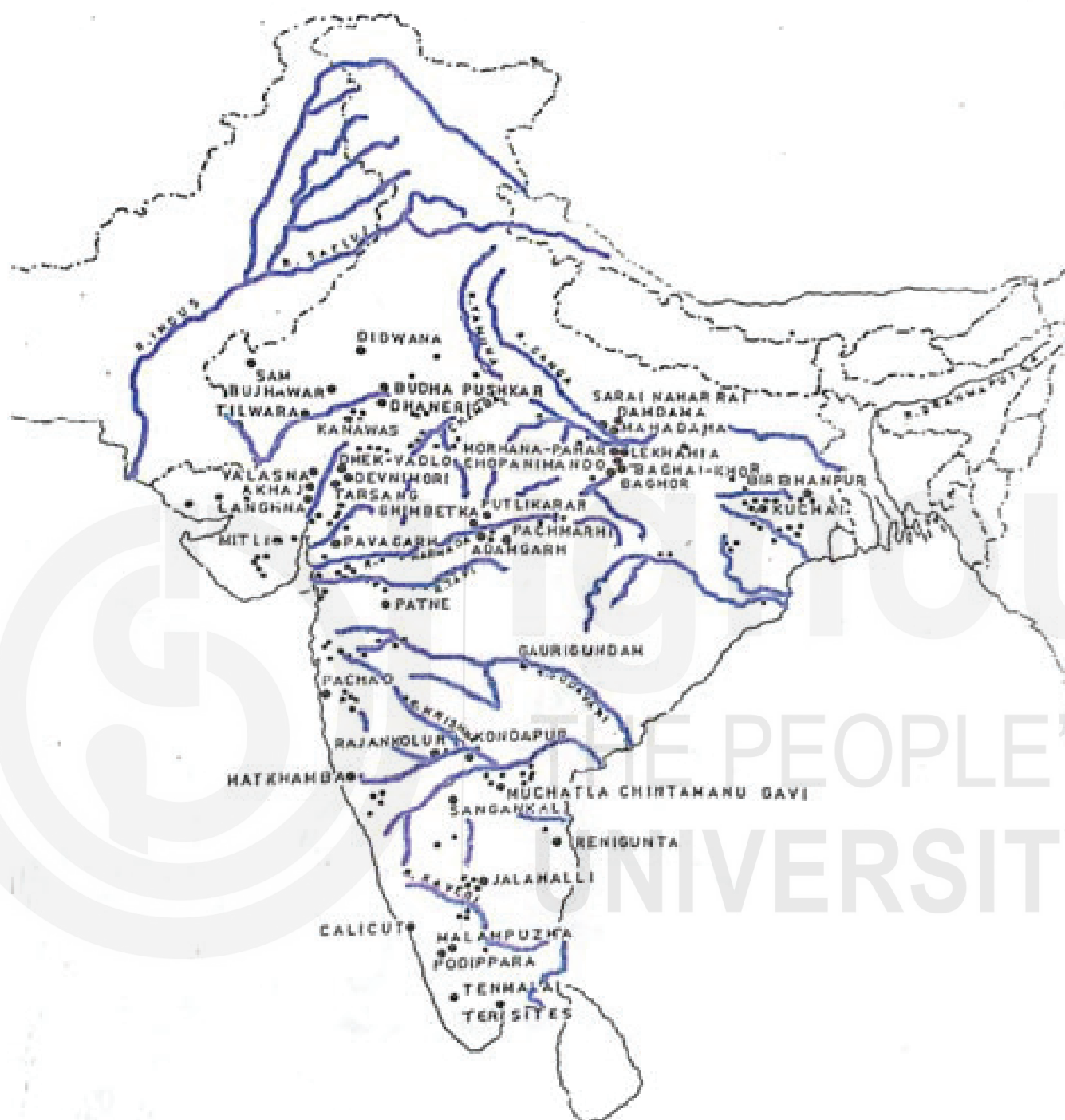
भारत में मध्य पाषाण युगीन बस्तियाँ। श्रेयः वी.एन.मिश्रा, 1989। स्रोतः एम.एच.आई.-08, खंड-2, इकाई-5।

4.3 मध्य पाषाण युग

मध्य पाषाण युग का आरम्भ बी.सी.ई 8000 के आसपास हुआ। यह पुरापाषाण और नव पुरापाषाण युग के बीच का संक्रमण काल है। धीरे-धीरे तापक्रम बढ़ा और मौसम गरम और सूखा होने लगा। परिवर्तन से मनुष्य का जीवन प्रभावित हुआ। पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधों की किस्मों या प्रजातियों में भी परिवर्तन आया। औज़ार बनाने की तकनीक में परिवर्तन हुआ और छोटे पत्थरों का उपयोग किया जाने लगा। मनुष्य मूलतः शिकारी-संग्रहकर्ता ही रहा, पर शिकार करने की तकनीक में परिवर्तन हो गया। अब न केवल बड़े बल्कि छोटे जानवरों का

भी शिकार करने लगा। मछलियाँ पकड़ने लगा और पक्षियों का भी शिकार करने लगा। यह भौतिक और पारिस्थितिकी परिवर्तन पत्थर पर हुई चित्रकारी से भी प्रतिबिम्बित होता है। अब हम इस युग में उपयोग में लाए जाने वाले कुछ औज़ारों की चर्चा करेंगे।

4.3.1 मध्य पाषाण युग के औज़ार

मध्य पाषाण युग के औज़ार छोटे पत्थरों से बने हुए हैं। ये सूक्ष्म औज़ार आकार में काफी छोटे हैं और इनकी लम्बाई 1 से 8 से. मी. तक है। कुछ सूक्ष्म औज़ारों का आकार ज्यामितीय होता है। ब्लेड, कोर, नुकीले, त्रिकोण, नवचन्द्राकार और कई अन्य प्रकार के औज़ार मध्य पाषाण काल में उपयोग में लाए जाने वाले मुख्य ज्यामितीय औज़ार हैं। इनके अलावा इस काल में पुरापाषाण युग के औज़ार जैसे तक्षणा, खुरचनी और यहां तक कि गंडासा भी मिलते हैं।

i) **ब्लेड (Blade)**: यह एक प्रकार का विशेषीकृत परत होता है। इसकी लम्बाई इसकी चौड़ाई से दुगनी होती है। इनका उपयोग संभवतः काटने के लिए किया जाता होगा। मध्य पाषाण युग में औज़ार बनाने की तकनीक को फ्लूटिंग (Fluting) कहा जाता है। इसमें सार मात्र पर प्लेटफार्म के नुकीले सिरे से प्रहार किया जाता है। हमें कुछ धारदार ब्लेड भी मिले हैं। ये चौड़े, मोटे और लंबे होते हैं। ब्लेड को धार देने से उसमें पैनापन आता है। कुछ ऐसे ब्लेड पाए गए हैं जिनके एक या दोनों सिरे धारदार होते हैं अन्यथा दोनों किनारे धारदार होते हैं। ये ब्लेड साधारण ब्लेडों से कहीं अधिक पैने तथा कारगर होते हैं।

ii) **कोर (Core)**: कोर साधारणतया आकार में बेलनाकार होता है जिसकी पूरी लंबाई में फ्लूटिंग के निशान होते हैं और इसमें एक सपाट प्लेटफार्म होता है।

iii) **नुकीला औज़ार (Point)**: नुकीला औज़ार एक प्रकार का टूटा तिकोना ब्लेड होता है। इसके दोनों सिरे ढलवां तथा धारदार होते हैं। इसके सिरे सरल रेखीय या वक्र रेखीय भी हो सकते हैं।

iv) **त्रिकोण (Triangle)**: इसमें साधारणतः एक सिरा और एक आधार होता है और सिरे को धारदार बनाया जाता है। इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है या इसे तीर के अग्र भाग में भी लगाया जाता है।

v) **नवचन्द्राकार (Lunate)**: नवचन्द्राकर औज़ार भी एक तरह का ब्लेड होता है लेकिन इसका एक सिरा वृत्ताकार होता है। यह एक वृत्त के हिस्से के समान मालूम होता है। इनका उपयोग अवतल कटाई के लिए किया जा सकता था या ऐसे दो औज़ारों को मिलाकर तीर का अग्रभाग तैयार किया जा सकता था।
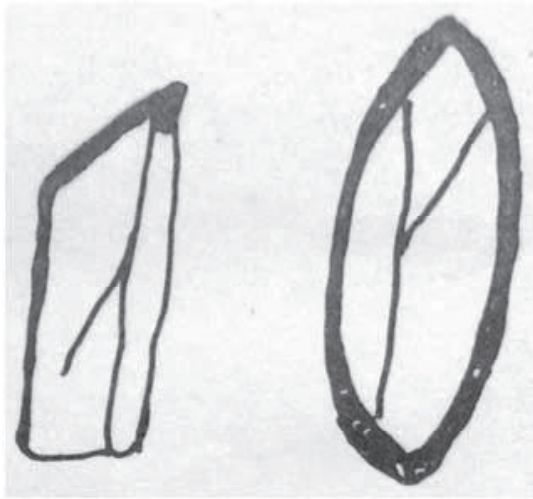
परिष्कृत किया हुआ ब्लेड   नुकीले औज़ार

vi) **समलम्ब औज़ार (Trapeze)**: यह भी एक ब्लेड के समान ही दिखाई पड़ता है। इसके एक से अधिक सिरे धारदार होते हैं। किसी-किसी समलम्ब औज़ारों के तीन सिरे धारदार होते हैं। इनका उपयोग तीर के अग्रभाग के रूप में होता होगा।
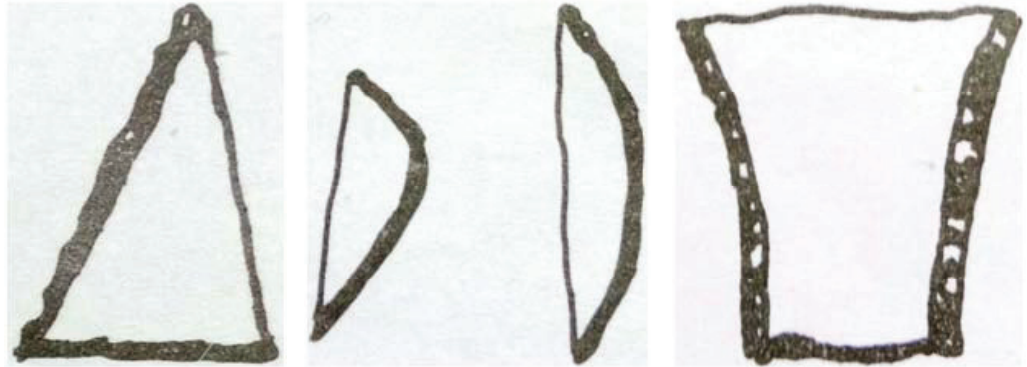
त्रिकोण **नवचन्द्राकार** **समलम्ब औज़ार**

स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-3

4.3.2 मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ

अब हम भारत में मध्य पाषाण युग की महत्वपूर्ण बस्तियों के विषय में चर्चा करेंगे।

i) पचपद्र नदी घाटी और सोजत (राजस्थान) इलाके में सूक्ष्म औज़ार काफी मात्रा में मिले हैं। यहां पाई गई एक महत्वपूर्ण बस्ती तिलवारा है। तिलवारा में दो सांस्कृतिक चरण पाए गए हैं। पहला चरण मध्य पाषाण युग का प्रतिनिधित्व करता है तथा इस चरण की विशेषता सूक्ष्म औज़ारों का पाया जाना है। दूसरे चरण में चाक पर बने हुए मिट्टी के बर्तन और लोहे के टुकड़े इन सूक्ष्म औज़ारों के साथ पाए गए हैं। मध्य पाषाण युग की बड़ी बस्तियों में से एक है – बंगोर (राजस्थान) जो कोठारी नदी के किनारे स्थित है। बगोर में खुदाई की गई तो तीन सांस्कृतिक अवस्थाएं पाई गई। रेडियो कार्बन डेटिंग में अवस्था-I या संस्कृति की सबसे प्रारंभिक अवस्था का समय 5000 से 2000 बी.सी.ई. निश्चित किया गया है।

ii) गुजरात में ताप्ती, नर्मदा, माही और साबरमती नदियों के आसपास भी कई मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अक्खज, बलसाना, हीरपुर और लंघनाज साबरमती नदी के पूरब में स्थित है। लंघनाज का विस्तार से अध्ययन किया गया है। लंघनाज में तीन सांस्कृतिक अवस्थाएं पाई गई हैं। अवस्था-I में सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं। सूक्ष्म औज़ारों में ब्लेड, त्रिकोणीय औज़ार, अर्धचन्द्रकार औज़ार, खुरचनी और तक्षणी आदि प्रमुख हैं।

iii) विन्धय और सतपुरा इलाके में मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियाँ पाई गई हैं। प्रयागराज जिले के प्रतापगढ़ इलाके में सराय नहर राय (उत्तर प्रदेश) का विस्तार से अध्ययन किया गया है। कैमूर पर्वत श्रृंखला में मध्य पाषाण युग की दो प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं – मोरहाना पहाड़ (उतर प्रदेश) और लेखहीया (उतर प्रदेश)। भीमबेटका (मध्य प्रदेश) में अनेक सूक्ष्म औज़ार मिले हैं। भीमबेटका में पारिस्थितिकी संतुलन बसने के लिए अनुकूल था। भीमबेटका के दक्षिण में आदमगढ़ (होशंगाबाद) में मध्य पाषाण युग की एक प्रमुख बस्ती पाई गई है।

iv) कोंकण के तटीय इलाके और आन्तरिक पठार में भी मध्य पाषाण युग के औज़ार पाए गए हैं। कोंकण इलाके में कसूशोअल, जनयेरी, दभालगो और जलगढ़ जैसी कुछ प्रमुख बस्तियाँ पाई गई हैं। असिताश्म के बने दक्षिण पठार में भी अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। धुलिया और पूना जिले में सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं।

v) छोटा नागपुर पठार, उडीशा के तटीय मैदानी क्षेत्र, बंगाल डेल्टा, ब्रहमपुत्र घाटी और शिलांग पठारी इलाके में भी सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं। प्राक् नवपाषाण युग के सूक्ष्म औज़ार छोटा नागपुर पठार में पाए गए हैं। मयूरभंज, कियोनझर और सुन्दरगढ़ में भी सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं। पश्चिम बंगाल में दामोदर नदी के किनारे बीभानपुर की भी खुदाई हुई है। यहां पर भी सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं। मेघालय की गारो पहाड़ियों में स्थित सेबालगिरी-2 में भी प्राक नव पाषीणयुगीन सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं।

vi) कृष्णा और भीमा नदी में भी अनेक सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं। ये सूक्ष्म औज़ार नव पाषाण संस्कृति के चरण में भी पाए गए हैं। कर्नाटक पठार के पश्चिमी किनारे पर स्थित सगंनकल में अनेक औज़ार मिले हैं जैसे कोर, नुकीले औज़ार, अर्धचन्द्राकार पतर आदि।

गोदावरी डेल्टा में भी सूक्ष्म औज़ार काफी मात्रा में पाए गए है। यहां पर पाए गए ये औज़ार नवपाषाणीय संस्कृति से संबंधित हैं। कुरनूल इलाके में भी काफी मात्रा में सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं। आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर इलाके में रेणीगुंटा में सूक्ष्म औज़ार पाए गए हैं। चूंकि मध्य पाषाण युग की काल सीमा काफी लंबी थी और भारत में अनेक मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं। अतः विभिन्न बस्तियों को कालक्रमानुसार और वहां प्राप्त भौतिक अवशेषों के आधार पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। कालक्रम तथा सूक्ष्म औज़ारों की बहुतायत मध्य पाषाण युग के सूचक हैं। कुछ बस्तियाँ कालक्रमानुसार बाद की हैं और मध्य पाषाण संस्कृति से प्रभावित है। ये सभी बस्तियाँ मध्य पाषाणीय परम्परा की बस्तियों की श्रेणी में गिनी जाती हैं। बगोर, सराय-नहर राय और अदमगढ़ में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं।

4.3.3 जीवन यापन के तरीके

आरंभिक मध्यपाषाणीय बस्तियों से जानवरों जैसे भेड़, बकरी, भैंस, सूअर, कुता, हाथी, दरियाई घोड़ा, बनैले सूअर, गवल, गीदड़, भेड़िए, चीते, साम्भर, बारहसिंघे, खरगोश, काले हिरण, मृग, कछुए, साही, नेवले, छिपकली, मवेशियों आदि के अवशेष पाए गए हैं। इनमें से बहुत सी प्रजातियां मध्य पाषाण परम्परा के अंतर्गत विद्यमान रही। मध्य पाषाणीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाली बस्तियां से जंगली भेड़, जंगली बकरी, गदहा, हाथी, लोमड़ी, गवल, दरियाई घोड़ा, साम्भर, खरगोश, साही, छिपकली, चूहा, मुर्गी, कछुआ आदि नहीं पाए गए हैं। जंगली भैंसा, ऊँट, भेड़िया, गैंडा और नीलगाय मध्य पाषाणीय परम्परा के अंतर्गत पाए गए हैं। ये प्रजातियां आरंभिक मध्यपाषाणीय युग में अनुपस्थित थीं। किसी विशेष काल में पशुओं का पाया जाना और न पाया जाना वस्तुतः जलवायु और पर्यावरण संबंधी परिवर्तन पर निर्भर करता है।

मध्य पाषाण युग के दौरान लोग शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन खाते थे। मध्य पाषाण युग की अनेक बस्तियों जैसे लंघनाज और तीलवारा से मछली, कछुए, खरगोश, नेवले, साही, मृग, नीलगाय के अवशेष पाए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भोजन के रूप में इनका उपयोग किया जाता होगा। शिकार करने और मछली मारने के अलावा मध्य पाषाण युग के लोग जंगली कन्द मूल, फल और मधु आदि का भी संग्रह करते थे और यह उनके भोजन का पूर्ण हिस्सा था। ऐसा प्रतीत होता है कि पौधों से प्राप्त भोजन शिकार से प्राप्त भोजन की अपेक्षा अधिक सुलभ था। कुछ इलाकों में घास, खाने योग्य जड़, बीज, काष्ठफल और फल काफी मात्रा में उपलब्ध थे और लोग भोजन के साधन के रूप में इनका उपयोग करते होंगे। कुछ वर्तमान शिकारी/संग्रहकर्ताओं के संदर्भ में यह तर्क दिया जाता है कि उनका मुख्य भोजन फल-फूल ही है। शिकार से प्राप्त भोजन केवल पूरक का ही काम करता है। मध्य पाषाण युग के संदर्भ में पशु मांस और पेड़-पौधों से प्राप्त भोजन के बीच तारतम्य स्थापित करना मुश्किल है क्योंकि पौधों के अवशेष जल्दी नष्ट हो जाते हैं। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि काफी हद तक भोजन की पूर्ति शिकार के माध्यम से होती थी।

पत्थर की गुफाओं की दीवारों पर बनाए गये चित्रों और नक्काशियों से मध्य पाषाण युग के सामाजिक जीवन और आर्थिक क्रियाकलाप से संबंधित काफी जानकारी मिलती है। भीमबेटका, आदमगढ़, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, मध्य पाषाण युग की कला और चित्रकला की दृष्टि से समृद्ध हैं। इन चित्रों से शिकार करने, भोजन जुटाने, मछली पकड़ने और अन्य मानवीय क्रियाकलापों की भी झलक मिलती है। भीमबेटका में भी काफी चित्र बने मिले हैं। इनमें बहुत से जानवरों जैसे जंगली सूअर, भैंसे, बन्दर और नीलगाय के चित्र बने मिले हैं। इन चित्रों और नक्काशियों से यौन संबंधों, बच्चों के जन्म, बच्चे के पालन पोषण और शव दफन से संबंधित अनुष्ठानों की भी झलक मिलती हैं।

मध्यपाषाणीय चित्रकला, भीमबेटका। श्रेयः डॉ. अभिषेक आनन्द।

इन सब बातों से यह संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण युग में पुरापाषाण युग की अपेक्षा सामाजिक संगठन अधिक सुदृढ़ हो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य पाषाण युग के लोगों का धार्मिक विश्वास पारिस्थितिकी और भौतिक परिस्थितियों से प्रभावित था।

मध्यपाषाणीय चित्रकलाएँ, भीमबेटका। स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-3।

बोध प्रश्न 2

1) मध्य पाषाण युग के औज़ार हैं:

   क) हाथ की कुल्हाड़ी और चीरने के औज़ार

   ख) चीरने के औज़ार और काटने के औज़ार

   ग) ब्लेड, कोर, नुकीले औज़ार और नवचन्द्राकार औज़ार

   घ) काटने के औज़ार और परत।

2) निम्नलिखित स्थानों में मध्य पाषाण युग की बस्तियाँ पाई गई हैं :

   क) कोठारी नदी

ख) ताप्ती नदी

ग) गोदावरी डेल्टा

घ) कोठारी नदी, ताप्ती नदी और गोदावरी डेल्टा।

3) निम्नलिखित कथनों में से सबसे सही कथन कौन सा हैः

क) मध्य पाषाण युग के लोगों का जीवन यापन जानवरों के शिकार पर निर्भर था।

ख) उनका जीवन जंगली कंदमूल फल के संग्रह पर निर्भर था।

ग) वे जानवरों का शिकार करते थे और जंगली फलों का संग्रह करते थे।

घ) उनका जीवन अधिशेष खाद्य उत्पादन पर निर्भर था।

4) मध्य पाषाण युग के औज़ारों और चित्रकला के आधार पर मध्य पाषाण युग के जीवन-यापन ढांचे और सामाजिक संगठनों पर प्रकाश डालें।

....

....

....

....

4.4 संस्कृति का नवपाषाण चरण
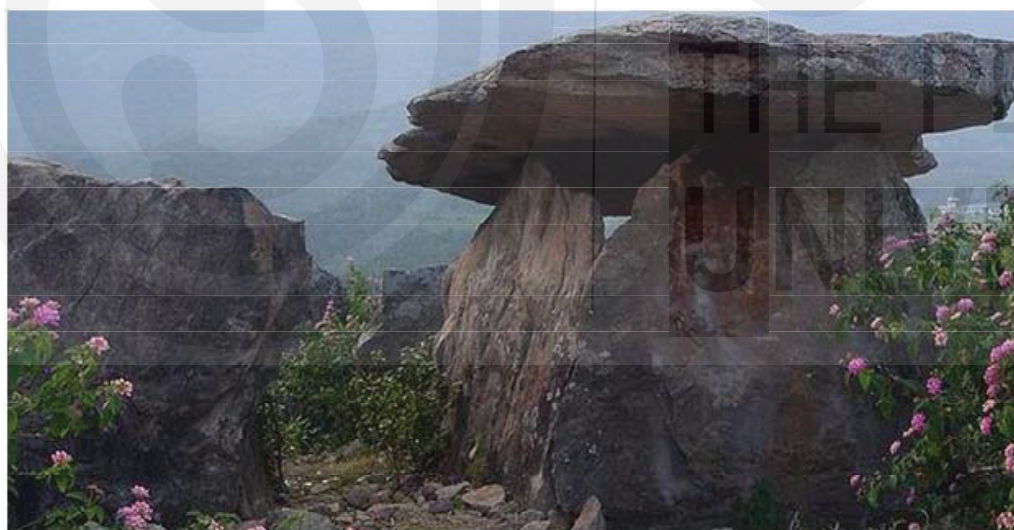
केरल के मरयूर में नवपाषाण लोगों द्वारा बनाया गया एक डोलमेन। श्रेयः सनन्दकरूनाकरन। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:MarayoorDolmen.JPG)।

पिछले खंड में आपने पढ़ा है कि सामान्यतः मानव समुदाय अपने अस्तित्व में सबसे अधिक लम्बे समय तक शिकारी/संग्राहक के रूप में जीवित रहे। उनके अस्तित्व का यह चरण उनके पत्थर के औज़ारों से प्रकट होता है जिन्हें पुरातत्वविदों ने निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया हैः

i) पूर्व पाषाण और

ii) मध्य पाषाण

इनके औज़ारों द्वारा जिन पशुओं का शिकार किया गया है उनके अवशेषों के आधार पर भी उनका वर्गीकरण किया गया है। मानव समुदायों ने संस्कृति के एक नए चरण में उस समय प्रवेश किया जब जीवित रहने के लिए उन्होंने प्रकृति के साधनों पर पूरी तरह से निर्भर रहने की बजाए जौ, गेहूं और चावल जैसे अनाज उगाकर अपने भोजन का स्वयं उत्पादन करना शुरू किया और दूध तथा मांस की पूर्ति के लिए और विभिन्न प्रयोजनों के वास्ते उनके श्रम का उपयोग करने के लिए कुछ विशेष प्रकार के पशुओं को पालना शुरू किया। मानव संस्कृति के इस चरण की शुरुआत नए प्रकार के पत्थर के औज़ारों से पता चलती है जो औज़ार नवपाषाण औज़ार अथवा नव पाषाण युग के औज़ार कहलाते हैं। नवपाषाण औज़ार और इस चरण से संबंधित विभिन्न पहलू, जब यह औज़ार बनाए गए थे। संस्कृति के उस चरण के विभिन्न तत्व हैं जिनमें यह नवपाषाण समुदाय रहे थे। इस खंड में नील घाटी और पश्चिम एशिया में नवपाषाण संस्कृति के प्रसार तथा इसकी विशेषताओं पर भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण चरण के अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में संक्षेप में विचार किया गया है।

वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालना संस्कृति के नवपाषाण चरण का एक मुख्य विशिष्ट लक्षण माना गया है। नियोलिथिक (नवपाषाण) शब्द का प्रयोग सबसे पहले सर जॉन लुबॉक ने अपनी पुस्तक *''प्रिहिस्टोरिक टाइम्स''* (सर्वप्रथम 1865 में प्रकाशित) में किया था। उसने इस शब्द का प्रयोग उस युग को बताने के लिए किया था जिस युग में पत्थर के उपकरण अधिक कुशलता से और अधिक रूपों में बनाए गए और उन पर पालिश भी की गई। बाद में वी. गार्डन चाइल्ड ने नवपाषाण-ताम्रपाषाण संस्कृति को अपने आप में पर्याप्त अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था बताया और माइल्स बरकिट ने इस बात पर ज़ोर दिया कि निम्नलिखित विशिष्ट विशेषकों को नवपाषाण संस्कृति का माना जाना चाहिएः

- कृषि कार्य
- पशुओं को पालना
- पत्थर के औज़ारों का घर्षण और उन पर पालिश करना,
- मृदभांड बनाना।

नवपाषाण की संकल्पना में इधर कुछ वर्षों में परिवर्तन हुआ है। एक आधुनिक अध्ययन में उल्लेख किया गया है कि नवपाषाण शब्द उस पूर्व-धातु चरण संस्कृति का सूचक होना चाहिए। जब यहां रहने वालों ने अनाज उगाकर और पशुओं को पालतू बनाकर भोजन की विश्वस्त पूर्ति की व्यवस्था कर ली थी और एक स्थान पर टिक कर जीवन बिताना आरम्भ कर दिया था। फिर भी, घर्षित पत्थर के औज़ार नवपाषाण संस्कृति की सर्वाधिक अनिवार्य विशेषता है। वनस्पति कृषिकरण और पशुओं को पालने सेः

- एक स्थान पर टिककर जीवन बिताने के आधार पर ग्राम समुदायों की शुरुआत हुई,
- कृषि तकनीकी की शुरुआत हुई,
- प्रकृति पर और अधिक नियंत्रण अथवा प्राकृतिक साधनों का दोहन हुआ।

तथापि अपने स्वयं के उपमहाद्वीप में संस्कृति के नवपाषाण चरण के साक्ष्यों और विनिर्दिष्टताओं पर विचार करने से पहले हम मनुष्यों द्वारा भारत से बाहर के क्षेत्रों में तथा भारतीय उपमहाद्वीप में पशुओं को पालने और वनस्पति कृषीकरण की प्रक्रिया के शुरुआत पर संक्षेप में विचार करेंगे।

तालिका-1

क्षेत्र	युग	खेती
नील घाटी	लगभग 12,500 बी.सी.ई.	गेहूं और जौ
पश्चिम एशिया	लगभग 8500 बी.सी.ई.से आगे	- वही -
बलूचिस्तान	लगभग 6000 बी.सी.ई.से आगे	- वही -
उत्तर प्रदेश में बेलान घाटी	लगभग 5440-4530 बी.सी.ई.	चावल
दक्षिण भारत	लगभग 2500-1500 बी.सी.ई.	रागी

4.5 सबसे प्राचीन किसान

अभी हाल तक ऐसा समझा जाता था कि वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने के कार्य की शुरुआत पश्चिम एशिया में हुई और वहां से यह विसरण के द्वारा संसार के विभिन्न अन्य क्षेत्रों में फैला। लेकिन अब मिस्र में नील घाटी तथा अन्य क्षेत्रों के हाल ही में प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर, इन दृष्टिकोणों में संशोधन करना आवश्यक है।

4.5.1 नील घाटी

गेहूं और जौ की सबसे पहली खेती के बारे में जो नया साक्ष्य प्रकाश में आया है वह निम्नलिखित स्थानों पर उत्खननों से प्राप्त हुआ है:

- वाडी कुब्बानिया (दक्षिण मिस्र में आसवान के उत्तर में थोड़ी दूरी पर स्थित),
- बाडी टस्का (आबू सिम्बेल के पास जो अब जलमग्न है),
- कोम अम्बो (आसवान के उत्तर से कुब्बानिया स्थलों से लगभग 60 किलोमीटर दूर), और
- एसना के पास का स्थल-समूह।

इस साक्ष्य के विषय में बात यह है कि ये सभी नील घाटी में स्थित उत्तर पुरापाषाण स्थल हैं, न कि नवपाषाण स्थल।

पुरातत्वविदों ने इन स्थलों का काल-निर्धारण आज से 14500-13000 वर्षों के बीच किया है।

नील घाटी से प्राप्त साक्ष्यों से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं:

- चूंकि मिस्र के स्थलों में पशुओं को पालतू बनाए जाने के कोई प्रमाण नहीं मिलते अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस क्षेत्र में अनाजों की खेती पशुओं को पालने से पहले आरम्भ हुई। इस प्रकार वनस्पति कृषिकरण और पशुओं के पालने के कार्य आवश्यक रूप से अन्त सम्बद्ध नहीं हैं।
- चूंकि अनाजों की खेती परवर्ती पुरापाषाण औज़ार से सम्बद्ध है: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ मामलों में अनाज उत्पादन उस नवपाषाण संस्कृति से पहले हुआ जिससे घर्षित पत्थर के औज़ार सम्बद्ध हैं।
- अनाजों की खेती से नवपाषाण क्रान्ति को बल मिला और यह खेती इस क्रान्ति से पहले हुई।

- चूंकि कुब्बनिया स्थल जंगली गेहूं और जंगली जौ, दोनों के विदित क्षेत्र से बाहर स्थित हैं, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं है कि अन्न उत्पादन उन्हीं क्षेत्रों से शुरू हुआ जहां पेड़-पौधे अपने जंगली रूप में विद्यमान थे।
- जैसा पहले विश्वास किया जाता था कृषिकरण पश्चिम एशिया से शुरू नहीं हुआ।

4.5.2 पश्चिम एशिया के प्रारम्भिक किसान

आइए, पश्चिम एशिया में विकास की प्रक्रिया पर विचार करें। इस क्षेत्र में फिलीस्तीन, सीरिया, तुर्की, इराक, कैस्पियन द्रोणी और ईरान के आसपास के क्षेत्र आते हैं। ये वे आधुनिक नगर हैं जहां पुरातत्वविदों ने सबसे प्रारंभिक खेती करने वाली ग्राम बस्तियों को पता लगाया है। अब यह भली-भांति विदित है कि फिलीस्तीन, सीरिया और तुर्की में खेती नवीं-आठवीं सहस्राब्दि बी.सी.ई. में शुरू हुई थी। यह महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र के शिकारियों-संग्राहकों ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना छोड़ दिया और एक स्थान पर टिककर जीवन बिताना आरम्भ किया। पहले उन्होंने यह काम वन्य साधनों के दोहन पर आश्रित रहते हुए कुछ स्थानों पर किया। मुरेबात, उत्तर सीरिया में यूफरेट्स पर आबू हरेयरा का उत्तर और उसी नदी पर दक्षिण तुर्की में सुबेरदे जैसे स्थलों में स्थायी बस्तियाँ शिकार करने और बटोरने पर ही पूरी तरह से फलफूल सकती थीं। खेती में संक्रमण एक धीमी प्रक्रिया थी परन्तु लगभग नवें सहस्राब्दि बी.सी.ई. से ऐसा साक्ष्य मिला है कि स्थायी समुदायों का खेती को अपने स्थायी जीवन के स्वरूप का अनिवार्य आधार बनाकर आविर्भाव हो रहा था। ऐसे अनेक स्थल हैं, जहां पश्चिम एशिया में किसानों के स्थायी समुदायों का पता चलता हैः

i) लगभग 8500-7500 बी.सी.ई.के बीच फिलीस्तीन में जरीको एक बड़ा गांव बन गया था जहां कृषि के साक्ष्य तो मिले हैं परन्तु पशुओं को पालने के कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं (यह कार्य बाद में हुआ)। उत्खनन के दौरान उत्तर स्तरों में यह पाया गया कि ज़ेरीको के चारो ओर दो मीटर चौड़ी पत्थर की दीवार थी और गोल मीनारें थीं। संसार में किलेबंदी का यह एक सबसे प्रारंभिक उदाहरण है।

ii) दक्षिण तुर्की में हुयुक एक बड़ा गांव था। यहां गेहूं, जौ और मटर की खेती होती थी। मवेशी, भेड़, बकरी जैसे जानवरों को घर में पाला जाता था। कच्चे मकान जिनमें छत से होकर प्रवेश करना होता था दो कमरों के होते थे और मकानों की दीवार मिली होती थीं। घरों की दीवारों पर तेंदुआ, फूटते हुए ज्वालामुखी और बिना सिर के मानव शवों को निगलते हुए गिद्धों के चित्र बने हुए मिले हैं। इस स्थान पर भौतिक संस्कृति के साक्ष्य मृदभांडों, पत्थर की कुल्हाड़ियों, पत्थर के आभूषणों, हड्डियों के औज़ारों, लकड़ी के कटोरों और करंडशिल्प के रूप में मिले हैं।

iii) इराक में जारमों में स्थायी रूप से बसे कृषि गांवो (लगभग 6500-5800 बी.सी.ई.) के भी साक्ष्य मिले हैं। इनमें लगभग 20 से 30 तक कच्चे मकान होते थे। प्रत्येक में एक आंगन और कई कमरे होते थे और वहां घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियां, चक्कियां, मृदभांड आदि भी होते थे। लोग गेहूं और जौ उगाते थे तथा भेड़-बकरी पालते थे।

iv) ईरान में खेती खजिस्तान के क्षेत्र में आठवें सहस्राब्दि बी.सी.ई. के दौरान शुरू हुई। लगभग उसी समय जब फिलीस्तीन और अनातोलिया में शुरू हुई। दक्षिण ईरान में (लगभग 7,500 बी.सी.ई. से) अली कोश में हमें ऐसे लोगों के एक जाड़े के मौसम के शिविर के साक्ष्य मिले हैं/जो लोग गेहूं और जौ की खेती करते थे और जो भेड़ भी पालते थे। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में पशु-पालन और खेती अंर्तसंबंधित थे।

पश्चिम एशिया में फसल उगाना और पशुओं को पालना का कुछ स्थलों पर अंर्तसंबंधित है जबकि कुछ क्षेत्रों में कृषि कार्य पशुओं को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

बोध प्रश्न 3

1) संस्कृति के नवपाषाण चरण की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

2) नील घाटी में उत्खननों से प्रारम्भिक कृषि के सम्बन्ध में जो मुख्य प्रश्न उठे हैं उन पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

3) रिक्त स्थानों को भरिएः

i) गार्डन चाइल्ड के अनुसार नवपाषाण संस्कृति एक .... (आश्रित/आत्मनिर्भर) अन्न उत्पादक अर्थव्यवस्था थी।

ii) .... (घर्षित पत्थर/तांबे) के औज़ार नवपाषाण संस्कृति के अनिवार्य लक्षण रहे हैं।

iii) ज़ेरीको ऐसा सबसे प्राचीन ज्ञात गांव है जिसमें .... (पानी का तालाब/मिट्टी की किलेबंदी) थी।

iv) कताल हुयुक .... (तुर्की/ईरान) में एक .... (बड़ा/छोटा) गांव था।

4.6 भारतीय उपमहाद्वीप के प्राचीन किसान

इस महाद्वीप में कृषिकरण और पशुओं को पालने का इतिहास वस्तुतः नवपाषाण संस्कृतियों के उदय से प्रारम्भ होता है। घर्षित पत्थर की कुल्हाड़ियों को छोड़कर इस उपमहाद्वीप की नवपाषाण संस्कृतियां तालिका-2 में उल्लिखित भौगोलिक क्षेत्रों में वर्गीकृत की जा सकती हैं।

तालिका-2 भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र – (अफ़ग़ानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान, विशेष तौर पर बलूचिस्तान में कच्ची मैदान मिलाकर)

उत्तर क्षेत्र – (इसमें कश्मीर घाटी आती है)

दक्षिण-पूर्वी उत्तर प्रदेश – (इसमें इलाहाबाद, मिर्जापुर, रीवा और सिंघी जिलों में विंध्य दृश्यांश – खास तौर पर बेलान घाटी आती है)

मध्य पूर्वी क्षेत्र – (उत्तरी बिहार)

पूर्वोत्तर क्षेत्र – (इसमें असम और निकटवर्ती उप-हिमालय क्षेत्र आते हैं)

मध्य पूर्वी क्षेत्र – (इसमें छोटा नागपुर का पठार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में विस्तार सहित आते हैं)

दक्षिणी क्षेत्र – (इसमें प्रायद्वीपीय भारत आता है)

इन क्षेत्रों में नवपाषाण कालीन संस्कृतियों की विशेषताओं पर हम अलग-अलग विचार करेंगे।

4.6.1 उत्तर पश्चिमी क्षेत्र

इसी क्षेत्र (आज का अफगानिस्तान और पाकिस्तान) में हमें गेहूं और जौ की खेती की शुरुआत के सबसे पहले साक्ष्य मिले हैं। उत्तरी अफगानिस्तान में पुरावत्वविदों ने ऐसी गुफाएं खोजी हैं जहां शिकारी और संग्रहकर्ता रहते थे। इन गुफाओं में जंगली भेड़ों, मवेशियों और बकरियों की हड्डियों के अवशेष मिले हैं। 7000 बी.सी.ई. के आसपास अफ़गानिस्तान में भेड़ और बकरियां पाली जाती थीं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मध्य एशियाई क्षेत्र और इसकी परिधियां – जिसमें आज का पंजाब, कश्मीर, पश्चिमी पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान और तजाकिस्तान और उज़्बेकिस्तान और पश्चिमी त्यान शान शामिल हैं – ब्रेड गेहूं और स्पेल्ट गेहूं की खेती के मूल स्थान थे।

पाकिस्तान और बलूचिस्तान में कृषि और पशुओं को पालने की शुरुआत के सम्बन्ध में पुरातात्विक उत्खननों में साक्ष्य मिले हैं। बलूचिस्तान में कच्ची के मैदानों को ऐसे अनेक लाभ प्राप्त थे और ऐसी अनेक सुविधाएं प्राप्त थीं जिससे उस क्षेत्र में प्रारंभिक कृषि अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। भीतरी बलूचिस्तान की बंजर श्रेणियों के मध्य छोटी घाटियों में पहाड़ियों से आती नदियों द्वारा तथा बारहमासी नदी व्यवस्थाओं द्वारा लाई गई उपजाऊ जलोड़क से उन भूमि खंडों पर सिंचाई करना आसान हो गया था जहां उस समय वनस्पति उगती थी।

मेहरगढ़ का स्थल इसी पारिस्थितिक परिवेश में है। यह क्वेटा से लगभग 150 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस स्थल पर उत्खननों से पता चलता है कि इस क्षेत्र का पूर्व मृदभांड उत्तर नवपाषाणकाल से समुद्र हड़प्पा-काल तक एक लम्बा सांस्कृतिक इतिहास रहा है। मेहरगढ़ में नवपाषाण स्तर दो चरणों में वर्गीकरण किए गए हैं – i) प्रारंभिक अमृदभांड (मृदभांड रहित) और ii) उत्तरवर्ती चरण। जिन अनाजों की यहां खेती की जाती थी उनमें जौ की दो किस्में और गेहूं की तीन किस्म शामिल थीं। अलूचा और खजूर के जले हुए बीज भी इन बस्तियों से ही प्राप्त हुये थे।

उत्खननों के दौरान नवपाषाण-काल (काल-1) के प्रारंभिक स्तरों में चिकारा, अनूप मृग, कुरंग जैसे जंगली जानवरों और भेड़-बकरी और मवेशियों की हड्डियों मिली हैं। लेकिन शीर्ष स्तर में (नवपाषाण निक्षेपों का उत्तरवर्ती चरण) में पालतू मवेशियों भेड़, बकरियों की हड्डियों मिली हैं। साथ ही जंगली चिकारा, सूअर और गोरखर की हड्डियां भी मिली हैं। अतः इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि भेड़-बकरियां स्थानीय रूप से पाली जाती थीं। यहां पूर्व मृदभांड बस्ती की शुरुआत लगभग 6000 बी.सी.ई. निर्धारित की गई है।

नवपाषाणकाल में जीविका के स्वरूप की विशेषता है प्रारंभिक कृषि और पशुओं के पालने तथा साथ ही शिकार पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था। यहां के निवासी कच्ची ईंटों के आयताकार मकानों में रहते थे। कुछ संरचनाओं को छोटे वर्गाकार भागों में विभक्त कर दिया गया था। और उन्हें भंडारण के लिए उपयोग में लाया जाता था। औज़ारों की किट में एक पत्थर की कुल्हाड़ी, पांच पत्थर के बसूले, पच्चीस घर्षण पत्थर और सोलह लोढ़ शामिल होते थे। इनमें विशिष्ट फलक उद्योग के सूक्ष्म पाषाण औज़ार भी प्रचुर मात्रा में होते थे। कुछ फलकों पर चमक भी है जो कण काटने के लिए उपयोग में चकमक की विशेषता है।

मेहरगढ़ से प्राप्त साक्ष्य के आधार पर लगता है कि शायद कच्ची के मैदान मवेशी और भेड़ पालने के तथा गेहूं और जौ खेती के स्वतंत्र अधिकेन्द्र (मूल केन्द्र) थे। मेहरगढ़ में काल-II ताम्रपाषाण चरण (लगभग 5000 बी.सी.ई.) का सूचक है जिसमें गेहूं और जौ की खेती के साथ-साथ कपास और अंगूर की खेती के भी साक्ष्य मिले हैं। सम्भवतः हड़प्पा निवासियों ने

गेहूं, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारंभिक पूर्वजों से प्राप्त किया होगा। (हड़प्पा निवासियों के लिए अगली इकाई देखें)। अतः मेहरगढ़ से प्राप्त इस साक्ष्य के कारण इस सिद्धान्त को संशोधित करना पड़ेगा कि कृषि और पशुओं को पालने का कार्य भारतीय उपमहाद्वीप की ओर पश्चिम एशिया से फैला।

नवपाषाण काल के घर (मेहरगढ़)। स्रोतः- ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-4।

4.6.2 कश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति

कश्मीर घाटी में ग्राम बस्तियों का लगभग 2500 बी.सी.ई. में आविर्भाव हुआ। बुर्जहोम और गुफ़कराल में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। इस क्षेत्र के नवपाषाण चरण को बुर्ज़होम में दो चरणों में और गुफ़कराल में तीन चरणों में वर्गीकृत किया गया है। उत्तरवर्ती स्थल पर सबसे प्रारंभिक अमृदभांड (पुरा मृद्भांड यानि सबसे पुराने मिट्टी के बर्तन) चरण है जो भारत में पहली बार खोजा गया है। कश्मीर घाटी की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है। गर्त आवास, अच्छी तरह बनाए गए और गेरू से रंगे फर्श और साथ ही खुले में भी आवास और बड़ी मात्रा में प्राप्त हड्डी के अद्वितीय औज़ारों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह अर्थव्यवस्था प्रधानतः आखेट अर्थव्यवस्था थी।

गुफ़कराल में चरण-I में फलियों मसूर, अरहर, गेहूं और जौं के जले हुए अन्न कण प्राप्त हुए हैं और साथ ही मवेशियों, भेड़-बकरियों, साकिन, लाल मृग और भेड़िया जैसे पशुओं की हड्डियां भी मिली हैं। चरण-II और चरण-III की विशेषता है कि उनमें वनस्पति कृषीकरण और पाले गए जानवरों के साक्ष्य मिले हैं। उत्तरवर्ती चरणों से जो अन्य उल्लेखनीय वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनमें लम्बी आदिम कुल्हाड़ियां, प्रस्तर नोकें, परिष्कृत हड्डी के औज़ार (मत्स्य भाले, वाणाग्र आदि) और छिद्रित हार्वेस्टर शामिल हैं। मानव शवाधानों के बीच कुत्तों के शवाधान भी मिले हैं। इनसे पता चलता है कि चरण- I की अनिवार्य आखेट-संग्राहक अर्थव्यवस्था का किस प्रकार धीरे-धीरे चरण – II में सुस्थापित कृषि अर्थव्यवस्था में विकास हो गया।

यहां यह उल्लेखनीय है कि बुर्जहोम की नवपाषाण संस्कृति का मृदभांड, हड्डी और पत्थर की वस्तुओं में स्वात घाटी के सराय खोला और घाली गई के साथ सादृश्य प्रकट होता है। गर्त आवास, हार्वेस्टर और कुत्तों के शवाधान उत्तर चीनी नवपाषाण संस्कृति की विशेषताएं हैं। बुर्जहोम में प्राप्त मृदभांडों से संकेत मिलता है कि इनका पूर्व हड़प्पा निवासियों से भी सम्पर्क था।

दो स्थलों से उपलब्ध सी-14 तिथि-निर्धारणों से संकेत मिलता है कि कश्मीर घाटी में नवपाषाण संस्कृति की समय अवधि लगभग 2500-1500 बी.सी.ई. थी।

4.6.3 बेलान घाटी के प्राचीन किसान

बेलान नदी पूर्व से पश्चिम की ओर विंध्य पठार दृश्यांश के किनारे के साथ-साथ बहती है। यह टोस नदी की उप-नदी है जो प्रयागराज के पास गंगा में मिलती है। यह क्षेत्र मानसून मेलखा का एक भाग है। सारे क्षेत्र में सागौन (टीक), बांस और ढाक के घने जंगल हैं। ये जंगल, बाघ, नीलगाय, चीतल आदि जैसे वन्य पशुओं के प्राकृतिक आवास हैं तथा यहां घनी घास, जंगली चावल सहित उगी हुई है। अनुपुरापाषाण-काल तक से यह स्थान प्रारंभिक पाषाण युग के लोगों का प्रिय आखेट स्थल रहा है। बेलान घाटी के सम्बद्ध उत्खनन स्थल, जिनसे अन्न संग्रह चरण से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण के संकेत मिलते हैं वो चौपानी-मांडो, कोल्डीरोवा और महागरा है।

पुरातत्वविदों ने चौपानी-मांडों में अनुपुरापाषाण काल से उत्तरवर्ती मध्य पाषाण युग अथवा खाद्य नवपाषाण युग तक का तीन चरणों का अनुक्रम सिद्ध किया है। चरण-I (उन्नत मध्यपाषाण युग) की विशेषताएँ हैं कि अर्द्ध स्थानबद्ध सामुदायिक जीवन तथा विशिष्ट आखेट-संग्रह अर्थव्यवस्था। यहां मधुमक्खी के छत्ते जैसे झोपड़ियां, साझा चूल्हे, असुबाहय निहाई, ज्यामितीय आकार के सूक्ष्म पाषाण, बड़ी संख्या में वलय-पत्थर और हाथ से बने सुन्दर मिट्टी के बर्तन मिले थे। आकार और प्रकार में अनेक तरह की चक्कियां और लोढ़े इस बात के परिचायक हैं कि उस समय अधिक ज़ोर अन्न संग्रह पर दिया जाता था। इस चरण में जंगली चावल और जंगली मवेशियों, भेड़ और बकरियों की हड्डियों के महत्वपूर्ण प्रमाण भी मिले हैं।

एकल संस्कृति स्थल ऐसा पुरातात्विक स्थल है जहां नवपाषाण या ताम्रपाषाण जैसे संस्कृति के एकल चरण में ही बस्ती थी। यदि एक स्थल से उत्खनन के बाद पता चलता है कि इसमें नवपाषाण, ताम्रपाषाण अथवा लोहे के प्रयोग के चरणों में बस्ती थी तो इसे बहु-संस्कृति स्थल कहा जाएगा और नवपाषाण चरण को प्रथम काल, ताम्रपाषाण चरण को द्वितीय काल तथा लोहे के प्रयोग के चरण को तृतीय काल कहा जाएगा। इन कालों से उस स्थल की संस्कृतियों का काल अनुक्रम प्रदर्शित होगा।

कोल्डीहवा में उत्खननों से त्रिविधि सांस्कृतिक अनुक्रम (नवपाषाण, ताम्रपाषाण और लौह युग) का पता चलता है। महागरा एकल संस्कृति (नवपाषाण) स्थल है। इन दोनों स्थलों से प्राप्त संयुक्त साक्ष्य से स्थानबद्ध जीवन, चावल (**ऑरीज़ा सेटीवा**) उगाने और मवेशी तथा भेड़-बकरी पालने के संकेत मिले हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन पर प्रकाश डालने वाली अन्य वस्तुएं हैं :

- रज्जु-चिन्हित मृदभांड,
- गोल आदिम कुल्हाड़ियां और बसूले, आयताकार अथवा अंडाकार अनुप्रस्थ काट तथा केल्सेडोनी फलकों सहित,
- वृत्ताकार/अंडाकार फर्श- हस्तकृतियों सहित,
- बड़ा मवेशी बाड़ा – मवेशियों के खुरों के निशान सहित भी महागरा स्थलों से मिले हैं।

बेलान घाटी की नवपाषाण संस्कृति से विकसित और उन्नत स्थानबद्ध जीवन का निम्नलिखित के साथ पता चलता है:

- निश्चित परिवार इकाइयाँ,
- मृद्भांड के रूपों का मानकीकरण,
- चक्कियों और लोढ़ों जैसी खाद्य संसाधन इकाइयों का सुबाहय आकार,
- छैनी, कुल्हाड़ियों और बसूलों जैसे विशिष्ट औज़ार,
- कृषीकृत चावल की खेती,
- मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े पालना।

यह सुझाया गया है कि बेलान घाटी के नवपाषाण कालीन किसानों का भारत (लगभग छठी सहस्राब्दि बी.सी.ई.) में सबसे प्रारंभिक चावल उगाने वाले समुदाय के रूप में उदय हुआ, यद्यपि यह सुझाव सभी मान्य नहीं है। संग्रहण अर्थव्यवस्था से कृषि अर्थव्यवस्था में संक्रमण के भी इस क्षेत्र में स्पष्ट साक्ष्य मिलते हैं। फिर भी, मृद्भांड चोपानी-मांडो में (लगभग नवीं-आठवीं सहस्राब्दि बी.सी.ई.) उत्तरवर्ती मध्य पाषाण/आद्य नवपाण चरण में दिखाई दिए हैं। यह इस बात का सूचक है कि मृदभांड बनाने का काम कृषिकरण (चावल) और पशु (मवेशी, भेड़/बकरी और घोड़े) पालने के कार्य से पहले शुरू हो गया था।

चोपानी मांडो में संसार में मृद्भांड के इस्तेमाल के सबसे प्राचीन साक्ष्य मिले हैं।

4.6.4 बिहार/मध्य गंगा घाटी की नवपाषाण संस्कृति

सभी वनस्पति तथा जीव-जन्तु साधनों से सम्पन्न निचली मध्य गंगा घाटी में बहुत बाद में (लगभग 2000-1600 बी.सी.ई.) ग्रामीण बस्तियां बसीं। चिरांद, चेचर, सेनुआर और तारादिब आदि में हुए उत्खननों से इस क्षेत्र के नवपाषाण कालीन लोगों के जीवन स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सेनुआर (जिला रोहताश) में नवपाषाण कालीन किसान चावल, जौ, मटर, मसूर और कुछ मोटे अनाजों की खेती करते थे। इस स्थल से गेहूं और घास मटर की अनेक किस्में बस्ती के उच्च स्तरों से प्राप्त हुई हैं। चिरांद (ज़िला सारन), जो गंगा के उत्तरी तट पर स्थित है, में कच्चे फर्शों, मृद्भांडों, सूक्ष्म पाषाणों, घर्षित कुल्हाड़ियों, हड्डी के औज़ारों, उपरत्नों के मनकों और पकी मिट्टी (टेराकोटा) की मानव मूर्तियों के संरचनात्मक अवशेष मिले हैं। चिरांद और सेनुआर दोनों अपने उल्लेखनीय हड्डी के औज़ारों के लिए प्रसिद्ध हैं। चिरांद में जो अनाज उगाए जाते थे वे थे गेहूं, जौ, चावल और मसूर।

सेनुआर में उत्तरवर्ती नवपाषाण-ताम्रपाषाण कालीन लोगों के अपने से पहले के लोगों द्वारा उगाई जाने वाली फसलों के अलावा चने और मूंग की खेती भी शुरू कर दी थी।

4.6.5 पूर्वी भारत के प्रारम्भिक किसान

इस क्षेत्र में उत्तरी कछार को मिलाकर असम की पहाड़ियां और गारो तथा नागा पहाड़ियां आती हैं। पारिस्थितिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत वर्षा वाले मानसून क्षेत्र में आता है।

इस क्षेत्र की नवपाषाण संस्कृति की विशेषता है स्कंधयुक्त कुल्हाड़ियां, गोलाकार छोटे घर्षित कुल्हाड़े, रज्जु चिन्हित मृद्भांड जिनपर बहुत अधिक स्फटिक कण चिपकाए गए होते थे। उत्तरी कछार पहाड़ियों में देवजाली हाडिंग में किए गए उत्खननों से ऊपर बताई गई सभी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। ये वस्तुएं इन प्रकारों की हैं जो चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में व्यापक रूप से पाए जाते हैं। फिर भी, असम के नवपाषाण विशेषकों का चीन अथवा दक्षिण पूर्व एशिया से सादृश्य अन्तिम रूप से निश्चित नहीं हो सका है क्योंकि इनमें बहुत अधिक कालनुक्रमिक अंतर है। असम के नवपाषाण संस्कृति चरण का तिथि निर्धारण अस्थायी रूप से 2000 बी.सी.ई. के आसपास किया गया है।

आसाम की गारो पहाड़ियों से प्राप्त पत्थर की कुल्हाड़ियाँ। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-1, इकाई-4।

4.6.6 दक्षिण भारत के प्रारम्भिक किसान

दक्षिण भारत में उन्नत आखेट अर्थव्यवस्था चरण से खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था चरण में संक्रमण की समस्या अभी तक स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं की जा सकी है। नवपाषाण कालीन बस्तियां पहाड़ी और शुष्क दक्खन पठार पर पाई गई है जहां से भीमा, कृष्णा, तुंगभद्रा और कावेरी नदियों को जल प्राप्त होता है। यह बस्तियां खास तौर पर उन क्षेत्रों में फली-फूलीं जहां सामान्य वर्षा प्रति वर्ष 25 सेंटीमीटर से कम होती है। दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले उत्खनित स्थल हैंः सनगनकल्लू, नागार्जुन कोंडा, मस्की, बुधगिरि, टेक्कालकोटा, पिकलीहाल, कुपगल, हल्लूर, पलवाय, हेमीजे और टी. नरसीपुर।

पुरातत्वविदों ने दक्षिण भारतीय नवपाषाण संस्कृति को तीन चरणों में वर्गीकृत किया है। सबसे प्रारंभिक चरण के साक्ष्य सनगनकल्लू और नागार्जुन कोंडा में मिलते हैं। नागार्जुन कोंडा में प्राप्त आवासों के धुंधले चिन्ह, लेपित बाहरी सतहों वाले अपरिष्कृत हस्त-निर्मित पीले रक्ताभ भूरे मृद्भांड, चकमक के फलक औज़ार और घर्षित पत्थर के औज़ारों से प्रदर्शित होता है कि लोगों को खेती का केवल अल्प-विकसित ज्ञान था। संभवतः वे जानवर नहीं पालते थे। इस चरण का तिथि निर्धारण लगभग 2500 बी.सी.ई. अथवा इससे पहले किया जा सकता है।

चरण- II में चरण-I के लक्षण तो जारी रहे ही, मृद्भांड मुख्यतः लाल भांड बनावट के थे। तथापि, मणिकारी कला और पशु पालना नए लक्षण हैं। अब सूक्ष्म पत्थर स्फटिक क्रिस्टलों के बनने लगे थे।

चरण- III में (तिथि निर्धारण 1500 बी.सी.ई. के आसपास) धूसर भांड प्रमुख हैं। चरण- II के लाल भांड और लघु फलक उद्योग इस चरण में भी जारी रहे। विभिन्न प्रकारों के नवपाषाण औज़ार भी इस चरण में पाए जाते हैं। ये इस बात का संकेत देते हैं कि खेती का काम अधिक किया जा रहा था और भोजन संग्रह तथा आखेट की अब गौण भूमिका रह गई थी।

बाद के दोनों चरणों की विशेषता नागार्जुन कोंडा में आवास गतों से लक्षित होती है जिनकी छतों को संभालने के लिए लकड़ी के लट्ठों का इस्तेमाल किया गया था। अन्य स्थलों पर नरकुल और मिट्टी के मकानों के अवशेष भी मिले हैं।

दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा उगाई गई सबसे पहली फसलों में मिलेट (रागी) की फसल थी। इसकी खेती आज भी होती है और गरीब लोगों के भोजन का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह मवेशियों के लिए चारे के रूप में भी इस्तेमाल की जाती है। सामान्यतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि कृषीकृत रागी पूर्व अफ्रीका से आई। जंगली रागी, जो कृषीकृत रागी के साथ-साथ खरपतवार के रूप में उग जाती थी, कृषीकृत रागी की पूर्वज नहीं थी। लेकिन जंगली रागी पूर्वज परम्परा से अफ्रीकी किस्म से सम्बद्ध थी। दक्षिण भारत के नवपाषाण कालीन किसानों द्वारा जिन फसलों की खेती की जाती थी वे थीं- गेहूं, कुलथी, और मूंग। खजूर भी उगाई जाती थी। लगता है कि इस काल के दौरान सौपान-कृषि खेती की एक महत्वपूर्ण विशेषतास रही होगी। इसका उपयोग फसलें उगाने के लिए छोटे-छोटे खेत बनाने के लिए किया जाता था।

उत्खननों से प्राप्त पशुओं की हड्डियों के स्वरूप यह संकेत देते हैं कि पशुओं का उपयोग भार वहन करने के लिए अथवा भारी सामग्री खींचने के लिए तथा खेतों में हल चलाने के लिए किया जाता था। नागार्जुन कोंडा में किए गए उत्खननों से स्पष्ट है कि वनस्पति कृषीकरण पशुओं को पालने से पहले ही शुरू हो गया था। इन स्थलों से मवेशी, भेड़ और बकरी, भैंस, गधा, मुर्गी, सूअर और घोड़े जैसे पाले गए पशुओं की भी सूचना मिली है। सांभर मृग, बारहसिंगा, चित्तीदार मृग और चिकारा का शिकार किया जाता था तथा घोंघा और कछुए भोजन के लिए पकड़े जाते थे।

प्रचुर मात्रा में मवेशी और अन्य प्रकार की खाद्य वस्तुओं से संकेत मिलता है कि नवपाषाण कालीन लोगों की स्थाना बद्ध कृषि तथा पशुचरण अर्थव्यवस्था थी। सी-14 तिथि निर्धारणों के आधार पर दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति का तिथि निर्धारण लगभग 2600 और 1000 बी.सी.ई. के बीच किया गया है।

उत्नूर, कोडेकाल और कुपगल जैसे नवपाषाण स्थलों के पास अनेक राख के टीले मिले हैं। इनमें से कुछ बस्तियों से दूर जंगलों में भी मिले हैं। सुझाया गया है कि यह राख के टीले नवपाषाण कालीन मवेशी बाड़ों के स्थल थे। समय-समय पर इकट्ठा हो गया गोबर या तो किसी संस्कार के रूप में अथवा दुर्घटनावश जलता रहा। अपेक्षाकृत अधिक दूरस्थ स्थानों पर पाए गए राख के ढेर इस बात का संकेत देते हैं कि लोग कुछ खास मौसमों में जंगलों के पशु-चारण स्थानों पर चले जाया करते थे।

4.6.7 ऊपरी मध्य और पश्चिमी दक्कन की नवपाषाण संस्कृति

कृष्णा और गोदावरी तथा उनकी सहायक नदियों के मध्य और ऊपरी विस्तारों में चित्र कुछ और ही है। इन क्षेत्रों में काले पाश पर बनाए गए घर्षित पत्थर के औज़ारों के अलावा बड़ी संख्या में समांतर पक्षीय फलक तथा गोमदे, केल्सेडोनी और इंद्र गोप मणि (सभी उपरत्न) के सूक्ष्म पाषाण धूसर भांडों और ताम्रपाषाण प्रकार के चित्रित मृद्भांडों के साथ मिले हैं। इस क्षेत्र से नवपाषाण चरण के कोई स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। लेकिन कृष्णा नदी की सहायक नदी भीमा पर चंदोली से प्राप्त साक्ष्य और गोदावरी की सहायक नदी प्रवरा पर नेवासा और दाइमाबाद स्थलों से प्राप्त साक्ष्य इस बात का संकेत देते हैं कि इस क्षेत्र में नवपाषाण किसान ताम्रपाषाण चरण में प्रवेश कर गए थे।

उत्तर महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और गुजरात की ताप्ती और नर्मदा घाटियों के उत्तर में और आगे नवपाषाण चरण के स्पष्ट अवशेष नहीं मिले हैं। केवल बीना घाटी में ऐरान स्थल पर और दक्षिण गुजरात में जोखा स्थल पर पाई गई दक्षिण भारत सादृश्य की नुकीले कुंदा सिरों वाली त्रिभुजाकार कुछ कुल्हाड़ियां ही इस क्षेत्र में नवपाषाण कालीन अवशेष है।

चम्बल, बनास और काली सिंध घाटियों में घर्षित पत्थर के औज़ारों की विद्यमानता का शायद

ही कोई प्रमाण हो। इस तथ्य के बावजूद कि प्रारंभिक मध्य पाषाण संदर्भ में पशु पालने का काम शुरू हो गया था, स्थानबद्ध बस्तियां इस क्षेत्र मे केवल तभी शुरू हुई जब ताम्र कांस्य उपकरण ज्ञात हुए।

बोध प्रश्न 4

1) उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति की मुख्य विशेषता पर चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है या गलत? (✓) या (✕) का चिह्न लगाइए।

   i) यह कहा जा सकता है कि हड़प्पा निवासियों ने गेहूं, जौ और कपास की खेती का ज्ञान मेहरगढ़ के प्रारम्भिक निवासियों से प्राप्त किया था। ( )

   ii) गुफराल में कृषीकृत वनस्पति और पालतू जानवरों के कोई साक्ष्य नहीं मिलते। ( )

   iii) बेलान घाटी स्थलों पर उत्खननों से हमें अन्न संग्रह से अन्न उत्पादन चरण में संक्रमण का स्वरूप निर्धारित करने में सहायता प्राप्त हुई है। ( )

   iv) एकल संस्कृति स्थल का अर्थ है एक सांस्कृतिक स्थल में विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन। ( )

   v) दक्षिण भारत में सबसे पहले जो फसल उगाई गई थी वह थी मिलेट (रागी)। ( )

   vi) कछार पहाड़ियों में हुए उत्खननों से नवपाषाण संस्कृति के कोई अवशेष नहीं मिले हैं। ( )

3) मृद्भांड, घर्षित पत्थर के औज़ार और कच्चे मकानों के अवशेष मानव समाज के विकास के सम्बन्ध में क्या संकेत देते हैं?

....

....

....

....

....

4.7 सारांश

शिकारी/संग्रहकर्ता प्रागैतिहासिक समुदायों का अध्ययन पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित है। इस अध्ययन में मानवशास्त्रीय सिद्धांत सहायता प्रदान करते हैं। सामाजिक विकास के क्रम में पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग शिकारी/संग्रहकर्ता अवस्था का प्रतिनिधित्व करते

हैं। जलवायु में हुए परिवर्तन और पत्थर के औज़ारों की प्रकृति के आधार पर पुरापाषाण संस्कृति को तीन अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है। आरंभिक पुरापाषाण के औज़ार हाथ की कुल्हाड़ियां, चीरने और काटने के औज़ार हैं। मध्य पुरापाषाण युग के मुख्य औज़ार परत हैं। उच्च पुरापाषाण संस्कृति के मुख्य औज़ार तक्षणी और खुरचनी हैं। मध्य पाषाण युग लगभग 8000 बी.सी.ई. से शुरू होता है। इस युग में जलवायु में परिवर्तन हुए। इस दौरान सूक्ष्म औज़ार और छोटे पत्थर के औज़ार बनाने की दिशा में तकनीकी विकास भी हुए। मध्यपाषाण औज़ारों में ब्लेड, कोर, नुकीले औज़ार, त्रिकोणीय औज़ार और नवचंद्राकार औज़ार मुख्य हैं।

जीव जन्तुओं के अवशेषों से भी पुरापाषाण और मध्य पाषाण युग के लोगों के जीवन यापन के बारे में काफी जानकारी मिलती है। पुरापाषाण युग में लोग मुख्यतः शिकारी/संग्रहकर्ता थे। ये लोग बड़े और छोटे आकार के पशुओं जैसे हाथी, बैल, नीलगाय, हिरण, जंगली भालू और कई प्रकार के पक्षियों का शिकार करते थे। इसके अतिरिक्त ये फल, बीज आदि का भी आहार के रूप में प्रयोग करते थे। मध्य पाषाण युग में भी मनुष्य शिकारी/संग्रहकर्ता ही था। हालांकि कुछ नये जानवर जैसे जंगली बकरा, लोमड़ी आदि भी इस काल में पाए जाते थे। पुरापाषाण युग और मध्य पाषाण युग का शिकार प्रवृति में एक मूलभूत अन्तर है। पुरापाषाण युग में लोग बड़े जानवरों का शिकार करते थे जबकि मध्य पाषाण युग में छोटे जानवरों का भी शिकार किया जाने लगा और मछलियाँ मारी जाने लगीं। प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला उस युग के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालती है।

इस इकाई से आपको उस चरण के मूल लक्षणों की जानकारी भी प्राप्त हुई है जिसकी विशेषता है वनस्पति कृषीकरण और पशुओं को पालने में संक्रमण/आखेट/संग्रहण से खेती में संक्रमण से अनेक परिवर्तन आए। सामान्य शब्दों में, इनमें मृद्भांडों को बढ़िया बनाना, क्योंकि इन भांडों की अन्न संग्रह के लिए भी आवश्यकता थी और उनसे संसाधित भोजन खाने के लिए भी आवश्यकता थी, परिष्कृत औज़ार जो घर्षित थे और कृषि कार्यों के लिए कारगर थे, व्यवस्थित ग्राम समुदाय आदि शामिल थे।

आधुनिक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि सबसे पहले खेती का काम नील घाटी में शुरू हुआ और पश्चिम एशिया में यह कार्य बाद में हुए। कुछ क्षेत्रों में खेती और जानवरों को पालने का काम साथ-साथ हुआ, जबकि कुछ क्षेत्रों में खेती का काम जानवरों को पालने के कार्य से पहले शुरू हुआ।

इस इकाई में आप उन भौगोलिक क्षेत्रों से भी परिचत हुए हैं जिन क्षेत्रों में भारतीय उपमहाद्वीप में नवपाषाण कालीन संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इन क्षेत्रों में नवपाषाण संस्कृतियों का उदय भिन्न-भिन्न समयों में हुआ और उनकी अवधि भी अलग-अलग थी। उपमहाद्वीप के भीतर ही पारस्थितिक अन्तरों के कारण उगाई जाने वाली फसलें भी अलग-अलग थीं। पुरातत्वविदों ने विभिन्न प्राचीन स्थलों पर व्यापक उत्खननों से नवपाषाण संस्कृतियों के आविर्भाव और उनमें अन्तरों पर भी प्रकाश डाला है।

4.8 शब्दावली

एश्यूलियन (Acheulion) : यह एक प्रकार की हाथ की कुल्हाड़ी है। ये कुल्हाड़ियां आरंभिक हिम युग के दिनों की हैं, ये सबसे पहले फ्रांस में पायी गयी हैं।

शिल्प अवशेष : कोई ऐसी वस्तु जो मनुष्य द्वारा बनाई तथा उपयोग में लाई जाए। इसके अन्तर्गत अपरिष्कृत पत्थर से

लेकर आधुनिक तकनीक से बनी कोई भी वस्तु शामिल हो सकती है।

संकलन : विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का समुच्चय जिनका आपस में अंतसम्बंध हो। जब वह संकलन अनेक बार पाया जाता है और मानव गतिविधि का पूर्ण रूप से विवरण देता है तब उसे संस्कृति कहते हैं।

व्यासमापन : रेडियों कार्बन तिथि अंकन में इस शब्द का इस्तेमाल किया जाता है।

अवतल : अन्दर की तरफ धंसा हुआ बीच की परत किनारे की परत से पतली।

उत्तल : बाहर की तरफ उठा हुआ और बीच का भाग किनारे की अपेक्षा मोटा।

मानवजाति वर्णन : इसमें संस्कृतियों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

पारिस्थितिकी : पशु जीवन और पौधों के जीवन का अंतर्सम्बन्ध।

पुरालेखशास्त्र : इसमें शिलालेखों का अध्ययन किया जाता है।

वनस्पति : इस विज्ञान के अंतर्गत पौधों के जीवन का अध्ययन किया जाता है।

जीव-जंतु विज्ञान : इसमें पशुओं के जीवन का अध्ययन होता है।

भू-विज्ञान : इसमें पृथ्वी की बनावट, संरचना और इतिहास का अध्ययन होता है।

हिमाच्छादन : ठंडी जलवायु का काल जिसमें बर्फ की मात्रा अधिक थी। कई हिमाच्छादन मिलकर एक हिम-युग बनाते हैं।

स्तनधारी : ऐसे जानवर जो अपने बच्चों को स्तनपान कराते हैं।

मुद्राशास्त्र : इसमें मुद्रा का अध्ययन किया जाता है।

पराम विश्लेषण : इस तकनीक का उपयोग कालक्रम स्थापित करने के लिए किया जाता है। इसमें फूलों के पराम का विश्लेषण किया जाता है।

नर वानर : स्तनधारी जीव (मानव, बंदर, लंगूर आदि)।

आयत : समकोण चतुर्भुज।

सरल रेखीय : जिसमें सीधी रेखा हो।

रेडियो कार्बन : ऐसी विधि जिसके द्वारा 70,000 वर्ष तक पुरानी कार्बनिक वस्तु के काल का पता लगाया जा सकता है। पौधे और अन्य जीव अपने जीवन काल में वातावरण से कार्बन ग्रहण करते हैं। इसमें कार्बन 14

(14सी) भी रहता है जो रेडियोधर्मी तत्व है। पौधों और जीवों के मरने के बाद इस कार्बन की मात्रा कम होने लगती है। इस प्रकार कार्बन की मात्रा से अवशेषों की पुरातनता का पता चल जाता है।

अनुप्रस्थ : चौड़ाई के मुताबिक।

कगार : नदी के किनारों के आसपास की ज़मीन

शिकारी/संग्रहक : मानव विकास की वह अवस्था जब मनुष्य अपना भोजन शिकार करके अथवा जंगलों से कंद-मूल इकट्ठा करके प्राप्त करता था।

अनुपुरापाषाण काल : मानव द्वारा पत्थर के औज़ारों के प्रयोग का प्रारंभिक काल।

मृद्भांड : मिट्टी के बर्तन।

प्रारंभिक कृषि : मानव द्वारा जंगली पौधों का स्वयं कृषि द्वारा उत्पादन आरम्भ करना।

प्रारंभिक प्राचीन कृषक : वह मानव समूह जिन्होंने सबसे पहले कृषि करना शुरू किया।

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ग 2) घ 3) क 4) घ 5) घ

बोध प्रश्न 2

1) ग 2) घ 3) ग

4) इस प्रश्न का उतर देने की प्रक्रिया में आपको अपनी कल्पना का सहारा लेना होगा और आपको समझना होगा कि किस प्रकार दीवारों पर बने चित्र तत्कालीन जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। उदाहरणस्वरूप एक चित्र जिसमें कुछ लोग मिलकर जानवर का शिकार कर रहे हैं, इससे छोटे सामाजिक समुदायों की स्थापना के विषय में पता चलता है। इससे उनकी आहार प्रवृति और औज़ारों के प्रकार का भी पता लगाया जा सकता है।

बोध प्रश्न 3

1) आपके उत्तर में ये शामिल होने चाहिए:

   गेहूं, जौ आदि की खेती के माध्यम से आखेटक/संग्राहक से अन्न उत्पादन विधि में परिवर्तन, व्यवस्थित ग्राम जीवन, पत्थर के औज़ार बनाने में प्रगति, मृद्भांड की शुरुआत आदि। देखें उप-भाग 4.4.1।

2) ये थीं – वनस्पति कृषीकरण और जानवर पालने का काम आवश्यक तौर पर अंतः सम्बद्ध नहीं थे; अन्न उत्पादन का कार्य संभवतः नवपाषाण संस्कृति से पहले शुरू हो गया था, आदि। देखें उप-भाग 4.5.1।

3) i) आत्मनिर्भर, ii) घर्षित पत्थर, iii) कच्ची किलेबंदी,
iv) बड़ा, तुर्की

बोध प्रश्न 4

1) देखें उप-भाग 4.6.1।

2) i) ✓, ii) ×, iii) ✓, iv) ×, v) ✓, iv) ×

3) इसका उत्तर देने के लिए आपको अपनी कल्पना शक्ति का सहारा लेना होगा। ये सभी उस प्रक्रिया का संकेत करते हैं। जिसके दौरान मानव सरल समाजों से जटिल समाजों की ओर बढ़ रहा था; श्रम का विभाजन, प्रौद्योगिकी में विकास, आवश्यकता पर आधारित अन्वेषण आदि आपके उत्तर के लिए कुछ संकेत हैं।

4.10 संदर्भ ग्रंथ

ऑलचिन, ब्रिज्रेट तथा रेमण्ड (1988) *द राइज़ ऑफ सिविलाइज़ेशन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान* (इंडियन एडिशन), सेलेक्ट बुक सर्विस, नई दिल्ली।

मलिक, एस.सी. (1968) *इंडियन सिविलाइज़ेशन : द फॉरमेटिव पीरियड,* इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़, शिमला।

साहू, एच.पी. (1988) *फ्रॉम हंटर्स टू ब्रीडर्स,* अनामिका प्रकाशन, दिल्ली।

संकालिया, एच.डी. (1962) *प्रीहिस्टरी एण्ड प्रोटोहिस्टरी इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान,* यूनिवर्सिटी ऑफ बॉम्बे।

इकाई 5 हड़प्पा सभ्यता : कालानुक्रम, भौगोलिक विस्तार, ह्रास और विघटन*

इकाई की रूपरेखा

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-2 से ली गई है।

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- यह जान पाएँगे कि हड़प्पा की सभ्यता की खोज कैसे की गई?
- यह जान पाएँगे कि इसके कालक्रम का निर्धारण कैसे हुआ?
- यह समझ सकेंगे कि ग्रामीण समुदाय किस तरह धीरे-धीरे हड़प्पा की सभ्यता में परिवर्तित हुए?
- यह जान पाएँगे कि हड़प्पा की सभ्यता का भौगोलिक विस्तार किस प्रकार हुआ?
- हड़प्पा सभ्यता के ह्रास को समझ पाने में विद्वानों के समक्ष आई समस्याएँ;
- हड़प्पा के ह्रास के विषय में विद्वानों द्वारा दिये गये मत;
- विद्वानों ने अनेक वर्षों से हड़प्पा के ह्रास के कारण खोजना क्यों बंद कर दिया है? और
- अब विद्वान हड़प्पा-सभ्यता के काफी समय तक बने रहने के साक्ष्य खोज रहे हैं।

5.1 प्रस्तावना

पहले की इकाई में आपने पढ़ा कि किस प्रकार मानव समाज शिकारी संग्रहकर्त्ता से कृषि समाज की ओर अग्रसर हुआ। कृषि की शुरुआत के कारण ही मानव समाज में व्यापक परिवर्तन हुए। कृषि की शुरुआत का एक महत्वपूर्ण परिणाम था नगरों और सभ्यताओं का अभ्युदय। इस इकाई में आप एक ऐसी ही सभ्यता के उद्भव से परिचित होंगे, जिसे हड़प्पा की सभ्यता कहते हैं।

हम इस बात को भी जानेंगे कि हड़प्पा सभ्यता का उद्भव व विकास के क्या पहलू हैं। तथापि इसकी परिपक्वता के विभिन्न पहलुओं जैसे लेखन, नगर नियोजन आदि का प्राचीन भारत के बाद के चरणों में लुप्त हो जाना एक रहस्य ही है। हम इस इकाई में इस रहस्य को सुलझाने की दिशा में प्रस्तुत विभिन्न तर्कों की परीक्षा भी करेंगे।

5.2 एक प्राचीन शहर की खोज

1826 में चार्ल्स मोसन नामक एक अंग्रेज पश्चिमी पंजाब (जो अब पाकिस्तान में है) में हड़प्पा नामक गाँव में आया। उसने वहाँ बहुत पुरानी बस्ती के बुर्जों और अद्भुत ऊँची-ऊँची दीवारों को देखा। उसने यह समझा कि यह शहर सिकन्दर महान् के समय का है। सन् 1872 में प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सर अलक्जेंडर कनिंघम इस स्थान पर आया उसे आस-पास के क्षेत्रों के लोगों ने बताया कि हड़प्पा के ये ऊँचे-ऊँचे टीले हज़ार वर्ष पुराने शहर के अवशेष हैं। अपने राजा की दुष्टता के कारण यह शहर नष्ट हो गया था। कनिंघम ने इस स्थान से कुछ पुरातात्विक वस्तुएँ इकट्ठी कीं, लेकिन वह इन वस्तुओं का काल निर्धारण न कर सका। उसने सामान्य तौर पर यह माना कि संभवतः ये वस्तुएँ भारत के बाहर की हैं। इसलिए उसने गाँव के लोगों के इस मत से सहमति व्यक्त की कि यह शहर लगभग एक हज़ार वर्ष पुराना है। फिर भी 1924 में एक अन्य पुरातत्वविद जॉन मार्शल ने हड़प्पा के विषय में रिपोर्ट दी और एक लम्बे समय में विस्मृत सभ्यता के बारे में बताया। यह सभ्यता उतनी ही प्राचीन थी जितनी मिश्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताएँ। है न विचित्र बात?

आस-पास के क्षेत्रों के लोग इस शहर के अवशेषों के प्रति उदासीन थे। फिर एक पुरातत्ववेत्ता अंग्रेज आया और उसने हमें बताया कि यह लगभग पाँच हज़ार वर्ष पुराना है। इस संबंध में

सामान्य लोगों और विद्वानों के मत इतने भिन्न क्यों थे? किसी बस्ती के काल निर्धारण के लिए इन्होंने क्या तरीके अपनाए?

5.3 हड़प्पा की सभ्यता का युग

पुरातत्ववेत्ता यह पता लगाने के लिए कि ये बस्तियाँ कितनी पुरानी हैं, अलग-अलग तरीके अपनाते हैं। अब यह मार्शल के उस मत की जाँच करेंगे, जिसमें उन्होंने बताया है कि हड़प्पा की सभ्यता पाँच हज़ार वर्ष पुरानी है। कनिंघम इस सभ्यता को एक हज़ार वर्ष पुरानी मानते हैं। मार्शल ने पता लगाया कि हड़प्पा में मिलीं मुहरें, ठप्पे, लिखित लिपि और कलाकृतियाँ उनसे बिल्कुल भिन्न थीं जिनसे विद्वान पहले से परिचित थे और जो बहुत बाद के समय की थी। इसी प्रकार सिंध में मोहनजोदड़ो नामक स्थान से इसी प्रकार के तथ्य सामने आए हैं। मोहनजोदड़ो में प्राचीन बस्तियाँ कुषाण युग से संबंधित बौद्ध बिहार के नीचे दबी हुई पाई गईं। यह पाया गया है कि यदि प्राचीन काल में कोई मकान किसी कारणवश नष्ट हो जाता था तो लोग आमतौर पर उस मकान की ईंट और गारे को चबूतरा तैयार करने के लिए प्रयोग करते थे और उस पर दूसरा मकान बनाते थे। इसलिए यदि कोई पुरातत्ववेत्ता किसी क्षेत्र की खुदाई करता है और किसी मकान के नीचे उसे दूसरे मकान के अवशेष मिलते हैं तो वह पता लगाया जा सकता है कि नीचे वाला मकान ऊपर वाले मकान से पुराना है। इसलिए वह जितनी गहरी खुदाई करता है, कालक्रम की दृष्टि से वह उतना ही पीछे पहुँच जाता है। इस प्रकार मार्शल यह पता लगा सका कि बौद्ध बिहार के नीचे जो मकान थे वे अवश्य ही कुषाणकाल से पहले के रहे होंगे। इसके बाद इस बात का भी प्रमाण मिल गया कि इन बस्तियों में रहने वाले लोग लोहे का प्रयोग करना नहीं जानते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि ये शहर उस युग के थे जब लोगों को लोहे के बारे में जानकारी नहीं थी। लोहे का प्रयोग दूसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्ध में शुरू हुआ। जब मार्शल ने अपनी खोजों द्वारा प्राप्त जानकारी को प्रकाशित किया तो कुछ अन्य लेखकों को मेसोपोटामिया में ऐसी वस्तुएँ मिलीं जो हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की वस्तुओं से मिलती-जुलती थीं। मेसोपोटामिया के शहर तीसरी सहस्राब्दी के उत्तरार्ध के आरंभ में अस्तित्व में आए। इस प्रकार मेसोपोटामिया के प्राचीन शहरों में हड़प्पा की सभ्यता की कोई वस्तु मिल जाती थी तो उससे यह पता चलता था कि हड़प्पा के निवासी और मेसोपोटामिया के निवासी समकालीन थे। इन साक्ष्यों से विद्वान यह पता लगा सके कि स्थानीय लोगों और कनिंघम के निष्कर्ष गलत थे। मार्शल द्वारा प्रतिपादित हड़प्पा के कालक्रम को रेडियो कार्बन डेटिंग जैसे काल-निर्धारण के नए तरीकों, से और भी समर्थन मिला है। इसलिए विद्वानों ने हड़प्पा पूर्व (Pre Harappa) और हड़प्पा की संस्कृतियों के लिए निम्नलिखित कालक्रम माना है :

हड़प्पा पूर्व और हड़प्पा संस्कृति का कालानुक्रम

5500 बी.सी.ई. से 3500 बी.सी.ई. तक नवपाषाण युग

बलूचिस्तान और सिंधु के मैदानी भागों में मेहरगढ़ और किले गुलमुहम्मद जैसी बस्तियाँ उभरीं। यहाँ लोग पशु चराने के साथ-साथ थोड़ा बहुत खेती का काम भी करते थे। इस प्रकार स्थायी गाँवों का उद्भव हुआ। इस युग के लोग गेहूं, जौ, खजूर, तथा कपास की खेती की जानकारी रखते थे और भेड़ बकरियों और मवेशियों को पालते थे। साक्ष्य के रूप में मिट्टी के मकान, मिट्टी के बर्तन और दस्तकारी की वस्तुएँ मिली हैं।

3500 बी.सी.ई. से 2600 बी.सी.ई. तक आरम्भिक हड़प्पा काल

इस काल में पहाड़ों और मैदानों में बहुत सी बस्तियाँ स्थापित हुईं। इसी समय गाँव सबसे अधिक संख्या में आबाद हुए। तांबा, चाक और हल का प्रयोग पाया गया। कई प्रकार के

मिट्टी के अद्भुत बर्तन बनाए जाते थे जिससे कई क्षेत्रीय परम्पराओं के आरम्भ का पता चलता है। अन्न भण्डार, ऊँची-ऊँची दीवारें और सुदूर व्यापार के प्रमाण मिले हैं। सारी सिंधु घाटी में मिट्टी के बर्तनों की एकरूपता के प्रमाण मिलते हैं। इसके साथ-साथ पीपल, कुबड़े बैलों, शेषनागों, सींगदार देवता आदि के रूपाँकनों के प्रयोग के प्रमाण मिले हैं।

2600 बी.सी.ई. से 1800 बी.सी.ई. तक पूर्ण विकसित हड़प्पा युग

बड़े शहरों का अभ्युदय, समान आकार की ईंटें, तौलने के बाट, मुहरें, मनके और मिट्टी के बर्तन, नियोजित ढंग से बसे हुए शहर और दूर-दूर स्थानों के साथ व्यापार।

1800 बी.सी.ई. से आगे उत्तर-हड़प्पा युग

हड़प्पा की सभ्यता के बहुत से शहर खाली हो गए, अंतर-क्षेत्रीय विनिमय में ह्रास हुआ, लेखन कार्य और शहरी जीवन का त्याग कर दिया गया। हड़प्पा की सभ्यता के शिल्प और मिट्टी के बर्तनों की परम्परा जारी रही। पंजाब सतलुज-यमुना की ग्रामीण संस्कृतियों का विभाजन और गुजरात में हड़प्पा की शिल्प और मिट्टी के बर्तनों की परंपराओं को अपनाया जाना।

हड़प्पा के टीले संख्या F पर स्थित अन्न भंडारां PB-137 के रूप में स्थित अवशेष की पहचान। रेय : मोहम्मद बिन नावेद। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia .org/wiki/File:Another view of Granary and Great Hall on Mound F.JPG)।

जल स्तर तक पहुँचने के लिए चरणबद्ध कदमों के साथ कृत्रिम रूप से निर्मित जलाशय, धौलावीरा। श्रेयः रामाज़ ऐरो। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Dholavira1.JPG)।

5.4 इसे हड़प्पा की सभ्यता क्यों कहा जाता है?

हड़प्पा की खोज के बाद से अब तक लगभग एक हज़ार बस्तियों की खोज की जा चुकी है जिनकी विशेषताएँ हड़प्पा से मिलती हैं। विद्वानों ने इसे ''सिंधु घाटी की सभ्यता'' का नाम दिया क्योंकि शुरू में बहुत सी बस्तियाँ सिंधु घाटी और उसकी सहायक नदियों के मैदानों में पाई गई थीं। पुरातत्ववेत्ता इसे ''हड़प्पा की सभ्यता'' ही कहना पसंद करते हैं। ऐसा इसलिए है कि पुरातत्व-विज्ञान में यह परंपरा है कि जब किसी प्राचीन संस्कृति का वर्णन किया जाता है तो उस स्थान के आधुनिक नाम पर उस संस्कृति का नाम रखा जाता है, जहाँ से उसके अस्तित्व का पता चला है। हमें यह मालूम नहीं है कि वे लोग अपने को क्या कहते थे क्योंकि हम उनकी लिखाई नहीं पढ़ पाये हैं। इसलिए हम आधुनिक स्थान हड़प्पा को आधार मानकर उन्हें हड़प्पावासी कहते हैं। क्योंकि इसी स्थान पर इस विस्मृत सभ्यता का प्रमाण सबसे पहले मिला था।

5.5 पूर्ववर्ती इतिहास
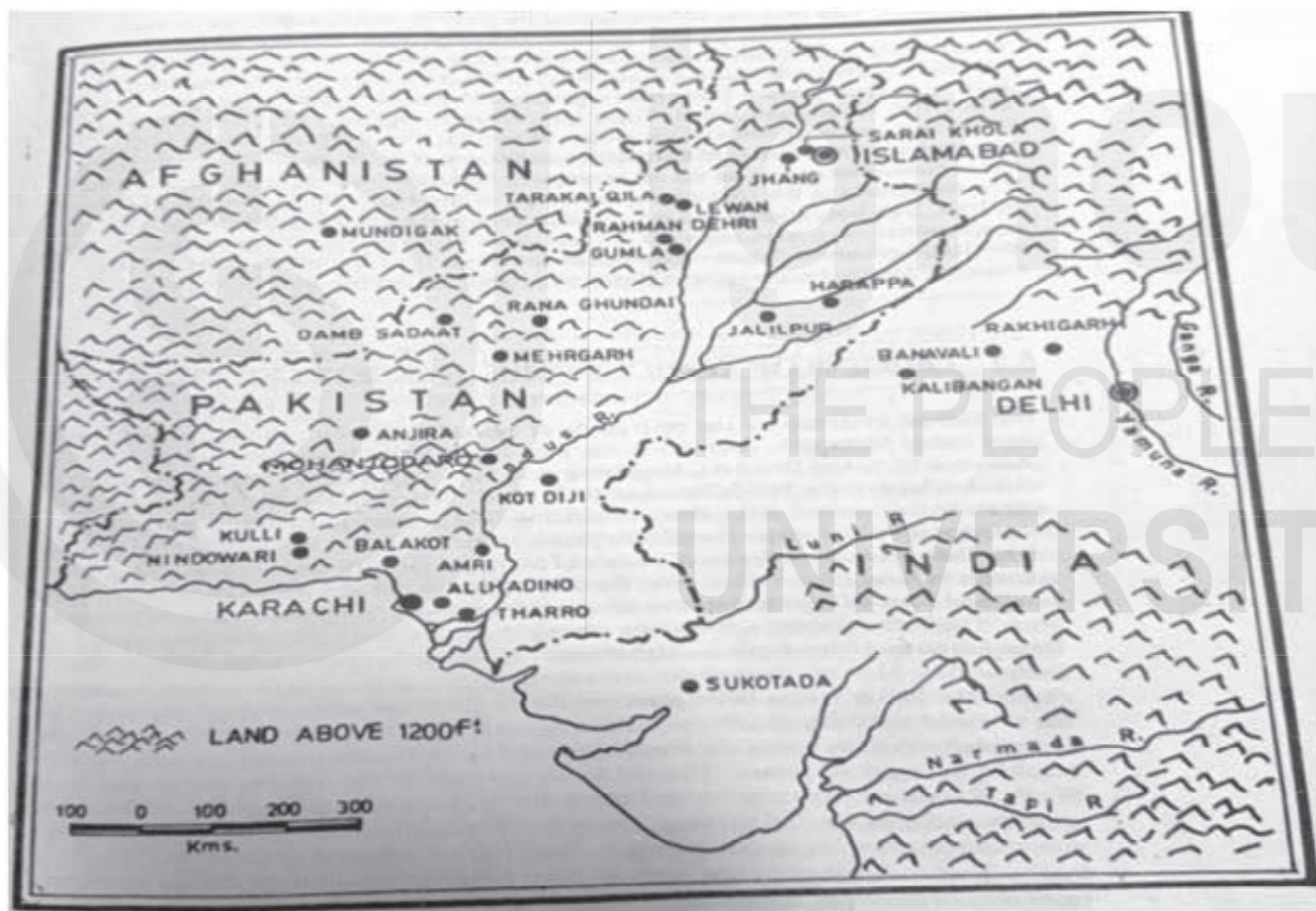
आरंभिक हड़प्पा काल के स्थल। स्रोत : ईएचआई-02, खंड-2, इकाई-5।

जब हम ''हड़प्पा की सभ्यता'' शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य असंख्य शहरों, कस्बों और गाँवों से होता है जो तीसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. में पूर्णतः विकसित हो चुके थे। एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत इन शहरों और गाँवों में आपसी संबंध थे। इन भौगोलिक स्थानों के अंतर्गत मोटे तौर पर आज का राजस्थान, पंजाब, गुजरात, पाकिस्तान और कुछ आस-पास के क्षेत्र आते हैं। यदि हम हड़प्पा की सभ्यता के उद्भव से उन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों द्वारा छोड़े गए अवशेषों का अध्ययन करते हैं तो हमें शहरों के उद्भव की जानकारी मिल सकती है। विद्वानों का विचार है कि मानवजाति के अतीत में एक ऐसा समय था जब शहरों का अस्तित्व नहीं था और लोग छोटे-छोटे गाँवों में रहते थे। अब प्रश्न यह

उठता है कि हड़प्पावासियों के पूर्वज कस्बों और शहरों के उद्‌भव से पहले क्या किया करते थे। ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि हड़प्पावासियों के पूर्वज गाँवों और छोटे-छोटे कस्बों में रहा करते थे। उनमें से घूम-फिरकर पशु चराने का काम करते थे और कुछ व्यापार के कार्य में लगे हुए थे। हड़प्पा की सभ्यता से कृषक और अर्ध यायावर समुदायों के एक लम्बे समय से चले आ रहे विकास के चरमोत्कर्ष का पता चलता है। अब हम हड़प्पा की सभ्यता के पूर्ववर्ती इतिहास की समीक्षा करेंगे। सबसे पहले हम हड़प्पा की सभ्यता के क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे।

5.6 भौगोलिक विशेषताएँ

आज के पाकिस्तान और उत्तर पश्चिम भारत के क्षेत्र ''हड़प्पा की सभ्यता'' के प्रमुख क्षेत्र थे। इन क्षेत्रों में मौसम सूखा रहता है और वर्षा बहुत कम होती है। फिर भी इन क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण अंतर है। पंजाब और सिंधु के क्षेत्र में सिंधु नदी के कछारी मैदानों की प्रधानता है। इसी प्रकार बलूचिस्तान के क्षेत्र की एक विशेषता है उसकी दुर्गम चट्‌टानी पहाड़ियाँ। उत्तर पूर्वी बलूचिस्तान में घाटियों की तलहटी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ खेती होती होगी। इस क्षेत्र में पशुचारी तथा खानाबदोश जातियाँ भी रहती आई हैं। ये पशुचारी खानाबदोश जातियाँ अपने पशुओं के लिए चारे की खोज में ऊँचे स्थानों से निचले स्थानों पर आती जाती रहती थीं। वह सीमांत क्षेत्र जो सिंधु के मैदान में जा मिलता है, पूर्वी ईरान के पठार का ही विस्तारण है। इन पहाड़ी क्षेत्रों में खैबर, गोमाल, बोलन जैसे कई दर्रे बन गए हैं। खानाबदोशों, व्यापारियों, योद्धाओं और विभिन्न लोगों के लिए ये आने-जाने के मार्ग बन गए थे। एक तरफ बलूचिस्तान के ऊपरी भागों के लोगों और सिंधु नदी के मैदानों में बसे लोगों और दूसरी तरफ ईरान में रहने वाले लोगों के बीच अन्तरसम्बन्ध इस भौगोलिक विशेषता से जुड़ा प्रतीत होता है। हड़प्पा की सभ्यता की जलवायु और पहाड़, नदियाँ आदि तथा ईरान और ईराकी सीमांत प्रदेश की जलवायु और प्राकृतिक दृश्य में समानता होने के कारण विद्वानों ने यह अनुमान लगाया कि इन क्षेत्रों में कृषक समुदायों का अभ्युदय मोटे तौर पर एक ही काल में हुआ होगा। ईरान और ईराक में खेतीबाड़ी का आरम्भ लगभग 8000 बी.सी.ई. में हुआ है। अब हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि सिंधु के आस-पास के क्षेत्रों में कृषि की शुरुआत के विषय में क्या प्रमाण मिले हैं?

5.7 कृषि की शुरुआत और बसे हुए गाँव

कृषक समुदायों के उद्‌भव का सबसे प्राचीन प्रमाण मेहरगढ़ नामक स्थान से मिलता है जो पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में बोलन दर्रे के निकट स्थित है। (जैसा कि हमने पहले की इकाई में पढ़ा है) यह स्थान अस्थायी शिविर के रूप में स्थापित हुआ तथा पाँचवीं सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. में आबाद गाँव बन गया। इस स्थान पर लोग गेहूं, जौं, कपास और खजूर पैदा करते थे और भेड़-बकरियों और मवेशी पालते थे। मेहरगढ़ उस स्थान पर स्थित है जहाँ सिंधु नदी के कछारी मैदान और भारत-ईरान सीमांत प्रदेश के ऊँचे-नीचे पहाड़ी पठार मिलते हैं। मेहरगढ़ के लोग कच्चे मकानों में रहते थे। कुछ मकानों में पाँच-छह कमरे होते थे। तीसरी सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के मध्य में बहुत से छोटे और बड़े गाँव सिंधु नदी के आस-पास बलूचिस्तान और अफगानिस्तान के क्षेत्र में बस गए थे। इनमें से कुछ मशहूर हैं : बलूचिस्तान में कीली गुल मोहम्मद और अफगानिस्तान में मुंडीगक। सिंधु नदी के बाढ़ वाले मैदानों में हड़प्पा के पास जलीलपुर जैसे गाँव बस गए थे। इन किसानों ने सिंधु नदी के अत्यधिक उपजाऊ मैदानों का उपयोग करना सीख लिया था, इसलिए गाँवों के आकार और उनकी संख्या एकाएक बढ़ गई। इन किसानों ने सिंधु नदी के मैदानों का धीरे-धीरे उपयोग करना और सिंधु नदी के बाढ़ पर नियंत्रण करना सीख लिया था। इस प्रकार प्रति एकड़ भूमि पर खेती करने से प्रचुर मात्रा में उपज होती थी। इस कारण सिंधु, राजस्थान, बलूचिस्तान और

अन्य क्षेत्रों में भी बस्तियों का काफी विस्तार हुआ। उन्होंने अपने लिए उपयोगी पत्थरों की खदानों और अन्य खदानों का उपयोग करना सीख लिया था। इस काल में अस्थायी बस्तियों में पशुचारी खानाबदोश समुदायों के मौजूद होने के संकेत मिलते हैं। कृषकों के इन खानाबदोश समूहों से संपर्क ने कृषकों को अन्य क्षेत्रों के संसाधनों का उपयोग करने में सहायता दी क्योंकि पशुचारी खानाबदोशों के बारे में यह माना जाता है कि जिन क्षेत्रों से वे गुजरते हैं वे वहाँ व्यापारिक गतिविधियों में लग जाते हैं। इन सभी कारणों में छोटे-छोटे कस्बों का विकास हुआ। सिंधु नदी के आस-पास के क्षेत्रों की सभ्यता में पाई गई कुछ समानताओं के कारण इस नए विकास के काल को ''आरम्भिक हड़प्पा काल'' कहते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   i) जॉन मार्शल ने हड़प्पा की सभ्यता को पाँच हज़ार वर्ष पुराना माना है। (   )

   ii) हड़प्पा की बस्तियों में रहने वाले लोग लोहे का उपयोग जानते थे। (   )

   iii) इसे हड़प्पा की सभ्यता इसलिए कहा गया क्योंकि हड़प्पा पहला स्थान था, जिसकी खोज की गई। (   )

   iv) हमारे पास इस बात के प्रमाण हैं कि हड़प्पा की सभ्यता के निवासियों के पूर्वज बड़े शहरों में रहते थे। (   )

2) आरम्भिक हड़प्पा की सभ्यता की भौगोलिक विशेषताओं पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

5.8 आरम्भिक हड़प्पा काल

अब हम हड़प्पा सभ्यता के अभ्युदय के कुछ समय पहले की कुछ बस्तियों की समीक्षा करेंगे। बहुत से विद्वानों ने इसे आरम्भिक ''हड़प्पा काल'' कहा है क्योंकि उनका विश्वास है कि यह हड़प्पा की सभ्यता का निर्माण-युग था जिसमें सांस्कृतिक एकता की कुछ प्रवृत्तियों के प्रमाण भी मिले हैं।

5.8.1 दक्षिणी अफगानिस्तान

दक्षिणी अफगानिस्तान में एक मुंडीगक नामक स्थान है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान व्यापारिक मार्ग पर स्थित रहा होगा। सिंधु सभ्यता के आरम्भिक काल में इस स्थान के निवासी शिल्पकृतियों का प्रयोग करते थे जिनसे एक ओर ईरान के कुछ नगरों और दूसरी ओर बलूचिस्तान के कुछ नगरों के साथ *संघर्ष* का पता चलता है। खानाबदोश लोगों के कुछ समूहों द्वारा पड़ाव डालने की धीमी शुरुआत से यह स्थान एक घनी आबादी वाला नगर हो गया। इस बात के प्रमाण हैं कि यहाँ ऊँची दीवार होती थी जिसमें धूप में सुखाई गई ईंटों के वर्गाकार

बुर्ज थे। एक विशाल भवन जिसमें खंभों की कतारें थीं महल के रूप में पहचाना गया है। दूसरा विशाल भवन मंदिर जैसा प्रतीत होता है। इसी स्थान पर मिट्टी के बर्तनों की अनेक किस्में भी मिली हैं। वे लोग प्राकृतिक सजावट के रूप में चिड़ियों, लम्बे सींग वाले जंगली बकरे, बैल और पीपल के पेड़ों को चित्रित करते थे। पक्की मिट्टी की बनी हुई स्त्रियों की छोटी-छोटी मूर्तियाँ भी मिली हैं जो बलूचिस्तान की बस्तियों में पाई गई मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। ये कांसे के मुठदार कुल्हाड़ियों और बसूलों का प्रयोग करते थे। सेलखड़ी और लाजवर्द जैसे अल्प अमूल्य पत्थरों से ईरान और मध्य एशिया के साथ अनेक संबंधों का पता चलता है क्योंकि ये पत्थर स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं थे।

5.8.2 क्वेटा घाटी

मुंडीगक के दक्षिण पूर्व की ओर क्वेटा घाटी है। दंब सादात नामक स्थान में बड़े-बड़े ईंटों के घर पाए गए हैं जिनका संबंध तीसरी सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के आरम्भ से है। कई प्रकार के चित्रकारी किए हुए मिट्टी के बर्तन भी पाए गए हैं जो मुंडीगक में पाए गए मिट्टी के बर्तनों जैसे ही हैं। ये लोग पक्की मिट्टी की मोहरों और तांबे की वस्तुओं का भी प्रयोग करते थे। इन खोजों से उस समय के समुदायों की सम्पन्नता का संकेत मिलता है जिन्होंने अपनी खाद्य समस्या सुलझा ली थी और दूर के क्षेत्रों से व्यापारिक संबंध स्थापित कर लिए थे। इसी प्रकार आस-पास के क्षेत्रों में भी विशिष्ट कला और मिट्टी के बर्तनों की परंपरा के बारे में जानकारी मिली है। राना घुंडई नामक स्थान में लोग बारीकी से बने हुए तथा चित्रकारी किए हुए मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे। इन पर काले कुबड़े बैलों के चित्र बने होते थे। इन मिट्टी के बर्तनों तथा क्वेटा घाटी में पाए गए मिट्टी के बर्तनों में सुस्पष्ट समानताएँ पाई गईं। एक अन्य स्थान पेरिआनों घुंडई जिनकी खुदाई की गई है, में भी एक विशिष्ट प्रकार की स्त्रियों की छोटी-मोटी मूर्तियाँ पाई गई है।

5.8.3 मध्य और दक्षिणी बलूचिस्तान

मध्य और दक्षिणी बलूचिस्तान में अंजीरा, तोगाऊ, निंदोवाड़ी और बालाकोट जैसी बस्तियाँ हमें आरम्भिक हड़प्पा सभ्यता के समाजों की जानकारी देती है। घाटी की व्यवस्था के अनुसार गाँव और उपनगर विकसित हुए। बालाकोट में विशाल इमारतों के अवशेष पाए गए हैं। इस क्षेत्र की कई बस्तियों से फारस की खाड़ी से समपर्क का पता चलता है। बालाकोट में जो लोग सबसे पहले बसे उसी प्रकार की मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिस प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग बलूचिस्तान के समकालीन गाँवों के लोग करते थे किंतु कुछ समय पश्चात् उन्होंने सिंधु नदी के कछारी मैदानों में प्रयुक्त किए जाने वाले मिट्टी के बर्तनों के समान ही मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। हमारे लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि सम्पूर्ण बलूचिस्तान प्रांत के लोग एक ही प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। इस प्रकार उन पर एक ओर फारस की खाड़ी के नगरों का तथा दूसरी ओर सिंधु घाटी के नगरों के प्रभावों का पता चलता है। वे अपने मिट्टी के बर्तनों पर कुबड़े बैल और पीपल के चिन्हों का प्रयोग करते थे जो विकसित हड़प्पा काल में भी जारी रहा।

5.8.4 सिंधु क्षेत्र

चौथी सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के मध्य तक सिंधु के कछारी मैदान परिवर्तन का केंद्र बिंदु बन गए। सिंधु नदी और घग्गर-हाकरा नदियों के किनारों पर बहुत सी छोटी और बड़ी बस्तियाँ बस गईं। यह क्षेत्र हड़प्पा की सभ्यता का मुख्य क्षेत्र बन गया। इस चर्चा में हम यह बताने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार इन घटनाओं से हड़प्पा की सभ्यता की अनेक विशेषताओं का पता चला।

i) आमरी

सिंधु घाटी के निचले मैदानों में स्थित सिंधु प्रांत का विकास रोचक है। आमरी में मिले मकानों के अवशेषों से पता चलता है कि लोग पत्थर और मिट्‌टी की ईंटों के मकानों में रहते थे। उन्होंने अनाज को रखने के लिए अनाज के कोठार (अन्नागार) भी बनाए थे। वे मिट्‌टी के बर्तनों पर भारतीय कुबड़े बैलों जैसे जानवरों के चित्र बनाते थे। यह चित्र (चिन्ह) पूर्ण विकसित हड़प्पा काल में बहुत लोकप्रिय था। वे चाक पर बने मिट्‌टी के बर्तनों का भी प्रयोग करते थे। थर्रो और कोहत्रास बुथीं जैसे स्थानों से भी ऐसी ही वस्तुएँ पाई गईं। यहाँ पर हड़प्पा की सभ्यता के शुरू होने से पहले ही उन्होंने अपनी बस्तियों की किलेबंदी कर ली थी।
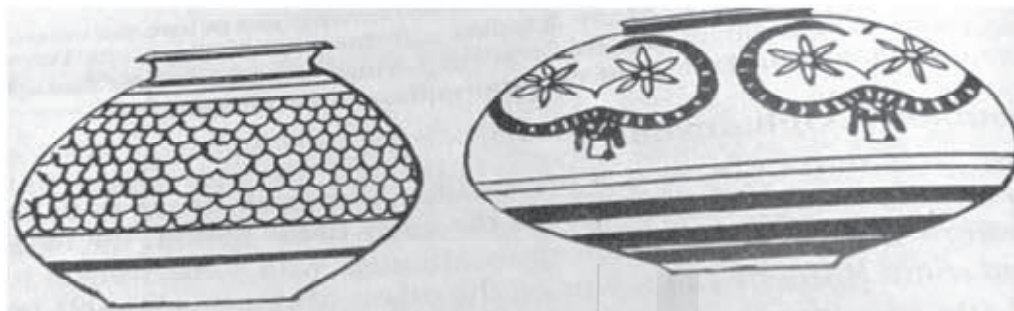
आरंभिक हड़प्पा सभ्यता के मृद भाण्ड : कालीबंगन।

आरंभिक सभ्यता के मृदभाण्ड : कोट दीजी। स्रोत : ई.एच.आई 02, खंड-2, इकाई-5।

ii) कोट दीजी

मोहनजोदड़ो के सामने सिंधु नदी के बाएँ किनारे पर कोट दीजी नामक स्थान है। आरंभिक हड़प्पा काल में यहाँ के निवासियों ने अपनी बस्ती के चारों ओर अति विशाल सुरक्षात्मक दीवार बना ली थी। उनकी सबसे बढ़िया खोज मिट्‌टी के बर्तन हैं। वे चाक पर बने मिट्‌टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे जिन पर गहरे भूरे रंग की साधारण धारियों की सजावट होती थी। इस प्रकार के मिट्‌टी के बर्तन राजस्थान में कालिबंगन और बलूचिस्तान में मेहरगढ़ जैसे दूर-दराज के स्थानों में बसे पूर्व हड़प्पा काल के निवासियों के बताए जाते हैं। कोट दीजी मिट्‌टी के बर्तनों की किस्में सिंधु नदी के आस-पास के सम्पूर्ण भू-भाग में पाई गई हैं जहाँ पर हड़प्पा के पूर्व-शहरी और शहरी अवस्था से संबंधित बस्तियों के बारे में जानकारी मिली है। मिट्‌टी के बर्तनों का समान रूप से सजावट की इस प्रवृत्ति से यह संकेत मिलता है कि सिंधु नदी के मैदानी भागों में रहने वाले लोगों के बीच घनिष्ठ संबंध थे। इससे हड़प्पा की सभ्यता में संस्कृतियों के समाभिरूपता की प्रक्रिया का भी पूर्वाभास मिलता है। मिट्‌टी के बर्तनों के अनेक डिजाइन शहरी अवस्था तक शेष रहे। उसी समय के अन्य मिट्‌टी के बर्तन मुंडीगक में बने हुए मिट्‌टी के बर्तनों के समान थे। इससे आरंभिक हड़प्पा के स्थानों में विस्तृत आपसी संबंधों का पता चलता है। पुरातत्ववेत्ताओं ने मोहनजोदड़ो में इस मैदान की आधुनिक स्तर के 39 फुट नीचे तक खुदाई करके अधिवास से जमा वस्तुओं का पता लगाया है। इस प्रकार चान्हूदड़ो नामक स्थान पर आरंभिक हड़प्पा के मकानों का पता चला है। मोहनजोदड़ो में शुरू के स्तर तक खुदाई नहीं हो पाई है परंतु अनेक पुरातत्ववेत्ताओं का यह विश्वास है कि उनके रहन-सहन के ढंग से आरंभिक हड़प्पा की संस्कृति की जानकारी मिलती है जो संभवतः कोट दीजी की संस्कृति से मेल खाती है।

iii) मेहरगढ़

इससे पहले भी हम मेहरगढ़ स्थल के बारे में बता चुके हैं। हड़प्पा के शहरीकरण के पूर्ववर्ती काल में मेहरगढ़ के लोगों ने एक संपन्न उपनगर बसाया था। वे पत्थरों की कई प्रकार की मालाएँ बनाते थे। वे एक कीमती पत्थर लाजवर्द मणि का प्रयोग करते थे जो केवल मध्य

एशिया के बदख्शां क्षेत्र में पाया जाता है। बहुत सी मोहरों और ठप्पों का भी पता चला है। आपसी लेन-देन में प्राधिकार के चिन्ह रूप में इन मोहरों का प्रयोग होता था। मेहरगढ़ के मोहरों का प्रयोग संभवतः व्यापारियों द्वारा दूर-दराज के क्षेत्रों को भेजे जाने वाले माल की गुणवत्ता की गारंटी देने के लिए किया जाता था। मिट्टी के बर्तनों के डिजाइन, मिट्टी की बनी मूर्तियों, तांबे और पत्थर की वस्तुओं से पता चलता है कि इन लोगों का ईरान के निकटवर्ती नगरों के साथ घनिष्ठ संबंध था। मेहरगढ़ के लोगों द्वारा प्रयोग किए गए अधिकतर मिट्टी के बर्तन दम्ब सदात और क्वेटा घाटी की बस्तियों में सदा प्रयुक्त किए जाने वाले बर्तनों से मिलते थे। इसके अतिरिक्त मिट्टी की बनी स्त्रियों की बहुत सी मूर्तियाँ भी मिली हैं। वे झोब घाटी में पाई गई मूर्तियों से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। इन समानताओं से उस क्षेत्र में रहने वाले समुदायों के बीच निकट आपसी संबंधों का पता चलता है।

iv) रहमान ढेरी

यदि हम सिंधु नदी के उत्तर की ओर चलें तो हमें कुछ और बस्तियाँ मिलेंगी जिनसे हमें यह पता चलता है कि आरंभिक हड़प्पा काल में लोग किस प्रकार रहते थे। रहमान ढेरी नामक स्थान पर आरंभिक सिंधु उपनगर की खुदाई की गई है। यह उपनगर आयताकार था और इसमें घर, सड़कें, गलियाँ नियोजित ढंग से बने हुए थे। इस उपनगर की सुरक्षा के लिए एक विशाल दीवार थी। यहाँ भी फीरोजी और लाजवर्द के मनके मिले हैं। इससे उनके मध्य एशिया के साथ संबंधों का पता चलता है। बर्तनों के टुकड़ों पर पाए गए असंख्य भित्ति चित्र हड़प्पालिपि के पूर्वसूचक हो सकते हैं। इस क्षेत्र में मिट्टी के बर्तनों की स्वतंत्र परंपरा धीरे-धीरे बदल गई और कोट दीजी के मिट्टी के बर्तनों के समान मिट्टी के बर्तनों ने स्थान ले लिया। पत्थर, तांबे और कांसे से बनी मोहरें और औज़ार भी मिले हैं।

v) तरकाई किला

बन्नू क्षेत्र के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में तरकाई किले की किलेबंदी का प्रमाण भी मिला है। पुरातत्वविदों ने खाद्यान्नों के बहुत सारे नमूने खोज निकाले हैं जिनमें गेहूं और जौं, मूंग-मसूर की दालें और देसी मटर के किस्म शामिल हैं। फसल काटने के औज़ारों का भी पता चला है। उसी क्षेत्र में लीवान नामक स्थान पर पत्थर के औज़ार बनाने के एक बहुत बड़े कारखाने का पता चला है। हड़प्पा के निवासी और उनके पूर्वज लोहे और तांबे के बारे में बिल्कुल भी जानकारी नहीं रखते थे। अतः अधिकतर लोग पत्थर से बने औज़ारों का प्रयोग करते थे। इसलिए कुछ स्थानों पर जहाँ अच्छी श्रेणी का पत्थर उपलब्ध था, बड़ी संख्या में औज़ार बनाए जाते थे और उसके बाद उन औज़ारों को दूर-दूर के नगरों और गाँवों में भेजा जाता था। लीवान में लोग पत्थर के कुल्हाड़े, हथौड़े, चक्कियाँ आदि बनाते थे। इस काम के लिए वे निकटवर्ती क्षेत्रों से भी उपयुक्त चट्टानी पत्थर मंगाते थे। लाजवर्द की उपस्थिति और मिट्टी की बनी मूर्तियों के पाए जाने से मध्य एशिया के साथ संबंधों का पता चलता है। सरायखोला नामक स्थान पर जो पश्चिमी पंजाब के उत्तरी किनारे पर स्थित है एक अन्य आरंभिक हड़प्पा बस्ती का पता चला है। यहाँ पर भी लोग कोट दीजी जैसे मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे।

5.8.5 पंजाब और बहावलपुर

पश्चिमी पंजाब में हड़प्पा प्रसिद्ध है। एक खुदाई के दौरान शहरीकरण की अवस्था से पहले की बस्तियों की खोज की गई है। दुर्भाग्यवश अभी तक उनकी खुदाई नहीं हुई है। यहाँ पाए गए मिट्टी के बर्तन कोट दीजी के बर्तनों के समान हैं। विद्वानों का विचार है कि ये बस्तियाँ हड़प्पा में 'आरंभिक हड़प्पा काल' में रही होंगी। बहावलपुर क्षेत्र में हाकरा नदी की सूखी तलहटी में आरम्भिक हड़प्पा काल के लगभग 40 स्थानों का पता लगाया गया है। कोटी दीजी

में पाए गए मिट्टी के बर्तनों से यहाँ पर भी आरंभिक हड़प्पा सभ्यता का पता चलता है। इन स्थानों का बस्ती के स्वरूप के तुलनात्मक विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि आरंभिक हड़प्पा काल में कई प्रकार के मकान बन गए थे। जबकि कई स्थानों में तो साधारण गाँव ही थे और उनमें से कुछ स्थानों में विशिष्ट औद्योगिक कार्य हो रहे थे। इसलिए हम देखते हैं कि अधिकतर स्थानों का औसत आकार लगभग पाँच से छह एकड़ था। गमनवाला 27.3 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है। इसका अर्थ यह हुआ कि गमनवाला कालीबंगन के हड़प्पा काल के उपनगर से बड़ा था। इन उपनगरों में कृषि कार्यों के अतिरिक्त अवश्य ही प्रशासनिक और औद्योगिक कार्य होते होंगे।

5.8.6 कालीबंगन

उत्तरी राजस्थान के कालीबंगन स्थान पर आरंभिक हड़प्पा काल के प्रमाण मिले हैं। यहाँ पर लोग कच्ची ईंटों के मकानों में रहते थे। इन कच्ची ईंटों का मानक आकार होता था। वे बस्ती के चारों तरफ चार दीवारी भी बनाते थे। उन लोगों द्वारा प्रयुक्त मिट्टी के बर्तनों का आकार और डिजाइन दूसरे क्षेत्रों में प्रयुक्त मिट्टी के बर्तनों के आकार और डिजाइन से अलग था। फिर भी मिट्टी के कुछ बर्तन कोट दीजी के पाए गए मिट्टी के बर्तनों से मिलते थे। 'बलि स्तंभ' जैसे मिट्टी के बर्तनों के कुछ नमूनों का प्रयोग शहरी चरण के दौरान जारी रहा। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण खोज थी जुते हुए खेत का तल। इससे सिद्ध होता है कि उस समय भी किसान हल के बारे में पहले से ही जानते थे। पुराने हालात में किसान केवल बीज छितराकर बो सकते थे या खेतों की खुदाई के लिए फावड़े, कुदाली का प्रयोग करते थे। हल से कोई भी व्यक्ति बहुत कम मेहनत से अधिक गहरी खुदाई कर सकता है। इसलिए इसे खेती का उन्नत औज़ार समझा जाता है जिसमें खाद्य उत्पादन को बढ़ाने की शक्ति है।
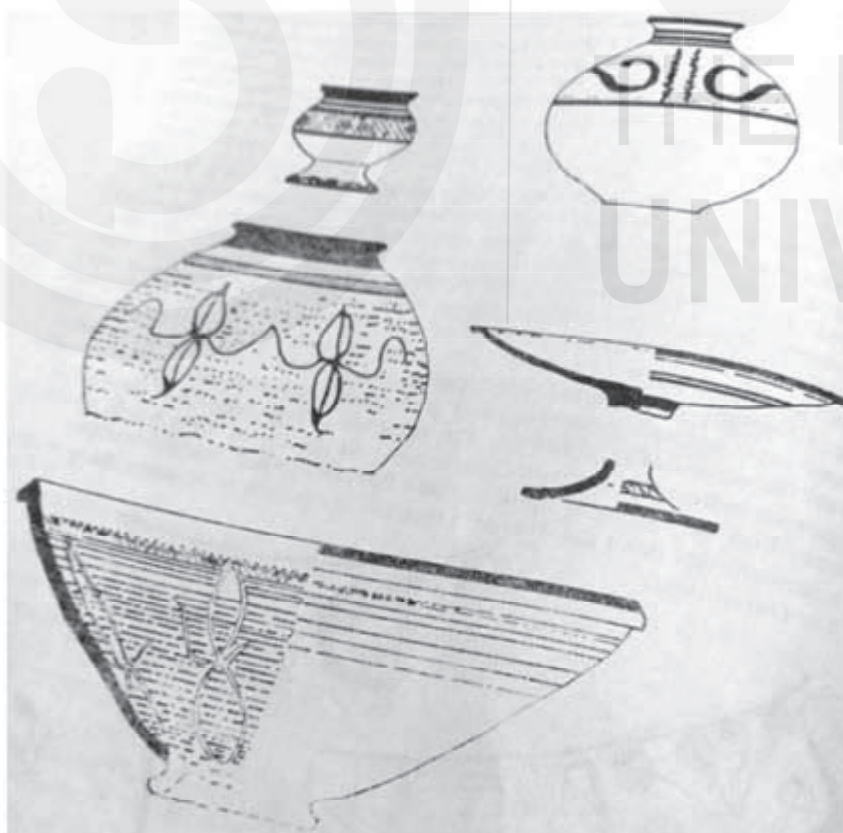
प्रारम्भिक सिंधु सभ्यता के मिट्टी के बर्तन – कालीबंगन। स्रोत : ई.एच.आई-02, खंड-2, इकाई-5।

घग्गर नदी, जो भारत में है सूखी तलहटी में आरंभिक हड़प्पा की अनेक बस्तियाँ पाई गई हैं। ये बस्तियाँ उन जलमार्गों के पास पाई गई हैं जो अब विलुप्त हो गए हैं। सोथी बाड़ा और

सीसवाल जैसी बस्तियों में जो मिट्टी के बर्तनों की शैलियाँ प्रचलित थीं वह कालीबंगन के मिट्टी के बर्तनों की शैलियों से मिलती जुलती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान में खेतड़ी की तांबे की खानों का उपयोग आरंभिक हड़प्पा काल में ही शुरू हो गया होगा। हमने आरंभिक काल में सिंधु क्षेत्रों और उसके आस-पास रहने वाले विभिन्न कृषक समुदायों की सांस्कृतिक परंपराओं में पाई गई समानताओं का उल्लेख किया है। बलूचिस्तान, सिंधु, पंजाब और राजस्थान में आरंभ में छोटी-छोटी कृषक बस्तियाँ थीं, इसके पश्चात् इन क्षेत्रों में अनेक प्रकार की क्षेत्रीय परंपराओं का अभ्युदय हुआ है। किंतु एक ही प्रकार के मिट्टी के बर्तन, सींग वाले देवता के चित्रण और मिट्टी की मातृदेवियों की मूर्तियों से पता चलता है कि एकीकरण की परंपरा शुरू हो चुकी थी। बलूचिस्तान के लोगों ने फारस की खाड़ी और मध्य एशिया के नगरों के साथ पहले ही व्यापारिक संबंध बना लिए थे। इस प्रकार आरंभिक हड़प्पा काल से हड़प्पा की सभ्यता की उपलब्धियों की जानकारी मिलती है।

हमने लगभग तीन हज़ार वर्षों में हुई घटनाओं को पढ़ा है। इस काल के दौरान किसानों ने सिंधु नदी के कछारी जलोढ़ मैदानों में बस्तियाँ बसाईं। ये समुदाय तांबे, कांसे और पत्थर के औज़ारों का प्रयोग करते थे। श्रम से अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के लिए वे हल और पहिए वाली गाड़ी का प्रयोग करते थे। ईरान में भेड़-बकरियाँ पालने का प्रचलन था तो इसके विपरीत सिंधु घाटी के लोग गाय, भैंस आदि पशु पालते थे। इससे उन्हें यातायात और खेती के लिए पशु शक्ति का प्रयोग करने के लिए बेहतर अवसर मिल गए थे। इसी दौरान मिट्टी के बर्तनों को बनाने की परंपरा में धीरे-धीरे एकरूपता आई। कोट दीजी में जो विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन सबसे पहले पाए गए थे आरंभिक हड़प्पा काल में वे बलूचिस्तान, पंजाब और राजस्थान के समस्त क्षेत्रों में भी पाए गए। मिट्टी की मातृदेवियों की मूर्तियाँ और सींगदार देवता के रूपाँकन कोट दीजी और कालीबंगन में भी पाए गए। कुछ समुदायों ने अपने घरों के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें बना ली थीं। इन दीवारों के निर्माण के पीछे क्या प्रयोजन रहा होगा, यह हमें मालूम नहीं है। हो सकता है कि ये दीवारें दूसरे समुदायों से सुरक्षित रहने के लिए बनाई गई हों अथवा बाढ़ से बचने के लिए बनाई गई हों। ये सभी घटनाएँ फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया की समकालीन बस्तियों के साथ अधिक व्यापक संबंधों के संदर्भ में घटित हो रही थी।

5.9 हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय

प्रौद्योगिकीय और वैचारिक एकीकरण की इन प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि में हड़प्पा की सभ्यता का अभ्युदय हुआ। इस सभ्यता की उत्पत्ति से संबंधित प्रक्रियाएँ अस्पष्ट हैं क्योंकि उनकी लिपि का अध्ययन नहीं किया गया है और अनेक बस्तियों की खुदाई की जाने की जरूरत है। ऊपर कुछ सामान्य प्रक्रियाओं की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उन्नत और सिंधु घाटी के उर्वर मैदानों में खेती करने तथा उन्नत प्रौद्योगिकी के प्रयोग से खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई होगी। इससे अधिकांश खाद्यान्न की संभावनाएँ पैदा हुई। इसके कारण जनसंख्या में भी वृद्धि हुई। इसके साथ-साथ समाज के धनी वर्ग बहुमूल्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए दूर-दराज के समुदायों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करते थे। अधिकांश खाद्यान्नों से गैर-कृषि कार्य करने के अवसर मिले। गाँव का पुरोहित सम्पूर्ण क्षेत्र में फैले हुए पुरोहित-कुल का अंग बन सकता था। इसी प्रकार की प्रक्रियाएँ धातु-कर्मियों, कुम्हारों और शिल्पियों के संबंध में सामने आईं। गाँवों में अनाज रखने के चबूतरे बड़े-बड़े कोठारों में बदल गए।

कई कृषक समूहों और पशुचारों यायावर समुदायों का एक दूसरे के साथ निकट संपर्क होने से उनके बीच तनाव तथा परस्पर विरोध उत्पन्न हो सकता था। कृषक एक समुदाय के रूप में स्थापित होने के पश्चात् अन्य कम खुशहाल समूहों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते थे। पशुचारी यायावर जातियों के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे व्यापार और लूटपाट के कार्य में

लगी थीं। अपनी आर्थिक दशा के अनुसार वे इन गतिविधियों में सम्मिलित होते थे। कृषक समुदाय में अधिक उपजाऊ भूमि को हथियाने के लिए *संघर्ष* होता था। संभवतः यही कारण है कि कुछ समुदायों ने अपने चारों ओर सुरक्षा के लिए दीवार बना ली थी। हम जानते हैं कि हड़प्पा की सभ्यता के अभ्युदय के समय कोट दीजी और कालीबंगन जैसी कई बस्तियाँ आग से नष्ट हो गयी थीं हमें इसका कारण मालूम नहीं है। यह अकस्मात घटना हो सकती है फिर भी यह तथ्य अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है कि सिंधु क्षेत्र में विभिन्न प्रतियोगी समुदायों में लोगों के एक वर्ग ने दूसरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इससे ''विकसित हड़प्पा काल'' के आरंभ का संकेत मिला। हड़प्पा सभ्यता एक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई थी। इस कारण विकसित हड़प्पा काल के आरंभ होने की कोई एक तिथि नहीं हो सकती थी। यह संभव है कि विकास के केंद्र के रूप में इस शहर का कई सौ वर्षों की समयावधि में अभ्युदय हुआ होगा। परंतु यह शहर अस्तित्व में आया और यही कारण है कि इस शहर के अगले सात-आठ सौ वर्षों के लिए पूरे उत्तर-पश्चिम क्षेत्र का प्रभुत्व रहा।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित कथनों को पढ़िए और सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   i) आरम्भिक हड़प्पा सभ्यता के लोगों के ईरान तथा मध्य एशिया के साथ व्यापारिक संबंध थे। ( )

   ii) विकसित हड़प्पा काल की बहुत सी विशेषताएँ सिंधु नदी के मैदान में विकसित हुईं। ( )

   iii) सिंधु मैदानों के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संपर्क के प्रमाण नहीं मिले हैं। ( )

   iv) आरम्भिक हड़प्पा काल में कालीबंगन तथा अन्य क्षेत्रों में इस्तेमाल किए जाने वाले मिट्टी के बर्तनों की बनावट तथा आकार में एकरूपता थी। ( )

2) आरम्भिक हड़प्पा काल के विभिन्न क्षेत्रों में सभ्यता किस प्रकार विकसित हुई? लगभग पाँच पंक्तियों में लिखिए।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

5.10 हड़प्पा का ह्रास : पुरातात्विक साक्ष्य

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन जैसे नगरों का नगर नियोजन और निर्माण में क्रमिक ह्रास हुआ। पुरानी जीर्ण ईंटों से बने और घटिया निर्माण वाले घरों ने नगरों की सड़कों और और गलियों पर भी कब्जा कर लिया। पतली विभाजक दीवारों से घरों के आंगनों का उपविभाजन कर दिया गया। शहर बड़ी तेजी से तंग बस्तियों में बदल रहे थे। मोहनजोदड़ो के वास्तुकला के विस्तृत अध्ययन से पता चलता है कि विशाल स्नानागार के अनेक प्रवेश मार्ग अवरुद्ध हो गए थे। कुछ समय बाद 'विशाल स्नानागार' और 'अन्न भण्डार' का उपयोग पूर्णतः समाप्त हो गया। इसी समय मोहनजोदड़ो में अपेक्षाकृत बाद के निवास स्थानों में मूर्तियों और

लघुमूर्तियों मनकाओं, चूड़ियों और पच्चीकारी की संख्या में स्पष्ट कमी दिखाई देती है। अन्त में मोहनजोदडो नगर मूलतः पच्चीस हेक्टेयर से सुकड़ कर मात्र तीन हेक्टेयर की छोटी सी बस्ती रह गया।

हड़प्पा के परित्याग से पहले लगता है एक और जन समूह आया था जिनकी जानकारी हमें उनकी मुर्दों को दफनाने की पद्धतियों से चलता है। वे मिट्टी के जिन बर्तनों का इस्तेमाल करते थे वे बर्तन हड़प्पा निवासियों के बर्तनों से भिन्न थी। उनकी संसकृति को ''सिमेटरी-एच'' (कब्रिस्तान-एच) संस्कृति कहा जाता है। कालीबंगन और चंहुदाड़ो जैसे स्थानों में भी ह्रास की प्रक्रिया स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। हम देखते हैं कि शक्ति और विचारधारा से सम्बद्ध और भव्यता प्रदर्शन के सामान अधिक से अधिक दुर्लभ हो रहे थे। बाद में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे नगरों का पूर्ण परित्याग हो गया।
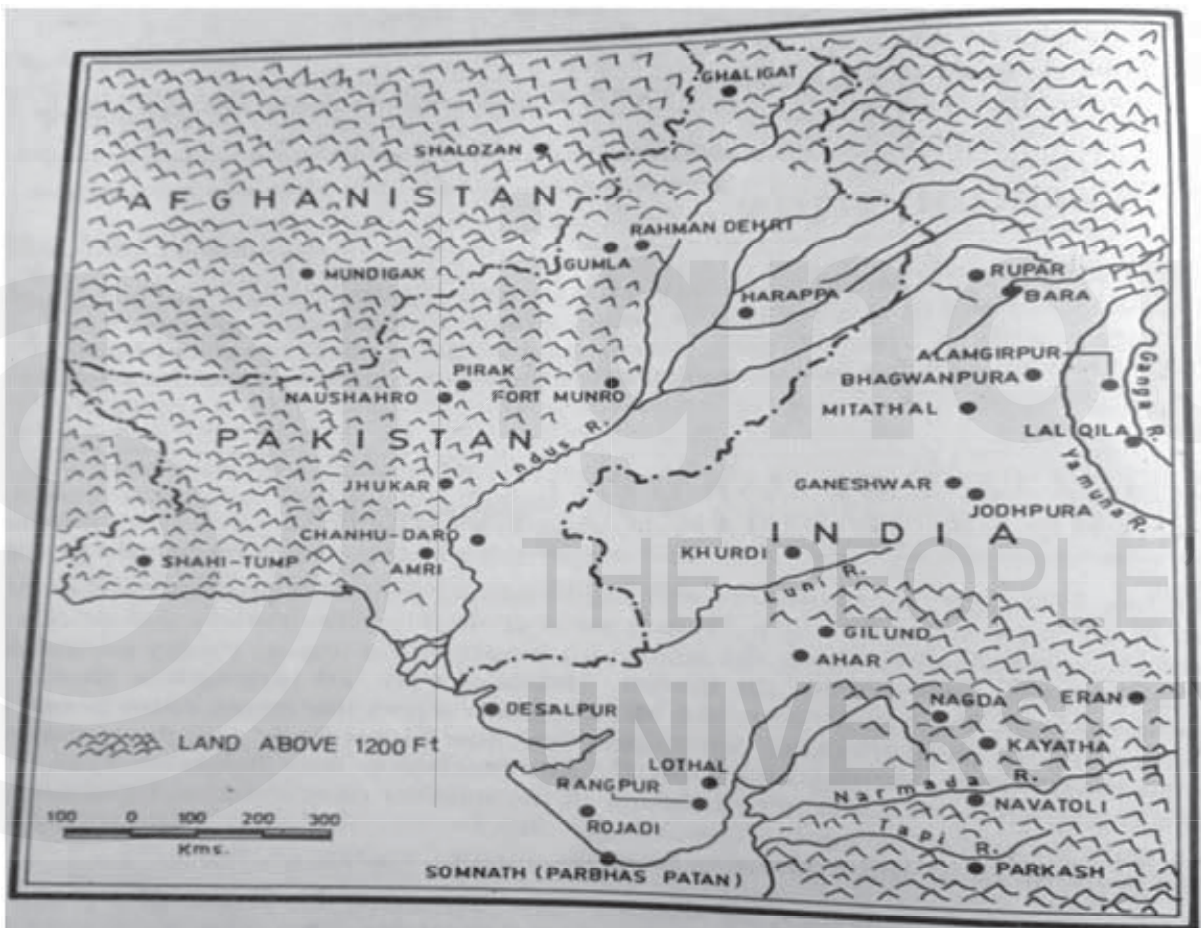
उत्तर हड़प्पा काल की बस्तियाँ। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-9।

बहावलपुर क्षेत्र में हड़प्पा कालीन और परवर्ती हड़प्पा कालीन स्थानों के शहरी नमूने के अध्ययन से भी ह्रास की प्रवृत्ति लक्षित होती है। हारूड़ा नदी के तटों के साथ परिपक्व काल में जहाँ 174 बस्तियाँ थी, वहाँ उत्तरवर्ती हड़प्पा काल में बस्तियों की यह संख्या घटकर 50 रह गई। इस बात की संभावना है कि अपने जीवन के बाद के दो-तीन सौ वर्षों में हड़प्पा-सभ्यता के मूल प्रदेश में बस्तियों का ह्रास हो रहा था। जन-समूह या तो नष्ट हो गए थे या अन्य क्षेत्रों में चले गए थे। जहाँ हड़प्पा, बहावलपुर और मोहनजोदड़ो के त्रिभुज में बस्तियों की संख्याओं में ह्रास हुआ वहीं गुजरात, पूर्वी पंजाब, हरियाणा और ऊपरी दोआब के दूरस्थ क्षेत्रों में बस्तियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। इससे इन क्षेत्रों में लोगों की संख्या में अपूर्व वृद्धि का संकेत मिलता है। इन क्षेत्रों की जनसंख्या में आकस्मिक वृद्धि का कारण हड़प्पा के मूल क्षेत्रों से लोगों का आना हो सकता है।

हड़प्पा-सभ्यता के दूरस्थ क्षेत्रों में जैसे गुजरात, राजस्थान और पंजाब के प्रदेश में लोग रहते रहे। लेकिन उनके जीवन में परिवर्तन आ गया था। हड़पपा-सभ्यता से संबद्ध कुछ महत्वपूर्ण लक्षण जैसे लेखन, तोलने के समान बाट, हड़प्पा कालीन मिट्टी के बर्तन और वास्तुकला शैली-लुप्त हो गए थे।

सिंधु नदी के नगरों का परित्याग स्थूल रूप से लगभग 1800 बी.सी.ई. में हुई। इस तारीख का समर्थन इस तथ्य से होता है कि मेसोपोटामिया साहित्य में 1900 बी.सी.ई के अंत तक मेलुहा का उल्लेख समाप्त हो गया था। तथापि आज भी हड़पपा कालीन नगरों को अंत का कालानुक्रम स्थाई नहीं है। हम आज तक यह नहीं जान सके कि मुख्य बस्तियों का परित्याग एक ही समय हुआ अथवा भिन्न-भिन्न अवधियों में हुआ। तथापि यह अवश्य निश्चित है कि मुख्य नगरों के परित्याग और अन्य बस्तियों को विनगरीकरण से हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास का संकेत मिलता है।

5.11 आकस्मिक ह्रास के सिद्धांत

विद्वानों ने इस प्रश्न के विभिन्न उत्तर दिए हैं कि यह सभ्यता नष्ट क्यों हुई? कुछ विद्वानों ने जिनका विश्वास है कि सभ्यता का नाटकीय अंत हो गया उन्होंने आकस्मिक विपत्ति के ऐसे साक्ष्य खोजे हैं जिससे शहरी समुदायों का सत्यानाश हो गया। हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के लिए कुछ अपेक्षाकृत अधिक संभावना युक्त सिद्धांत निम्न हैं :

क) यह भयंकर बाढ़ से नष्ट हो गई।

ख) ह्रास नदियों का रास्ता बदलने से और घग्घर-हाकड़ नदी तंत्र के धीरे-धीरे सूख जाने के कारण हुआ।

ग) बर्बर आक्रमणकारियों ने शहरों को बर्बाद कर दिया।

घ) केंद्रों की बदली हुई माँगों से क्षेत्र की पारिस्थितिकी भंग हो गई और उसे संभाला नहीं जा सका।

आइए, इस समष्टीकरणों पर उनके गुण-दोषों के आधार पर चर्चा करें।

5.11.1 बाढ़ और भूकम्प

हड़प्पा सभ्यता के ह्रास के लिए विद्वानों ने जो कारण बताए हैं, उनमें उन्होंने मोहनजोदड़ो में बाढ़ आने के साक्ष्य भी शामिल किए हैं। प्रमुख खुदाई करने वालों के नोटबुक से पता चलता है कि मोहनजोदड़ो में रिहाइश की विभिन्न अवधियों से अत्यधिक बाढ़ के साक्ष्य मिले हैं। यह निष्कर्ष इस तथ्य से निकाला जा सकता है कि मोहनजोदड़ो में मकानों और सड़कों पर इसके लम्बे इतिहास में अनेक बार कीचड़युक्त मिट्टी भरी पड़ी थी और टूटे हुए भवनों की सामग्री और मलबा भरा पड़ा था। लगता है कीचड़युक्त यह मिट्टी उस बाढ़ के पानी के साथ आई जिस पानी में सड़कें और मकान डूब गए थे। बाढ़ का पानी उतर जाने के बाद मोहनजोदड़ो के निवासियों ने पहले के मकानों के मलबे के ऊपर फिर से मकान और सड़कें बना लीं। इस प्रकार की भयंकर बाढ़ और मलबे के ऊपर पुनःनिर्माण का सिलसिला कम से कम तीन बार चला।

रिहाइशी क्षेत्र में खुदाई से पता चला है कि 70 फुट ऊँचाई तक रिहायशी तलों का सिलसिला था। यह सात मंजिला इमारत की ऊँचाई के बराबर है। विभिन्न आवासी स्तरों के बीच कीचड़ की स्तरें पाई गई थीं। आज के भूतल से 80 फुट ऊँचाई तक कई स्थानों पर कीचड़ के ढेर मिले हैं। इस प्रकार, कई विद्वानों का विश्वास है कि ये मोहनजोदड़ो में विनाशकारी बाढ़ आने के साक्ष्य हैं। इन बाढ़ों के कारण अपने पूरे इतिहास काल में शहर बार-बार अस्थायी रूप से वीरान हुआ और फिर बसा।

यह बाढ़ महा भयंकर थी। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि नदी की कीचड़ के ढेर आज के भूतल से 80 फुट ऊँचाई तक मिले हैं जिसका अर्थ है कि बाढ़ का पानी इस क्षेत्र में इस ऊँचाई तक पहुँचा। मोहनजोदड़ो के हड़प्पा निवासी इन बार-बार आने वाली बाढ़ों से मुकाबला करने में हिम्मत हार गए। एक अवस्था ऐसी आई जब कंगाल हड़प्पा निवासी इसे और सहन न कर सके और इन बस्तियों को छोड़कर चले गए।

रेईक्स (Raikes) की प्राक्कल्पना

महा भयंकर बाढ़ के सिद्धांत का विख्यात जलविज्ञानी आर.एल. रेईक्स ने भी समर्थन किया है। उसका मत है कि ऐसी बाढ़ जो बस्ती के भूतल से 30 फुट ऊँचे भवनों को छू सकती थी, सिंधु नदी में सामान्य बाढ़ आने का परिणाम नहीं हो सकती। उसका विश्वास है कि हड़प्पा सभ्यता का ह्रास भयंकर बाढ़ के कारण हुआ जिससे सिंधु नदी के तट पर स्थित नगर बहुत समय तक डूबे रहे। उसने बताया है कि भू-आकृति विज्ञान की दृष्टि से क्षेत्र अशान्त भूकम्प क्षेत्र है। भूकम्पों से हो सकता है, निम्न सिंधु नदी के बाढ़ मैदानों का स्तर ऊँचा हो गया हो। सिंधु नदी के लगभग समकोण पर एक धुरी के साथ-साथ मैदान के इस उत्थान से नदी का समुद्र की ओर मार्ग अवरुद्ध हो गया। इससे सिंधु नदी में पानी इकट्ठा होने लगा। उस क्षेत्र में एक झील सी बन गई। जहाँ कभी सिंधु नदी के शहर आबाद थे। और इस प्रकार, नदी के बढ़ते हुए पानी के स्तर में मोहनजोदड़ो जैसे शहर डूब गए।

यह बताया जा चुका है कि करांची के पास बालाकोट और मकरान तट पर सुतकागनदौड़ और सतका-कोह जैसे स्थान हड़पपा निवासियों के समुद्री तट थे। तथापि आजकल ये समुद्र तट से दूर स्थित है। ऐसा संभवतः उग्र भूकम्प के कारण समुद्र तट पर भूमि के उत्थान के परिणामस्वरूप हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि ऐसे उत्थान 2वीं सहस्त्राब्दी बी.सी.ई में किसी समय हुए। इन उग्र भूकम्पों से जिन्होंने नदियों को अवरुद्ध कर दिया और शहरों को जला दिया, हड़प्पा-सभ्यता नष्ट हो गई। इससे नदी पर आधारित वाणिज्यिक गतिविधियों और तटीय संचार भंग हो गया।

आलोचना

हड़प्पा सभ्यता के महा भयंकर विनाश का महान सिद्धांत कई विद्वानों को मान्य नहीं है। एच. टी. लैमब्रिक का कहना है कि यह विचार कि एक नदी भूकम्पीय उत्थानों से इस प्रकार अवरुद्ध हो जाएगी, निम्नलिखित दो कारणों से सही नहीं है :

1) यदि किसी भूकम्प से अनुप्रवाह पर एक कृत्रिम बाँध बन भी गया, तो भी सिंधु नदी के अत्यधिक मात्रा में जल से वह आसानी से टूट गया होगा। सिंधु में हाल ही में 1819 को भूकम्प से जो टीला बन गया था, वह सिंधु की एक छोटी नदी नारा से उत्पन्न पहली बाढ़ में ही बह गया था।

2) जमा हो गई गाद (कीचड़) परिकल्पित झील में पानी के उठते हुए तल के समान्तर हो गई होती। यह नदी के पिछले मार्ग के तल के साथ जमा होगी। इस प्रकार मोहनजोदड़ो की गाद बाढ़ के कारण इकट्ठी नहीं हुई थी।

   इस सिद्धांत की दूसरी आलोचना यह है कि इस सिद्धांत में सिंधु नदी तंत्र के बाहर की बस्तियों के ह्रास का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

5.11.2 सिंधु नदी का मार्ग बदलना

लैमब्रिक ने इस ह्रास के लिए अपना स्वयं का स्पष्टीकरण दिया है। उसका मत है कि सिंधु नदी के मार्ग में परिवर्तन मोहनजोदड़ो नगर के विनाश का कारण हो सकता है। सिंधु नदी एक अस्थिर नदी तंत्र है जो अपना तल बदलता रहता है, स्पष्टतः सिंधु नदी मोहनजोदड़ो से लगभग 30 मील दूर चली गई। शहर और आसपास के खाद्यान्न उत्पादक गाँवों के लोग इस

क्षेत्र से चले गए क्योंकि वे पानी के लिए तरस गए थे। मोहनजोदड़ो के इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ। शहर में देखी गई गाद वास्तव में हवा के कारण इकट्ठी हुई है क्योंकि हवा से बड़ी मात्रा में रेत और गाद उड़कर यहाँ आई। इस गाद और विधारित कीचड़, कच्ची ईंटों और पक्की ईंटों की संरचनाओं से वह गाद बन गई जिसे गल्ती से बाढ़ से उत्पन्न गाद मान लिया गया।

इस सिद्धांत से भी हड़प्पा-सभ्यता के पूर्णतः ह्रास के कारण स्पष्ट नहीं होते। अधिक से अधिक यह सिद्धांत मोहनजोदड़ो का वीरान हो जाना स्पष्ट कर सकता है और यदि मोहनजोदड़ो के निवासी नदी के मार्ग में इस प्रकार के बदलाव से परिचित थे तो वे स्वयं ही किसी नई बस्ती में जाकर क्यों नहीं बस सकते थे और मोहनजोदड़ो जैसा दूसरा शहर क्यों नहीं बसा सकते थे? स्पष्टतः ऐसा लगता है कि इसके कुछ और ही कारण थे?

5.11.3 शुष्कता में वृद्धि और घग्घर का सूख जाना

डी.पी. अग्रवाल और सूद ने हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के लिए एक नया सिद्धान्त बताया है। उनका मत है कि हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास उस क्षेत्र में बढ़ती हुई शुष्कता के कारण और घग्घर नदी-हाकडा-के सूख जाने के कारण हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और राजस्थान में किए गए अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए उन्होंने बताया है कि द्वितीय सहस्त्राब्दी बी.सी.ई. के मध्य तक शुष्कता की स्थितियों में बहुत वृद्धि हो गई थी। हड़प्पा जैसे अर्ध शुष्क क्षेत्रों में भी नमी और जल उपलब्धता में थोड़ी सी कमी के भी भयंकर परिणाम हो सकते थे। इससे कृषि उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता और इसके परिणामस्वरूप नगर की अर्थव्यवसथा पर बहुत दबाव पड़ता।

उन्होंने पश्चिम राजस्थान में अस्थिर नदी तंत्रों की समस्या पर चर्चा की है। जैसा पहले बताया जा चुका है घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र हड़प्पा सभ्यता का एक मूल क्षेत्र था। घग्घर एक शक्तिशाली नदी थी जो समुद्र में गिरने से पहले पंजाब, राजस्थान और कच्छ के रन में से होकर बहती थी। सतलुज और यमुना नदियाँ इस नदी की सहायक नदियाँ हुआ करती थीं। कुछ विवर्तनिक विक्षोभों के कारण सतलुज सिंध नदी में समा गई तथा यमुना नदी गंगा नदी में मिलने के लिए पूर्व की ओर रास्ता बदल गई। नदी क्षेत्र में इस प्रकार के परिवर्तन से जिससे घग्घर जल विहीन हो गई, इस क्षेत्र में अवस्थित नगरों के लिए भयंकर उलझनें हुई होंगी। स्पष्टतः शुष्कता में वृद्धि तथा जल निकासी स्वरूप में हुए परिवर्तन से आए पारिस्थितिक विक्षोभों से हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास हुआ।

यह सिद्धांत रोचक तो है, पर इसमें कुछ समस्याएँ भी हैं। शुष्कता की परिस्थितियों के संबंध में सिद्धांतों का पूर्णतः अध्ययन नहीं किया गया है और इस संबंध में और सूचनाएँ अपेक्षित हैं। इसी प्रकार घग्घर नदी सूख जाने का काल अभी तक उचित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सका है।

5.11.4 बर्बर आक्रमण

व्हीलर का मत है कि हड़प्पा-सभ्यता आक्रमणकारी आर्यों ने नष्ट की थी। जैसा पहले बताया जा चुका है, मोहनजोदड़ो में आवास के अन्तिम चरणों में जनसंहार के साक्ष्य मिलते हैं। सड़कों पर मानव कंकाल पड़े मिले हैं। *ऋग्वेद* में इनके स्थानों पर दासों और दस्युओं के किलों का उल्लेख मिलता है। वैदिक देवता इन्द्र को पुरन्दर कहा जाता है, जिसका अर्थ है ''किलों को नष्ट करने वाला''। *ऋग्वेद* कालीन आर्यों के आवास के भौगोलिक क्षेत्र में पंजाब तथा घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र शामिल थे। चूंकि इस ऐतिहासिक चरण में किसी अन्य संस्कृति समूहों के किले होने के कोई कारण अवशेष नहीं मिलते। व्हीलर का मत है कि *ऋग्वेद* में जिसका उल्लेख है वे हड़प्पा के नगर ही हैं। वस्तुतः *ऋग्वेद* में एक स्थान का उल्लेख है जिसे हरियूपिया कहा गया है। यह स्थान रावी नदी के तट पर अवस्थित था। आर्यों ने यहाँ

एक युद्ध लड़ा था। इस स्थान के नाम से हड़प्पा नाम लगता है। इन साक्ष्यों से व्हीलर ने निष्कर्ष निकाला कि हड़प्पा के शहरों को नष्ट करने वाले आर्य आक्रमणकारी ही थे।

यह सिद्धांत आकर्षक तो है, पर अनेक सिद्धांतों को मान्य नहीं है। उनका कहना है कि हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास का अनुमानित समय 1800 बी.सी.ई. माना जाता है। पर इसके विपरीत आर्य यहाँ लगभग 1500 बी.सी.ई. से पहले आए नहीं माने जाते। जानकारी की आज की स्थिति के अनुसार दोनों में से किसी भी समय को बदलना कठिन है और इसलिए संभावना यही है कि हड़प्पा निवासियों और आर्यों का कभी एक दूसरे से मिलन नहीं हुआ। साथ ही, न तो मोहनजोदड़ो में और न ही हड़प्पा में किसी सैन्य आक्रमण के साक्ष्य मिले हैं। सड़कों पर मनुष्यों के शव पड़े मिलने का साक्ष्य महत्वपूर्ण है। बहरहाल बड़े शहरों का तो पहले से ही अपकर्ष हो रहा था। इसके लिए आक्रमण प्राक्कल्पना उचित स्पष्टीकरण नहीं हो सकता।

ह्रास के सिद्धांत 1

बाढ़ और भूकम्प	**मोहनजोदड़ो सिंधु नदी के मार्ग बदलने के कारण नष्ट हुआ**	**वर्धित शुष्कता से ह्रास हुआ**		**बर्बरों अथवा आर्य आक्रमणकारियों ने हड़प्पा को बर्बाद किया।**
बाढ़ : साक्ष्य	**साक्ष्य**	**साक्ष्य**		**साक्ष्य**
क) विभिन्न आवास तलों के बीच गाद के तल पाये गये हैं	हड़प्पा में जो गाद मिली है, उसका कारण हवा है। जिसके साथ रेत और गाद आई। रेतीली गाद बाढ़ों के कारण नहीं आई।	क) द्वितीय सहस्त्राब्दी ई.पू. का मध्य-वर्धित शुष्कता की अवधि।		ख) सड़कों पर कंकाल पड़े हुए मिले हैं।
ख) मकानों और सड़कों पर भूतल से 30 फुट तक गाद जमा हो गई।		ख) ऐसी स्थिति में अर्ध शुष्क क्षेत्र (जैसे हड़प्पा) पर सबसे अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा होगा – कृषि में ह्रास हुआ होगा।		ख) ऋग्वेद में 'दासों' के किलों का वर्णन है, जिन्हें देवता पुरन्दर नष्ट करता है।
ग) गाद वाले मलवे पर मकान बनाए गए।		ग) दिवर्तनिक विक्षोभ से घग्घर जैसा नदी त्र प्रभावित हुआ होगा जो सूख गया।		ग) ऋग्वेद कालीन आर्यों के भौगोलिक क्षेत्र में पंजाब और घग्घर का क्षेत्र शामिल है।
भूकम्प साक्ष्य	**आलोचना**	**आलोचना**		
क) सिंधु क्षेत्र अशान्त भूकम्प क्षेत्र है।	इससे यह तो स्पष्ट किया जा सकता है कि लोग मोहनजोदड़ो को छोड़कर चले गए पर इससे इसका ह्रास स्पष्ट नहीं किया जा सकता।	क) पूरी तरह परिणाम नहीं निकाले गए।		घ) वेदों में रावी नदी पर एक स्थान हरियुपिया का उल्लेख मिलता है। जहाँ आर्यों ने युद्ध किया था। यह नाम हड़प्पा के नाम के समान है।
ख) भूकम्प से बाढ़ के मैदानों का स्तर ऊँचा हो गया, जिससे नदी के पानी का समुद्र में जाने का रास्ता अवरुद्ध हो गया और पानी शहरों में घुस गया।		ख) घग्घर नदी के सूखने का अभी तक काल निर्धारण नहीं हो सका		

ग) भूकम्प से भूमि समुद्र तट से दूर चली गई, जिससे वाणिज्य नगरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।				**आलोचना** हड़प्पा का ह्रास 1800 ई.पू. के आस-पास हुआ जबकि आर्य 1500 ई.पू. से पहले नहीं आए। अतः हड़प्पा निवासियों और आर्यों का संघर्ष स्वीकार करना कठिन है।
आलोचना				
क) इस सिद्धांत से सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के ह्रास के संबंध में स्पष्टीकरण नहीं मिलता।				
ख) दिवर्तनिक विक्षोभ से कोई नदी अवरुद्ध नहीं हो सकती।				

बोध प्रश्न 3

सही उत्तर पर निशान लगाइये।

1) हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास बाढ़ और भूकम्प सिद्धांत द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि :

   i) यह सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के ह्रास को स्पष्ट करता है। ( )

   ii) सिंधु घाटी के बाहर की बस्तियों के ह्रास को स्पष्ट नहीं कर सकता। ( )

   iii) हड़प्पा निवासी बाढ़ों और भूकम्पों का सामना करना जानते थे। ( )

   iv) उपर्युक्त में से कोई नहीं। ( )

2) हड़प्पा क्षेत्र में शुष्कता में वृद्धि हड़प्पा का ह्रास स्पष्ट नहीं कर सकती, क्योंकिः

   i) इस सिद्धांत पर पूरी तरह विचार किया गया है।

   ii) इस सिद्धांत पर पूरी तरह विचार नहीं किया जा सका है।

   iii) घग्घर नदी के सूखने का काल निर्धारण अभी तक नहीं हो सका है।

   iv) दोनों (ii) और (iii)

3) बर्बर आक्रमण ने हड़प्पा को तबाह किया, इस सिद्धांत के पक्ष और विपक्ष में साक्ष्यों पर लगभग 50 शब्दों में चर्चा करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

5.12 पारिस्थितिक असंतुलन : क्रमिक ह्रास की परिकल्पना

फेयरसर्विस जैसे विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता का ह्रास पारिस्थितिकी की समस्याओं के रूप में

स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उसने हड़प्पा नगरों की आबादी की गणना की है और नगर निवासियों की खाद्य जरूरतों का हिसाब लगाया है। उसने गणना की है कि इन क्षेत्रों में ग्राम निवासी अपनी उपज की लगभग 80 प्रतिशत खपत स्वयं करते हैं और लगभग 20 प्रतिशत बाजार में बिकने के लिए बचती है। यदि कृषि का यही प्रतिमान पहले भी विद्यमान रहा होता तो मोहनजोदड़ो जैसे नगर को, जिसकी आबादी लगभग 35 हज़ार थी, खाद्यान्न उगाने के लिए बहुत बड़ी संख्या में ग्राम निवासियों की आवश्यकता थीं। फेयरसर्विस की गणना के अनुसार इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों में नाजुक पारिस्थितिक संतुलन इसलिए बिगड़ रहा था क्योंकि इन क्षेत्रों में मनुष्यों और मवेशियों की आबादी अपर्याप्त जंगलों, खाद्यान्न और ईंधन के स्रांतों को तेजी से समाप्त कर रही थी। हड़प्पा के नगर निवासियों, किसानों और पशुचारकों की सम्मिलित आवश्यकताएँ इन क्षेत्रों में सीमित उत्पादन क्षमताओं से अधिक थी। इसलिए मनुष्यों और पशुओं की बढ़ती हुई आबादी के कारण जिसे अपर्याप्त स्रोतों का सामना करना पड़ रहा था, प्रकृति की छटा मद्धम पड़ने लगी।

जंगल और घास के मैदान धीरे-धीरे लुप्त होते जाने के कारण अब अधिक बाढ़ आ रही थी और अधिक सूखा पड़ रहा था। जीविका के इस आधार के नष्ट हो जाने के कारण इस सभ्यता की समस्त अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ा। लगता है कि धीरे-धीरे लोग उन क्षेत्रों में बसने के लिए जाने लगे जहाँ जीविका की बेहतर संभावनाएँ थी। यही कारण है कि हड़प्पा समुदाय सिंधु से दूर गुजरात और पूर्वी क्षेत्रों की ओर चले गए।

अब तक जिन सिद्धांतों पर चर्चा हुई है, उन सभी में से फेयरसर्विस का सिद्धांत सर्वाधिक युक्ति-युक्त लगता है। संभवतः नगर नियोजन और जीवन स्तर में क्रमिक ह्रास हड़प्पा निवासियों का जीविका आधार समाप्त हो जाने के कारण था। ह्रास की यह प्रक्रिया आस-पास के समुदायों के आक्रमणों और छापों से पूरी हुई। तथापि पर्यावरण संकट के सिद्धांत में भी कुछ समस्याएँ हैं।

- भारतीय उपमहाद्वीप की भूमि की उर्वरता बाद के सहस्त्राब्दों तक बनी रही, इससे इस क्षेत्र में भूमि की क्षमता समाप्त होने की प्राक्कल्पना उचित सिद्ध नहीं होती।
- साथ ही हड़प्पा निवासियों की जरूरतों की गणना अल्प सूचनाओं पर आधारित है और हड़प्पा निवासियों की जीविका संबंधी अपेक्षाओं की गणना करने के लिए काफी अधिक और सूचना अपेक्षित है।

इस प्रकार हड़प्पा निवासियों की आवश्यकताओं के बारे में अल्प अपर्याप्त सूचना पर आधारित गणना तब तक मात्र प्राक्कल्पना ही रहेगी जब तक आप इसके पक्ष में और अधिक साक्ष्य नहीं जुटाए जा सकेंगे।

हड़प्पा-सभ्यता के आविर्भाव में नगरों कस्बों और गाँवों, शासकों, किसानों और खानाबदोशों के बीच संबंधों का नाजुक संतुलन था। उनके पड़ौस के क्षेत्रों में उन समुदायों से भी दुर्लभ लेकिन महत्वपूर्ण संबंध थे। इसी प्रकार, उनका समकालीन सभ्यताओं और संस्कृतियों से भी संपर्क बना हुआ था। इसके अतिरिक्त, हमें प्रकृति से संबंध के लिए पारिस्थितिक घटक पर भी विचार करना होगा। संबंध की इन शृंखलाओं की कोई भी कड़ी टूटने से नगरों के ह्रास का पथ प्रशस्त हो सकता था।

5.13 परम्परा बाद में भी जीवित रही

सिंधु-सभ्यता का अध्ययन करने वाले विद्वान अब इसके ह्रास के कारण नहीं खोजते। इसका कारण है कि जिन विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता का अध्ययन 1960 के दशक तक किया था, उनका मत था कि सभ्यता का अंत अचानक हुआ। इन विद्वानों ने अपना कार्य नगरों, नगर नियोजन और बड़ी संरचनाओं के अध्ययनों पर ही केंद्रित किया। ऐसी समस्याएँ, जैसे हड़प्पा

नगरों के समकालीन गाँवों से संबंध और हड़प्पा-सभ्यता के विभिन्न तत्वों की निरन्तरता से अनदेखी कर दी गई। इस प्रकार हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के कारणों के संबंध में वाद-विवाद अधिक से अधिक अमूर्त बनता गया। 1960 के दशक के अन्तिम चरण में जाकर ही मलिक और पोशैल जैसे विद्वानों ने अपना ध्यान हड़प्पा परम्परा की निरन्तरता के विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित किया। इन अध्ययनों के परिणाम हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के कारणों की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तेजक निकला है। यह सत्य है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो को उनके निवासी खाली कर गए थे और नगर चरण समाप्त हो गया था। तथापि यदि हम हड़पपा सभ्यता के सम्पूर्ण भौगोलिक प्रसार के परिप्रेक्ष्य में देखें तो काफी वस्तुएँ उसी पुरानी शैली में चलती दिखाई देंगी।

पुरातात्विक दृष्टि से कुछ परिवर्तन ध्यान देने योग्य हैं। कुछ बस्तियाँ तो खाली कर दी गईं पर अधिकतर और बस्तियों में रिहाइश जारी रही। तथापि, एकरूप लेखन, मुहर बाँट और मिट्टी के बर्तनों की परम्परा समाप्त हो गई। दूर-दराज की बस्तियों के बीच घनिष्ठ अंतःक्रिया सूचक वस्तुएँ नष्ट हो गईं। अन्य शब्दों में नगर केंद्रित अर्थव्यवस्थाओं से संबंधित कार्यकलाप समाप्त हो गए। इस प्रकार जो परिवर्तन आए वे केवल नगर चरण की समाप्ति के ही सूचक थे। छोटे-छोटे गाँव और कस्बे तब भी बने रहे और इन स्थानों की पुरातात्विक खोजों में हड़प्पा-सभ्यता के अनेक तत्व मिले हैं।

सिंध में अधिकतर स्थानों में मृदभांड परम्परा में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। वस्तुतः गुजरात, राजस्थान और हरियाणा क्षेत्र के बाद के कालों में प्रवासी कृषि समुदायों का बहुत बड़ी संख्या में आविर्भाव हुआ। इस प्रकार क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में नगर चरण के बाद का काल समृद्ध गाँवों का काल था। जिसमें नगर चरण के मुकाबले कहीं अधिक गाँव थे। यही कारण है कि विद्वान आज सांस्कृतिक परिवर्तन, क्षेत्रीय प्रवासन और बसने और जीविका के तंत्र में रूपान्तरण जैसे विषयों पर चर्चा करते हैं। तथापि कोई भी प्रारंभिक मध्यकालीन भारत में प्राचीन भारतीय सभ्यता नष्ट होने के बारे में बात नहीं करता जबकि गंगा घाटी के अधिकतर नगरों का ह्रास हुआ था। आइए देखें नगर चरण की समाप्ति के बाद भी किस प्रकार के पुरातात्विक अवशेष विद्यमान थे।

5.13.1 सिंध

सिंध में, आमरी और चान्हुदाड़ों, झूकर जैसे हड़प्पा कस्बों में लोग ऐसे ही रहते रहे जैसे पहले रहते थे। वे अब भी ईंटों के मकानों में रहते थे पर उन्होंने सुनियोजित विन्यास त्याग दिया था। वे मामूली भिन्न मृद्भांड उपयोग में ला रहे थे जिसे झूकर मृद्भांड कहा जाता था। यह पांडुभांड थे जिनमें लाल पट्टी थी और काले रंग में चित्रकारी थी। हाल ही के अध्ययनों से पता चला है कि यह 'विकसित हड़प्पा' मृद्भांड से विरासत किए गए थे और इसलिए इसे कोई नई चीज नहीं माना जाना चाहिए। झूकर में कुछ विशिष्ट धातु की वस्तुएँ मिली हैं जो ईरान के साथ व्यापार संबंधों की सूचक हो सकती हैं और इससे अधिक इस बात की भी संभावना प्रदर्शित करती है कि ईरानी अथवा मध्य एशिया प्रभावों वाले प्रवासियों का बड़ी संख्या में आगमन हुआ। दंड विवर, कुल्हाड़ियाँ, और तांबे की पिनें, जिनके सिरे कुडलाकार अथवा अलंकृत थे, जैसी यहाँ मिली हैं वैसी ईरानी बस्तियों में भी मिली हैं। पत्थर अथवा प्रकाशित वस्तु की गोलाकार मुहरें और कांस्य प्रसाधन जार सिंधु के पश्चिम की संस्कृतियों से संपर्क के सूचक हैं।

5.13.2 भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश

सिंधु नदी के पश्चिम के क्षेत्र बलूचिस्तान और भारत-ईरानी सीमांत प्रदेश में भी उन लोगों के रहने के प्रमाण मिले हैं जो ठप्पेदार ताम्र मुहरे और ताम्र दंड विवर कुल्हाड़ियाँ इस्तेमाल

करते थे। शाही टम्प मुंडीगाक, नौ शहरों और पीरक जैसे स्थलों पर लोगों के ईरान से आवागमन और सम्पर्कों के प्रमाण मिले हैं। दुर्भाग्यवश हम बस्तियों का काल निर्धारण अभी तक स्पष्ट रूप में नहीं किया जा सका है।

5.13.3 पंजाब, हरियाणा और राजस्थान

पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों में ऐसी अनेक बस्तियों की सूचना मिली है जहाँ नगरों के ह्रास के बाद भी लोग उसी पुराने तरीके से रहते आ रहे थे। तथापि, मृद्भांड परम्परा पर हड़प्पा-सभ्यता के प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण हो रहे थे और स्थानीय मृद्भांड परम्पराओं ने हड़प्पा मृद्भाण्ड परम्परा का पूरी तरह स्थान ले लिया। इस प्रकार, इन क्षेत्रों में प्रादेशिक परम्पराओं के अक्षुण्ण बने रहने से नगर रूप का ह्रास प्रतिबिम्बित होता है। मीताथल, रोपड़ और सीसवाल के स्थल सुप्रसिद्ध हैं। बाड़ा और सीसवाल में ईंटों के मकान मिले थे। इनमें से कई स्थलों में गैरिक मृद्भांड मिले हैं। प्राचीन भारत में अनेक प्रारंभिक ऐतिहासिक स्थलों में ऐसे मृद्भांड मिले हैं इसलिए पंजाब, हरियाणा और राजस्थान की ये ग्राम्य संस्कृतियाँ परवर्ती हड़प्पा परम्परा से संबद्ध हैं और प्रारंभिक भारतीय परम्परा का पूर्व ज्ञान कराती हैं। इन पर परवर्ती हड़प्पा प्रभाव अल्प मात्रा में दिखाई देते हैं। यह केंद्र भारतीय सभ्यता के बाद के चरण का केंद्र बिन्दु बना।

उत्तर हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तन हरियाणा से। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-9।

5.13.4 कच्छ और सौराष्ट्र

कच्छ और सौराष्ट्र में नगर चरण का अंत रंगपुर और सोमनाथ जैसे स्थानों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। नगर चरण में भी उनकी हड़प्पा मृद्भांड परम्परा के सह अस्तित्व में स्थानीय मृद्भाण्ड परम्परा थी। यह परम्परा बाद के चरणों में भी बनी रही। रंगपुर जैसे कुछ स्थल बाद के काल में अधिक समृद्ध हो गए प्रतीत होते हैं। वे जिन मृद्भांडों का उपयोग करते थे उन्हें ''चमकीले लाल भांड'' कहा जाता है तथापि लोगों ने दूरस्थ क्षेत्रों से आयातित औज़ार तथा सिंधु कालीन बाट और लिपी का उपयोग बंद कर दिया। अब वे स्थानीय रूप से उपलब्ध पत्थरों से बने पत्थरों के औज़ार काम में ला रहे थे।

''विकसित हड़प्पा'' चरण में गुजरात में 13 बस्तियाँ थीं। परवर्ती हड़प्पा चरण में जिसका काल लगभग 2100 बी.सी.ई. है, बस्तियों की संख्या 200 या इससे और अधिक तक पहुँच गई। बस्तियों की संख्या में यह वृद्धि जो जनसंख्या की वृद्धि की द्योतक है, केवल जैविक कारणों से ही नहीं हुई थी। पूर्व आधुनिक समाजों में जनसंख्या कुछ ही पीढ़ियों में इतनी अधिक नहीं बढ़ सकती थी कि 13 बस्तियाँ बढ़कर 200 या और अधिक हो जाएँ। इस प्रकार इस बात की निश्चित संभावना है कि इन नई बस्तियों में रहने वाले लोग अन्य क्षेत्रों से आए होंगे। परवर्ती हड़पपा बस्तियाँ महाराष्ट्र में भी बताई गई हैं जहाँ उनकी संस्कृति उभरने वाले कृषि समुदायों की संस्कृतियों में विलीन हो गई।

5.14 हड़प्पा परम्परा का प्रसार

नगरों की समाप्ति का यह अर्थ नहीं था कि हड़प्पा समुदाय आसपास के कृषि समूहों में विलीन हो गए। तथापि व्यवस्था और अर्थव्यवसथा में केंद्रीय निर्णायन कार्य समाप्त हो गया था। जो हड़प्पा समुदाय नगर चरण के बाद भी बने रहे, उन्होंने अवश्य ही अपनी पुरानी परम्पराओं को बनाए रखा होगा। इस बात की संभावना है कि हड़प्पा निवासी किसानों ने अपनी पूजा का रूप बनाए रखा होगा। हड़प्पा नगर केंद्रों के पुरोहित अत्यन्त संगठित शिक्षित परम्परा के अंग थे। साक्षरता समाप्त हो गई थी, तब भी संभावना है, उन्होंने अपनी धार्मिक प्रथाएँ बनाए रखी होंगी। बाद के प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के प्रभावी समुदाय ने अपने आप को ''आर्य' कहा। संभवतः हड़प्पा निवासियों के पुरोहित समूह आर्यों के शासक समूहों के साथ घुल-मिल गए। इस प्रकार हड़प्पा कालीन धार्मिक परम्पराओं का ऐतिहासिक भारत में प्रसार हुआ। लोक समुदायों ने दस्तकारी की अपनी परम्पराएँ भी बनाए रखी, जो मृद्भांड और औज़ार निर्माण परम्पराओं से स्पष्ट होता है। इस बार फिर जब शिक्षित नगरीय संस्कृति प्रारंभिक भारत में उदय हुई। उसने लोक संस्कृतियों के मूल तत्व समाविष्ट कर दिए। इससे हड़प्पा परम्परा के प्रसार का अधिक कारगर माध्यम मिला।

ह्रास के सिद्धांत-II

क्रमिक ह्रास के सिद्धांत

पारिस्थितिक असंतुलन के कारण ह्रास

साक्ष्य

1) यह गणना कि इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन इसलिए बिगड़ रहा था, क्योंकि मनुष्यों और मवेशियों की आबादी से वनों, खाद्य और ईंधन के अल्प साधन समाप्त होते जा रहे थे।
2) वनों के नष्ट होने से बाढ़ और सूखों की संख्या में वृद्धि हो रही थी।
3) कस्बों में लोग गुजरात और पूर्व के क्षेत्रों में चले गए।
4) ह्रास की यह प्रक्रिया आसपास की बस्तियों से हुए हमलों और धावों से पूरी हुई।

आलोचना

1) इस क्षेत्र में जमीन आज भी उपजाऊ है। इससे जमीन की शक्ति क्षीण हो जाने की प्राक्कल्पना उचित सिद्ध नहीं होगी।
2) यह प्राक्कल्पना प्रमाणित किए जाने से पहले हड़प्पा कस्बों की जरूरतों की गणना के लिए और अधिक सूचना जरूरी है।

ह्रास नहीं हुआ अथवा निरन्तरता प्राक्कल्पना

पारिस्थितिक तर्क सिंधु घाटी में मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंधों पर ही केंद्रित है। ह्रास को स्पष्ट करने में आई समस्याओं के कारण विद्वानों ने -

क) ह्रास के कारणों की खोज बन्द कर दी।

ख) हड़प्पा-सभ्यता की निरन्तरता को भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में देखा

ग) स्वीकार किया गया कि नगरों का ह्रास हुआ और मुहरों, लेखन, मृद्भांड जैसी कुछ परंपराएँ समाप्त हो गईं।

5.15 हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष

पशुपति (शिव) और मातृ देवी की उपासना और लिंग पूजा हम तक संभवतः हड़प्पा परम्पराओं से पहुँची है। इसी प्रकार पवित्र स्थानों, नदियों या वृक्षों या पवित्र पशुओं की उपासना स्पष्टतः भारत के बाद की ऐतिहासिक सभ्यता में भी जारी रही। कालीबंगन और लोथल में अग्नि पूजा बलि का साक्ष्य भी महत्वपूर्ण है। यह बौद्धिक धर्म के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य बन गये। क्या आर्यों ने यह प्रथाएँ हड़प्पा के पुरोहित वर्ग से सीखी थीं? इस प्राक्कल्पना के लिए और अधिक साक्ष्य की आवश्यकता है, पर ऐसा होने की संभावना तो है ही।

मकानों के नक्शे, जल-आपूर्ति व्यवस्था और स्नान पर ध्यान जैसे घरेलू जीवन के अनेक पहलू इन बस्तियों में बाद के कालों में भी जारी रहे। भारत की पारम्परिक तोल और मुद्रा की प्रणाली जो इकाई के रूप में सोलह के अनुपात पर आधारित थी, हड़पपा-सभ्यता काल में भी विद्यमान थी। ये उन्हीं से ली गई प्रतीत होती है। आधुनिक भारत में कुम्हार का चाक बनाने की प्रविधि हड़प्पावासियों द्वारा अपनाई गई प्रविधियों के समान ही है। आधुनिक भारत में इस्तेमाल की जाने वाली बैल गाड़ियों और नावें हड़प्पा के नगरों में भी विद्यमान थीं। अतः हम कह सकते हैं कि हड़प्पा-सभ्यता के अनेक तत्व परवर्ती ऐतिहासिक परम्परा में भी जीवित रहे।

छिद्रित बर्तन। स्रोत : ई.एच. आई.-02, खंड-2, इकाई-9।

लोथल में पाख़ाना जल निकास प्रणाली के पुरातात्विक अवशेष। भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण संख्या एनजीजे-60। श्रेय : अभिषेक डीवीबीके। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:The_drainage_system_at_Lothal_2.JPG)।

बोध प्रश्न 4

1) पारिस्थितिक असंतुलन का सिद्धांत स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि

(सही उत्तर पर (✓) का निशान लगाएँ)।

i) इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि भूमि सिंधु घाटी क्षेत्र में आज क्यों भी उपजाऊ बनी हुई है? ( )

ii) हड़प्पा कस्बों की जरूरतों के संबंध में बताने के लिए हमारे पास पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं। ( )

iii) कस्बों के लोग हड़प्पा में रहते रहें। ( )

iv) (i) और दोनों (ii) सही हैं। ( )

2) सही विवरण पर (✓) निशान लगाएँ।

विद्वान आजकल

i) हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के नए कारण खोज रहे हैं। ( )

ii) उन्होंने हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के नए कारण खोजना बंद कर दिया है। ( )

iii) इस बात की खोज कर रहे हैं कि परवर्ती बस्तियों में हड़प्पा-सभ्यता का क्या-क्या बचा? ( )

iv) (i) और (ii) दोनों। ( )

3) हड़प्पा-सभ्यता में क्या-क्या बचा है उसके महत्व पर लगभग 50 शब्दों में प्रकाश डालें।

....

....

....

....

....

5.16 सारांश

भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए हड़प्पा की सभ्यता की खोज का विशेष महत्व है। यह खोज भारतीय इतिहास को और पीछे ले गयी तथा यह बात सामने आई है कि हड़प्पा सभ्यता मिश्र और मेसोपोटामिया जैसी विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं के समकालीन थी। हड़प्पा सभ्यता की खोज का मुख्य श्रेय पुरातात्विक स्रोतों को जाता है। इस इकाई में आपने उस प्रक्रिया के बारे में जिसके द्वारा इस सभ्यता की खोज हुई, जिन आवश्यकताओं से आरंभिक हड़प्पा की सभ्यता गुजरी, इन अवस्थाओं के ब्यौरे, इसके क्रमिक विकास और अनेक क्षेत्रों में इसके विस्तार के बारे में पढ़ा।

हमने देखा है कि विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता के आकस्मिक ह्रास के विभिन्न सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं। लेकिन इन सभी सिद्धांतों को पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में छोड़ना पड़ेगा। धीरे-धीरे विद्वानों ने हड़प्पा-सभ्यता के ह्रास के कारण खोजना बंद कर दिया है। अब हड़प्पा-सभ्यता

के परवर्ती चरण को समझने पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। इसका इसलिए अध्ययन किया जा रहा है ताकि हड़प्पा-सभ्यता की वे निरन्तरताएँ प्रकाशित की जा सकें जो उस समय के समृद्ध कृषि समुदायों में जीवित रही होंगी। और निस्संदेह हड़प्पा-सभ्यता की कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं जो ऐतिहासिक चरण में भी चलती रहीं।

5.17 शब्दावली

मोहर : साख या पत्थर अथवा किसी अन्य वस्तु का टुकड़ा जिसमें कोई आकृति बनी होती है। उसे प्रमाणीकरण के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

ठप्पा : वह वस्तु जिसमें मोहर की छाप हो

रेडियो कार्बन डेटिंग : इसे सी-14 डेंटिंग भी कहते हैं। यह निर्जीव कार्बनिक पदार्थ में रेडियोधर्मी आइसोटोप को मापने की विधि है। यह रेडियेधर्मी आइसोटोप ज्ञात एवं परिकल्पनीय दर से लुप्त हो जाता है।

खानाबदोशी (यायावरी) : पशुचारी और चारे की तलाश में घूमने वाले समुदायों से जुड़ी जीवन-शैली। ये लोग एक ही स्थान पर नहीं ठहरते बल्कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं।

पशुचारी खानाबदोशी : पशु और भेड़ बकरियों को चराने वाले लोगों से जुड़ा सामाजिक संगठन जो चरागाहों की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं।

कालक्रम : समय-निर्धारण करने की विधि।

कछारी जलोढ़ मैदान : नदी किनारे के आस-पास का क्षेत्र जिस पर बाढ़ के समय नदी गाद जमा करती है।

पारिस्थितिकी : पौधों का पशुओं या मनुष्यों का संस्थाओं का पर्यावरण के संबंध में अध्ययन।

विवर्तनिक उत्थापन : वह प्रक्रिया जिससे पृथ्वी के धरातल के बहुत बड़े क्षेत्र ऊपर उठ जाते हैं।

आर्य : एक जन समूह जो संस्कृत लैटिन और ग्रीक आदि यूरोपीय भाषाएँ बोलता था।

दास और दस्यु : *ऋग्वेद* में उल्लिखित लोग। आर्यों का उनके सरदारों के साथ *संघर्ष* रहता था।

गैरिक मृद्भांड : उच्च गंगा मैदानों में पाए जाने वाले मृद्भांड। ये उन तलों पर पाए गए हैं जो प्रारंभिक भारतीय ऐतिहासिक मृद्भांड के आधार हैं।

परवर्ती तल : जिन पुरातात्विक स्थलों की खुदाई की जाती है वे अपने कालों के अनुसार परतों अथवा आवास तलों में विभक्त किए जाते हैं। अतः परवर्ती अथवा सबसे

कम पुराना बस्ती तल स्थल के शीर्ष के पास होगा और सबसे पुराना सबसे नीचे की परत पर होगा।

रिहायशी संचय : जिस स्थल की खुदाई हो गई है, उसके प्रत्येक तल पर मृद्भांड आदि के रूप में यह दर्शाने के लिए साक्ष्य होंगे कि उस स्थल पर रिहायश थी। ये संचय रिहायशी संचय कहलाते हैं।

गाद : बहती हुई नदी के तटों पर जमा तलछट।

5.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ×

2) भाग 5.6 को देखें।

बोध प्रश्न 2

1) (i) ✓ ii) ✓ iii) × iv) ×

2) भाग 5.8 व 5.9 को देखें।

बोध प्रश्न 3

1) (ii), 2) (iv)

3) उपभाग 5.11.4 देखें। आपके उत्तर में भौतिक साक्ष्य और लिखित साक्ष्य दोनों शामिल होने चाहिए।

बोध प्रश्न 4

1) (iv), 2) (iv)

3) भाग 5.15 देखें। आपके उत्तर में यह स्पष्ट होना चाहिए कि इसमें हड़प्पा परंपरा की निरतंरता का संकेत कैसे मिलता है।

3.12 संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल, डी.पी. और *चक्रवर्ती*, डी.के. (1979) ऐड *ऐसैज इन इंडियन प्रोटो-हिस्ट्री*, नई दिल्ली।

ऑलचिन, ब्रिजैड और एफ.आर. (1988) *द राईज ऑफ सिविलाईजेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान*, सिलेक्ट बुक सर्विस, नई दिल्ली।

कोसाम्बी, डी.डी. (1987) *द कल्चर एण्ड सिविलाईजेशन ऑफ ऐंशियण्ट इण्डिया इन इट्स हिस्टोरिकल आऊटलाईन*, विकास, नई दिल्ली।

लाल, बी.बी. और गुप्ता, एस.पी. (1982) (ऐडिटेड) *फ्रण्टियर्स ऑफ द इंड्स सिविलाईजेशन*, नई दिल्ली।

मार्शल, जोन (1973) *मोहनजोदड़ो एण्ड द इंड्स सिविलाईजेशन*, वॉल्यूम-I और II, (पुनर्प्रकाशित)।

इकाई 6 हड़प्पा सभ्यता : भौतिक विशेषताएँ, सम्पर्कों का रूप, समाज और धर्म

इकाई की रूपरेखा

* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-2 से ली गई है।

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार और भौतिक विशेषताओं का विवरण है। इसमें हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य बस्तियों और उन भौतिक अवशेषों के बारे में बताया गया है जो इन बस्तियों की विशेषताओं को उजागर करते हैं। हड़प्पा-सभ्यता के समाज तथा उनकी विभिन्न धार्मिक रीतियों पर प्रकाश डाला जायेगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह समझ पाएँगे कि प्रारंभिक हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के बीच जनसंख्या और भौतिक परंपराओं की निरंतरता कायम थी;
- हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के क्रमिक विकास के भौगोलिक तथा जलवायु संबंधी पहलुओं से परिचित हो सकेंगे;
- हड़प्पा-सभ्यता के महत्त्वपूर्ण केंद्रों की विशिष्ट भौगोलिक, जलवायु और जीवन-निर्वाह संबंधी विशेषताओं का उल्लेख कर पाएँगे;
- यह जान सकेंगे कि हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य बस्तियों की भौतिक विशेषताएँ क्या थीं और विशेषकर यह कि इन बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में किस तरह की एकरूपताएँ पाई गई हैं;
- यह व्याख्या कर सकेंगे कि हड़प्पा निवासियों ने दूरस्थ देशों से संपर्क स्थापित करने की कोशिश क्यों की थी;
- हड़प्पाकालीन नगरों तथा आस-पास के क्षेत्रों के बीच संपर्क के स्वरूप को समझ सकेंगे;
- हड़प्पा निवासियों के समकालीन पश्चिमी एशिया की संस्कृति के साथ व्यापार और विनियम क्रियाकलापों के बारे में जान सकेंगे;
- इस संपर्क के स्वरूप और विनिमय तंत्र के बारे में जिन स्रोतों से पता चलता है उनके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- उनकी वेश-भूषा एवं खान-पान के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- उनकी भाषा एवं लिपि से संबंधित मतभेद पर चर्चा कर सकेंगे;
- उनके मुख्य व्यवसायों के प्रति अवगत हो सकेंगे;

- शासक वर्गों के स्वरूप को समझ सकेंगे;
- उनकी धार्मिक रीतियों एवं मुख्य देवताओं के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; और
- उनके अंतिम संस्कारों के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई से हम चरागाही और खेतिहर जातियों तथा छोटे-छोटे कस्बों की नींव पर पनपी हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार और इसकी भौतिक विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

प्रारंभिक हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता के बीच जनसंख्या और भौतिक परम्पराओं की निरंतरता बनी हुई थी। इसमें हड़प्पा-सभ्यता के भौगोलिक विस्तार के अलावा कुछ महत्त्वपूर्ण केंद्रों के संबंध में भी विशेष चर्चा की गई है। इस इकाई में आपको हड़प्पा-सभ्यता की नगर योजना, महत्त्वपूर्ण इमारतों, कला एवं शिल्प, घरों की बनावट, मिट्टी के बर्तन, औज़ार तथा उपकरण और जीवन-निर्वाह के तरीकों, लिपि आदि की जानकारी देने का प्रयास किया गया है। अन्त में, हड़प्पा की बस्तियों की भौगोलिक विशेषताओं में पाई गई एकरूपताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

हड़प्पाकालीन संस्कृति की विशेषता वहाँ असंख्य छोटे-बड़े नगरों उपस्थिति थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे शहरों के अलावा अल्लाहदीनों (कराची के पास) जैसी बहुत सी छोटी बस्तियों से भी ऐसे प्रमाण मिले हैं जो शहरी अर्थव्यवसथा के सूचक हैं। शहरी अर्थव्यवस्था की विशेषता यह है कि इनमें अंतर्संबंधों का तंत्र किसी क्षेत्रीय सीमा में बंधा नहीं होता। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि हड़प्पा से सैकड़ों मील दूर स्थित दूसरे शहरों और नगरों के लोगों से हड़प्पावासी किस प्रकार सक्रिय आदान-प्रदान में लगे रहते थे। इस इकाई में इस बात की व्याख्या की गई है कि शहरों में व्यापारतंत्र क्यों स्थापित किया गया? साथ ही अंतर्क्षेत्रीय व्यापार के तरीकों का भी जिक्र इसमें किया गया है। इसमें कच्चे माल के स्रोतों और समकालीन पश्चिमी एशिया के साथ संपर्क का भी उल्लेख है। विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों से हड़प्पा सभ्यता के विषय में पता चलता है और इस इकाई में इसके बारे में भी बताया गया है।

अंत में हम हड़प्पा के समाज व धर्म की चर्चा करेंगे। हमारी यह जानने की जिज्ञासा हो सकती है कि हड़प्पा वासी देखने में कैसे लगते थे? क्या वे वैसे ही वस्त्र पहनते थे जैसे कि हम पहनते हैं? वे क्या पढ़ते-लिखते थे? नगरवासी किस प्रकार के व्यवसाय अपनाते थे? वे कौन सी भाषा बोलते थे? क्या खाते थे? क्या वे चाय के साथ आलू चिप्स खाते थे? क्या वे खेलना पसंद करते थे और युद्ध करते थे? उनके शासक कौन होते थे? उनके मंदिर एवं देवी-देवता कैसे होते थे? क्या वे हम जैसे थे? यह सारे प्रश्न वस्तुतः काफी सरल प्रतीत होते हैं लेकिन विद्वानों के लिए इनके उत्तर देना अत्यंत कठिन होता है। इसका कारण उस युग की जानकारी प्राप्त करने के लिए उपलब्ध स्रोतों का स्वरूप है। इसका मुख्य स्रोत विभिन्न स्थानों पर हुई खुदाई से प्राप्त केवल पुरातात्विक जानकारी है।

इस सभ्यता के संदर्भ में हमारे वर्तमान ज्ञान को देखते हुए विचारों और भावनाओं से जुड़े विभिन्न प्रश्नों का उत्तर कठिनाइयाँ खड़ी करता है। कभी-कभी ऐसे प्रश्न जो प्रत्यक्षतः अत्यंत सरल नजर आते हैं उत्तर देते समय अत्यंत कठिन प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे प्रश्न का उत्तर कि क्या हड़प्पा के लोग अकीक पत्थर की मालायें बनाने में सुख का अनुभव करते थे, काफी मुश्किल हो सकता है। हम केवल हज़ारों वर्षों से पड़ी मूक, बेजान वस्तुओं के आधार पर विचारों से संबंधित कुछ प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं जिसका प्रयास इस इकाई में किया जायेगा।

6.2 गाँवों के कस्बों और नगरों की ओर

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि किस तरह चरागाही घुमन्तु और खेतिहार समुदाय सिन्धु के मैदान में आकर बसे। किस तरह छोटे-छोटे नगर और कस्बे आबाद हुए जिन्होंने दूर-दूर के देश-प्रदेशों से सम्पर्क कायम किया। आगे चलकर इन्हीं खेतिहर समुदायों और छोटे-छोटे नगरों की नींव पर ''हड़प्पा-सभ्यता'' पनपी। ''हड़प्पा-सभ्यता'' में बड़े-बड़े नगरों की मौजूदगी उसका एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। इसका अर्थ यह भी है कि उस समय कुशल कारीगर थे, दूर-दूर तक व्यापार होता था, समाज में धनी और निर्धन दोनों तरह के लोग रहते थे और राजा हुए करते थे। वे विशेषताएँ तो आमतौर पर सभी सभ्यताओं में पाई जाती है, किन्तु हड़प्पा-सभ्यता की अपनी कुछ अलग विशेषताएँ भी थीं। हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष जिस भौगोलिक क्षेत्र में पाए गए हैं, उस क्षेत्र में रहने वाले समुदाय एक ही लिखित लिपि का प्रयोग कर रहे थे। हड़प्पा का कोई भी समुदाय, भले ही उस समय वह राजस्थान में था या पंजाब में या सिंध में, नाप-तोल के लिए एक ही तरह के बाट और तराजू का इस्तेमाल करता था। वे तांबा और कांसे से निर्मित जिन औज़ारों का प्रयोग करते थे, वे बनावट, शक्ल और आकार में एक जैसे होते थे। उनके द्वारा प्रयोग में लाई गई ईंटों का अनुपात 4:2:1 था। उनके कुछ नगरों में बनी इमारतों, किलों आदि की बनावट में भी एकरूपताएँ थी। उस पूरे भौगेलिक क्षेत्र में, जहाँ हड़प्पा-सभ्यता के नगर मौजूद थे, मोहरों, शंख से बनी चूड़ियों, लाल पत्थर के बने मनकों और सेलखड़ी से बने गोल चपटे मनकों की बनावट एक-सी होती थी। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों को अधिकतर गुलाबी रंग के मिट्टी के बर्तनों से पहचाना जाता है। इन मिट्टी के बर्तनों का ऊपरी भाग लाल रंग का होता था। मिट्टी के इन बर्तनों पर काले रंग से पेड़ों, पशु-पक्षियों के एक ही प्रकार के चित्र बने होते थे और ज्यामिती की आकृतियों को चित्रित किया जाता था। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की भौतिक विशेषताओं में पाई जाने वाली ये एकरूपताएँ ही हड़प्पा-सभ्यता की मुख्य विशेषताएँ थीं।

6.3 हड़प्पा-सभ्यता : स्रोत

हड़प्पा-सभ्यता के बारे में जानकारी हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नामक बस्तियों की खुदाई की रिपोर्टों से प्राप्त होती है। हड़प्पा में खुदाई 1921 में आरंभ हुई। तब से कई हड़प्पा की बस्तियों का पता लगाया जा चुका है और वहाँ खुदाई की गई है। सर जॉन मार्शल और सर मॉर्टिमर व्हीलर जैसे ख्याति-प्राप्त पुरातत्वविदों ने हड़प्पा की बस्तियों की खुदाई की है। इन विद्वानों ने वहाँ मिले भौतिक अवशेषों का गहराई से अध्ययन किया है तथा अतीत की कहानी को पुनः स्थापित किया है। चूंकि उन अवशेषों पर लिखे शब्दों को पढ़ा नहीं जा सकता, इसलिए हड़प्पा के लोगों द्वारा प्रयोग किए गए शिल्प-अवशेषों के अध्ययन के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अब तक 1000 से ज्यादा ऐसी बस्तियों की खोज की जा चुकी है जिनमें हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष मौजूद हैं। फिर भी, इनमें से अधिकांश बस्तियों की खुदाई नहीं की गई है। एक अनुमान के अनुसार, अब तक जितनी हड़प्पा की बस्तियों का पता लगाया गया है, उनमें से केवल तीन प्रतिशत की ही खुदाई की गई है। जिन स्थानों पर खुदाई का कार्य किया गया है, वहाँ भी अब तक कुल क्षेत्र के पाँचवें हिस्से के बराबर क्षेत्र में ही खुदाई की गई है। हाकड़ा घाटी में गंवेरीवाला और पंजाब में फुर्कस्लान नामक कुछ स्थान इतने बड़े हैं, जितना कि मोहनजोदड़ो, लेकिन खुदाई करने वालों ने उन्हें अभी तक छुआ भी नहीं है। इसका कारण यह है कि खुदाई के कार्य में बहुत धन खर्च होता है और बहुत अधिक जन-शक्ति की जरूरत पड़ती है। फिलहाल, भारत या पाकिस्तान की सरकारों के पास इन खुदाई के कार्यों के लिए पर्याप्त धन नहीं है। फिर भी, एक बात साफ है और वह यह कि जब हड़प्पा-सभ्यता के बारे में सामान्य अनुमान लगाया जाता है तो बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिए। कोई भी नई खोज या खुदाई की रिपोर्ट हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बारे में हमारे विचारों को

बहुत हद तक बदल सकती है। उदाहरण के तौर पर, मॉर्टिमर व्हीलर जैसे विद्वान का, जिन्होंने लगभग बीस वर्ष पहले लिखा था, यह विश्वास था कि सिन्धु घाटी में हड़प्पा सभ्यता पूरी तरह विकसित थी और उससे पहले की अवधि में जो लोग इन क्षेत्रों में रहते थे, उनके और हड़प्पा-सभ्यता के बीच कोई साम्य नहीं था। फिर भी, उपलब्ध सामग्री और नई-उत्खनन रिपोर्टों का गहराई से विश्लेषण करने पर पुरातत्वविदों को यह मानना पड़ा है कि हड़प्पा-सभ्यता का विकास सिन्धु घाटी और उसके आस-पास ही हुआ था और उसे विकसित होने में काफी समय लगा था। पहले वाली इकाई में आप ''प्रारंभिक हड़प्पा'' काल में हुई उन्नति के बारे में पढ़ चुके हैं। यह पाया गया है कि ''प्रारम्भिक हड़प्पा'' और हड़प्पा कालों के बीच आबादी और तकनीकी कौशल की निरंतरता थी। खेतिहर बस्तियों में विकास की प्रक्रिया जाहिर थी और बुनियादी शिल्प तथा विशिष्ट सिन्धु शैली संभवतः पहले की क्षेत्रीय परम्पराओं से प्रभावित थी। चूँकि हड़प्पा-सभ्यता का अध्ययन कई मायनों में अभी तक अधूरा है, इसलिए यह प्राचीन इतिहास के छात्रों के लिए बहुत ही चुनौतीपूर्ण विषय बना हुआ है।

चित्र : हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियाँ। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-6।

6.4 भौगोलिक विस्तार

विद्वानों का आम तौर पर यह विश्वास है कि हड़प्पा, घग्घर और मोहनजोदड़ो की अक्षरेखा हड़प्पा-सभ्यता का केंद्र-बिन्दु रहा होगा। अधिकांश हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियाँ इसी क्षेत्र में हैं। इस क्षेत्र में कुछ खास किस्म की एकरूपताएँ पाई जाती हैं। इस पूरे क्षेत्र की भूमि एकदम समतल और सपाट है, जो यह इंगित करती है कि यहाँ जीवन-यापन के तौर-तरीके एक जैसे थे। हिमालय से पिघली बर्फ और मानसून की वर्षा से यहाँ आने वाली बाढ़ के स्वरूप का पता लगता है। इससे खेती और चरागाही के लिए एक जैसी ही संभावनाएँ पैदा हुई होंगी। सिन्धु व्यवस्था के पश्चिम में कच्छी मैदान ईरानी सीमा-भूमि के अंतवर्ती क्षेत्र में स्थित है। यह एक समतल कछारी हिमानी धौत है जो बोलन दर्रे और मंचार झील के निचले भाग में स्थित है।

यह बंजर और शुष्क प्रदेश है, हरियाली कहीं-कहीं बाह्य इलाके में नजर आती है। नौशारो, जुदैरजोदड़ो और अली-मुराद जैसे स्थान इसी क्षेत्र में स्थित हैं। मकरन तट पर सुत्का-कोह और सुत्कागन-दोर बस्तियाँ बलूचिस्तान के पहाड़ी क्षेत्र के सबसे अधिक शुष्क भाग हैं। वे हड़प्पा-सभ्यता की पश्चिमी-सभ्यता सीमाएँ हैं। पूर्ववर्ती अफगानिस्तान में शार्तुघई में जो हड़प्पा की बस्तयाँ पाई गई हैं, वे हड़प्पा-सभ्यता की अलग-थलग बस्तियाँ रही होंगी।

हड़प्पा-सभ्यता की पूर्वी सीमाओं पर बड़गाँव, मनपुर और आलमगीरपुर जैसी बस्तियाँ थीं। यह इलाका अब उत्तरप्रदेश में है। गंगा-यमुना दोआब में स्थित इन स्थानों में जीवन-निर्वाह की व्यवस्था, उनकी भौगोलिक स्थिति के अनुकूल थी। इस क्षेत्र में वर्षा अधिक होती थी और यहाँ घने जंगल थे। यह इलाका चरागाही और खानाबदोशी के क्षेत्र से बाहर है और गेहूं उत्पादक क्षेत्र के अंतर्गत आता है। अतः इसमें बसने की समस्याएँ दूसरी तरह की थीं। सम्भवतः इसीलिए कुछ विद्वानों का मानना है कि इस क्षेत्र की अपनी स्वतंत्र संस्कृति थी, जिसे हड़प्पा-सभ्यता से प्रोत्साहन मिलता था। जम्मू में मांडा और पंजाब में रोपड़ वे स्थान हैं, जो भारत में हड़प्पा-सभ्यता के उत्तरी छोर कहलाते हैं। महाराष्ट्र में दैमाबाद और गुजरात में भगत्रव की बस्तियाँ हड़प्पा की दक्षिणी सीमाएँ रहीं होंगी।

गुजरात में भी बसावट का स्वरूप एक जैसा नहीं था। वहाँ कच्छ और काठियावाड़ छोटे-छोटे कटे हुए पठार थे और असमतल भूमि थी। दूसरी ओर, इस क्षेत्र में काम्बे की खाड़ी और कच्छ के रण से जुड़ा एक बहुत विशाल समुद्रतट था। गुजरात में हड़प्पा के लोग चावल और ज्वार-बाजरे का भोजन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सभ्यता बहुत बड़े क्षेत्र में फैली हुई थी। इसका क्षेत्र मेसोपोटामिया और मिश्र की समसामयिक सभ्यताओं से अधिक विस्तृत था। मेसोपोटामिया में बस्तियाँ नदीय मैदानों के पार घने समूहों में फैली हुई थीं। फिर भी, घग्घर-हाकड़ा क्षेत्र में बसी बस्तियों को छोड़कर हड़प्पा-सभ्यता की अन्य बस्तियाँ बहुत कम घनी थीं और बिखरी हुई थीं। राजस्थान और गुजरात में हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के बीच सैकड़ों किलोमीटर तक फैला रेगिस्तान और दलदल भरा इलाका था। शार्तुघई का सबसे निकट का हड़प्पा पड़ौसी 300 कि.मी. दूर था। इन खाली स्थानों में आदिम जातियाँ रहती रही होंगी जो उस समय भी शिकार-संग्रहण या चरागाही-खानाबदोशी द्वारा अपना भरण-पोषण कर रहीं थीं। इसी तरह, इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से हमें हड़प्पा-सभ्यता के किसी नगर में रहने वाली जनसंख्या के आकार का पता चलता है। विद्वानों का मत है कि हड़प्पा-सभ्यता के सबसे बड़े नगर मोहनजोदड़ो की जनसंख्या लगभग 35,000 थी। आधुनिक भारत के सबसे छोटे शहरों की भी आबादी बड़े से बड़े हड़प्पा-सभ्यता के शहरों की आबादी से अधिक होगी। यह याद रखने योग्य बात है कि हड़प्पा काल में परिवहन का सबसे तेज रफ्तार का माध्यम बैलगाड़ी हुआ करती थी, लोहे से लोग अनजान थे और हल के इस्तेमाल को क्रांतिकारी खोज समझा जाता था। ऐसी पुरातन तकनीक का सहारा लेकर जो सभ्यता दूर-दूर तक बिखरे क्षेत्रों को सामाजिक-आर्थिक संबंध के जटिल जाल में पिरोने में सफल रही, उसके लिए उन दिनों यह एक चमत्कारिक उपलब्धि थी।

6.5 महत्त्वपूर्ण केंद्र

अब सवाल यह उठता है कि हड़प्पा के लोगों ने अफगानिस्तान में शार्तुघई या गुजरात में सुरकोटड़ा जैसे दूरवर्ती स्थानों को अपने कब्जे में लाने की कोशिश क्यों की? इस सवाल का जवाब हमें मिल सकता है यदि हम कुछ महत्त्वपूर्ण केंद्रों की भौगोलिक स्थिति और विशेषताओं से संबंधित विवरण की जांच करें।

6.5.1 हड़प्पा

हड़प्पा पहली बस्ती थी, जहाँ खुदाई की गई। सन् 1920 से आरंभ करके आगे के वर्षों में दयाराम साहनी, एम.एस. वत्स और मॉर्टिमर व्हीलर जैसे पुरातत्वविदों ने हड़प्पा में खुदाई का कार्य किया। यह बस्ती पश्चिमी पंजाब में रावी के तट पर स्थित है। इसके आकार और इधर पाई गई वस्तुओं की विविधता की दृष्टि से यह बस्ती हड़प्पा-सभ्यता का प्रमुख नगर मानी जाती है। इस नगर के अवशेष लगभग 3 मील के घेरे में फैले हुए हैं। लेकिन हैरानी की बात यह है कि हड़प्पा के इधर-उधर या आस-पास बस्तियों का कोई नामो-निशान नहीं है। हड़प्पा में जनसंख्या का एक बड़ा भाग खाद्य उत्पादन से भिन्न क्रिया कलापों में लगा हुआ था। ये क्रियाकलाप प्रशासन, व्यापार, कारीगरी या धर्म से संबंधित रहे होंगे। चूंकि ये लोग अपने लिए अन्न का उत्पादन नहीं कर रहे थे, इसलिए किसी दूसरे को उनके लिए यह कार्य करना पड़ता था। उत्पादकता कम थी और परिवहन के साधन अविकसित थे। अतः खाद्य उत्पादन न करने वाले इन लोगों के भरण-पोषण के लिए खाद्य उत्पादक क्षेत्रों में खाद्यान्न प्राप्त करने और ढोने के लिए बहुत लोगों को जुटाना पड़ता होगा। किन्तु ये क्षेत्र नगर से बहुत दूर नहीं रहे होंगे क्योंकि अनाज ढोने का काम बैलगाड़ियों और नावों द्वारा किया जाता था। कुछ विद्वानों का यह कहना है कि आस-पड़ोस के गाँवों के लोग नदियों में बाढ़ मैदानों में जगह बदल-बदल कर खेती करते रहे होंगे। हड़प्पा की भौगोलिक स्थिति का सबसे अलग-अलग होने का कारण यही बताया जा सकता है कि यह कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यापार मार्गों के मध्य स्थित था, जो आज तक प्रयोग में है। इन मार्गों ने हड़प्पा को मध्य एशिया, अफगानिस्तान और जम्मू से जोड़ा। हड़प्पा की स्थिति इसलिए उत्कृष्ट मानी जाती थी क्योंकि यहाँ दूर-दूर से आकर्षक वस्तुएँ लाई जाती थीं।

हड़प्पा की किलेबंदी की दीवार, पाकिस्तान में स्मारक सं. पी.बी.-138 के रूप में पहचान। स्रोत : हसीब उर रहमान मलिक। विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Fortification_Wall.JPG)।

6.5.2 मोहनजोदड़ो

सिन्धु नदी के तट पर बसे सिंध प्रांत के लरकाना जिले में स्थित मोहनजोदड़ो को हड़प्पा-सभ्यता की सबसे बड़ी बस्ती माना जाता है। इस सभ्यता की नगर-योजना, गृह-निर्माण, मुद्रा, मुहरों आदि के बारे में अधिकांश जानकारी मोहनजोदड़ो से प्राप्त होती है। इस जगह खुदाई का काम 1922 में, आर.डी. बेनर्जी और सर जॉन मार्शल की देख-रेख में शुरू किया गया। बाद में मैके और जार्ज डेल्स ने भी खुदाई की। थोड़ी-थोड़ी खुदाई का काम और नक्शा तैयार करने का काम अस्सी के दशक तक चलता रहा।

बाएँ : मोहनजोदड़ो की किलेबंदी दीवारें। श्रेय : क्यूराटूलेन। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:City_walls_Moenjodaro.jpg)।
दायें : प्रोटो-शिव मुहर, मोहनजोदड़ो, लगभग 2600-1920 बी.सी.ई। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Shiva_Pashupati.jpg)।

खुदाई से पता चलता है कि लोग वहाँ बड़े लम्बे समय तक रहे और एक ही जगह पर मकानों का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करते रहे। इसी का यह परिणाम है कि इमारतों के अवशेषों और मलबे के ढेर की ऊँचाई लगभग पचहत्तर फीट है। मोहनजोदड़ो में बसावट के समय से बराबर बाढ़ आती रही। बाढ़ की वजह से जलोड़ मिट्टी इकट्ठी हो गई। सदियों से बराबर जमा होती गई गाद के कारण मोहनजोदड़ो के आस-पास की भूमि की सतह लगभग तीस फुट ऊँची हो गई। भू-जल तालिका का स्तर भी उसके अनुरूप बढ़ता चला गया है। अतः मोहनजोदड़ो में सबसे पुरानी इमारतें आजकल के मैदानी स्तर से लगभग 39 फुट नीचे पाई गई है। जल-तालिका में चढ़ाव के कारण पुरातत्व विशेषज्ञ इन स्तरों की खुदाई नहीं कर पाए हैं।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त कंकालों का एक चित्र। श्रेय : सोबन। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Painting_of_the_skeletons_found_during_the_digging.jpg)।

6.5.3 कालीबंगन

कालीबंगन की बस्ती राजस्थान में घग्घर नदी के सूखे तल के आस-पास स्थित है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस क्षेत्र में हड़प्पा की बस्तियों की संख्या सबसे अधिक थी। कालीबंगन की खुदाई 1960 के दशक में बी.के. थापर के निर्देशन में की गई थी। इस स्थान से पूर्व हड़प्पा और हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की मौजूदगी के प्रमाण मिले हैं। इससे पता चलता है कि हड़प्पा और कालीबंगन के लोगों के बीच धार्मिक विचारों में काफी अन्तर था। कुछ विद्वानों का मत है कि कालीबंगन हड़प्पा-सभ्यता के ''पूर्वी अधिकार क्षेत्र'' का हिस्सा रहा होगा। आज के हरियाणा, पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में हड़प्पा युग के बाड़ा, सीसवाल और आलमगीरपुर जैसी बस्तियाँ पाई गई हैं। यहाँ हड़प्पा काल के मिट्टी के बर्तनों के साथ-साथ कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले हैं जिनसे पता चलता है कि मिट्टी के बर्तन बनाने में इन बस्तियों की अपनी अलग स्थानीय परंपराएँ भी मौजूद थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सांस्कृतिक क्षेत्र और पूर्वी प्रान्तों के बीच कालीबंगन की स्थिति एक मध्यस्थ की रही होगी।

6.5.4 लोथल

गुजरात में रंगपुर, सुरकोटड़ा और लोथल जैसी बस्तियाँ पाई गई हैं। लोथल काम्बे की बाड़ी के तट से लगे सपाट क्षेत्र में स्थित है। ऐसा लगता है कि यह स्थान समकालीन पश्चिम एशियाई समाजों के साथ समुद्री व्यापार के लिए सीमा-चौकी के रूप में महत्त्वपूर्ण रहा होगा। इसके उत्खनक, एस.आर. राव ने वहाँ एक जहाजी पोतगाह (Dockyard) की खोज का दावा किया है।

6.5.5 सुत्कागन-दोर

सुत्कागन दोर पाकिस्तान-ईरान सीमा से लगे मकरान समुद्रतट के समीप स्थित है। आजकल यह बस्ती सूखे बंजर मैदानों के बीच स्थित है। इस शहर में एक किला था जिसके चारों ओर रक्षा के लिए पत्थर की दीवार थी। बंजर भूमि में इसके स्थित होने का कारण यही हो सकता है कि यहाँ एक बन्दरगाह था जिसकी व्यापार के लिए आवश्यकता थी।

बोध प्रश्न 1

1) हड़प्पा-सभ्यता के महत्त्वपूर्ण केंद्रों की भौगोलिक स्थिति का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित स्थानों को उनकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति से मिलाइए।

1) हड़प्पा	क) राजस्थान
2) कालीबंगन	ख) सिंध (पाकिस्तान)
3) मोहनजोदड़ो	ग) मकरान तट (पाकिस्तान-ईरान सीमा)
4) सुत्कागन दोर	घ) पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान)

3) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (x) का निशान लगाएँ :

i) हड़प्पा की सभ्यता का सबसे बड़ा केंद्र हड़प्पा है जो पश्चिमी पंजाब में स्थित है। ( )

ii) मोहनजोदड़ो हड़प्पा की सभ्यता की वह बस्ती है, जहाँ सबसे पहले खुदाई की गई। ( )

iii) हड़प्पा में खुदाई का कार्य सबसे पहले आर.डी. बेनर्जी और जॉन मार्शल ने किया। ( )

iv) विद्वानों का मत है कि हड़प्पा, घग्घर और मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की सभ्यता के आधार-बिन्दु हैं। ( )

6.6 भौतिक विशेषताएँ

इस भाग में हड़प्पा-सभ्यता की भौतिक विशेषताओं पर चर्चा की जाएगी। इसमें हड़प्पा-सभ्यता की नगर-योजना, मिट्टी के बर्तन, औज़ार और उपकरण, कला एवं दस्तकारी, लिपि और जीविका के स्वरूप पर विचार किया जाएगा।

6.6.1 नगर-योजना

मॉर्टिमर व्हीलर और स्टूआर्ट पिगोट जैसे पुरातत्वविदों का मत था कि हड़प्पा-सभ्यता के नगरों की संरचना और बनावट में असाधारण प्रकार की एकरूपता थी। प्रत्येक नगर दो भागों में बंटा होता था। एक भाग में ऊँचा दुर्ग होता था जिसमें शासक और राजघराने के लोग रहते थे। नगर के दूसरे भाग में शासित और गरीब लोग रहते थे। योजना की इस अभिन्नता का अर्थ यह भी है कि यदि आप हड़प्पा की सड़कों पर घूमने निकलें, तो आप पाएँगे कि वहाँ के घर, मंदिर, अन्न भण्डार और गलियाँ बिल्कुल वैसी ही हैं जैसी मोहनजोदड़ो की या हड़प्पा-सभ्यता के अन्य किसी भी नगर की। संकल्पना की अभिन्नता का यह विचार उन विदेशी समुदायों से लिया गया था जिन्होंने अकस्मात हमला करके सिन्धु घाटी को जीत लिया और नए नगरों का निर्माण किया। इन नगरों की योजना ऐसी की गई थी जिसमें कि वहाँ के मूल निवासियों को शासकवर्ग से अलग रखा जा सके। इस तरह, शासकों ने ऐसे किलों का निर्माण किया जिनमें वे आम जनता से अलग-थलग, शान से रह सकें। आजकल विद्वान अब इन विचारों को अस्वीकार कर रहे हैं कि हड़प्पा सभ्यता के नगरों का निर्माण अकस्मात हुआ और उनकी योजना में समरूपता थी। हड़प्पा सभ्यता के शहर नदियों के बाढ़ वाले मैदानों, रेगिस्तान के किनारों पर या समुद्री तट पर स्थित थे। इसका मतलब है कि अलग-अलग क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को तरह-तरह की प्राकृतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जब उन्होंने स्वयं को वातावरण के अनुकूल बढालना सीखा तो उन्हें अपनी नगर-योजना और जीवन शैली में भी विविधता लाने पर विवश होना पड़ा। बहुत सी बड़ी और महत्त्वपूर्ण इमारतें निचले नगर में स्थित थीं। अब कुछ महत्त्वपूर्ण बस्तियों की योजना पर फिर से विचार किया जाएगा।

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन बस्तियों की नगर-योजना में कुछ समानताएँ हैं। ये शहर दो भागों में विभाजित थे। इन शहरों के पश्चिम में किला बना होता था और बस्ती के पूर्वी सिरे पर नीचे एक नगर बसा होता था। यह दुर्ग या किला ऊँचे चबूतरे पर, कच्ची ईंटों से बनाया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग में बड़े-बड़े भवन होते थे जो संभवतः प्रशासनिक या धार्मिक केंद्रों के रूप में काम करते थे। निचले शहर में रिहायशी क्षेत्र होते थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में किलों के चारों ओर ईंटों की दीवार होती थी। कालीबंगन में, दुर्ग और निचले शहर दोनों के चारों ओर दीवार थी, निचले शहर में सड़कें उत्तर से दक्षिण की ओर जाती थीं और समकोण बनाती थीं। स्पष्टतः सड़कों और घरों की ओर पंक्तिबद्धता से पता चलता है कि नगर-योजना के बारे में वे लोग कितने सचेत थे। फिर भी, उन दिनों नगर आयोजकों के पास साधन बहुत सीमित थे। यह पूर्वधारणा मोहनजोदड़ो और कालीबंगन से मिले प्रमाणों पर आधारित है, यहाँ गलियाँ और सड़कें अलग-अलग ब्लॉकों में अलग-अलग तरह की हैं और मोहनजोदड़ो के एक भाग (मोनीर क्षेत्र) में सड़कों तथा इमारतों की पंक्तिबद्धता शेष क्षेत्रों से बिल्कुल भिन्न है। मोहनजोदड़ो का निर्माण एक सी सपाट इकाइयों में नहीं किया गया था। वास्तव में, इसका निर्माण अलग-अलग समय में हुआ। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में भवनों और इमारतों के लिए पक्की ईंटों का इस्तेमाल किया गया। कालीबंगन में कच्ची ईंटें प्रयोग में लाई गईं। सिंध में कोट-दीजी और आमरी जैसी बस्तियों में नगर की किलेबंदी नहीं थी। गुजरात में स्थित लोथल का नक्शा भी बिल्कुल अलग सा है। यह बस्ती आयताकार थी जिसके चारों तरफ ईंट की दीवार का घेरा था। इसका कोई आंतरिक विभाजन नहीं था, अर्थात् इसे दुर्ग और निचले शहर में विभाजित नहीं किया गया था। शहर के पूर्वी सिरे में ईंटों से निर्मित कुण्ड सा पाया गया, जिसे इसकी खुदाई करने वालों ने बन्दरगाहों के रूप में पहचाना है। कच्छ में सुरकोटड़ा नामक बस्ती दो बराबर के हिस्सों में बंटी हुई थी और यहाँ के निर्माण में मूलतः कच्ची मिट्टी की ईंटों और मिट्टी के ढेलों का इस्तेमाल किया गया था।

हड़प्पा-सभ्यता के निवासी पकी हुई और बिना पकी ईंटों का इस्तेमाल कर रहे थे। ईंटों का आकार एक जैसा होता था। इससे पता चलता है कि हर मकान मालिक अपने मकान के लिए ईंट स्वयं नहीं बनाता था, बल्कि ईंटें बनाने का काम बड़े पैमाने पर होता था। इसी तरह, मोहनजोदड़ों जैसे शहरों में सफाई की व्यवस्था उच्चकोटि की थी। घरों से बहने वाला बेकार पानी नालियों से होकर बड़े नालों से चला जाता था जो सड़कों के किनारे एक सीध में होते थे। इस बात से फिर वह संकेत मिलता है कि उस जमाने में भी कोई ऐसी नागरिक प्रशासन व्यवस्था रही होगी जो शहर के सभी लोगों के हित में सफाई संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए निर्णय लेती थी।

कुछ विशाल इमारतें

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और कालीबंगन में किले के क्षेत्रों में बड़ी विशाल इमारतें थीं जिनका प्रयोग विशेष कार्यों के लिए किया जाता होगा। यह तथ्य इस बात से स्पष्ट होता है कि ये इमारतें कच्ची ईंटों से बने ऊँचे-ऊँचे चबूतरों पर खड़ी की गई थीं। इनमें से एक इमारत, मोहनजोदड़ो का प्रसिद्ध ''विशाल स्नान कुण्ड'' है। ईंटों से बने इस कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई 12 x 7 मी. और गहराई 3 मी. है। इस तक पहुँचने के लिए दोनों तरफ सीढ़ियाँ हैं। कुण्ड के तल को डामर से जलरोधी बनाया गया था। इसके लिए पानी पास ही एक कक्ष में बने बड़े कुएँ से आता था। पानी निकालने के लिए भी एक ढलवां नाली थी। कुण्ड के चारों तरफ मण्डप और कमरे बने हुए थे। विद्वानों का मत है कि इस स्थान का उपयोग राजाओं, या पुजारियों के धार्मिक स्थान के लिए किया जाता था।

मोहनजोदड़ो का 'विशाल स्नान कुण्ड'। श्रेय : सकीब कय्युम। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Great_bath_view_Mohenjodaro.JPG)।

मोहनजोदड़ो के किले के टीले में पाई गई एक और महत्त्वपूर्ण इमारत है, अन्नभण्डार। इसमें ईंटों से निर्मित सत्ताईस खंड (Blocks) हैं जिनमें प्रकाश के लिए आड़े-तिरछे रोशनदान बने हुए हैं। अन्न भण्डार के नीचे ईंटों से निर्मित खांचे थे जिनसे अनाज को भण्डारण के लिए ऊपर पहुँचाया जाता था। हालांकि कुछ विद्वानों ने इस इमारत को अन्न-भण्डारण का स्थान मानने के बारे में संदेह व्यक्त किया है किन्तु इतना निश्चित है कि इस इमारत का निर्माण किसी खास कार्य के लिए किया गया होगा।

विशाल स्नान-कुण्ड के एक तरफ एक लम्बी इमारत (230 × 78 फुट) है जिसके बारे में अनुमान है कि वह किसी बड़े उच्चाधिकारी का निवास स्थान रहा होगा। इसमें 33 वर्ग फुट का खुला प्रांगण है और उस पर तीन बरांडे खुलते हैं। महत्त्वपूर्ण भवनों में एक 'सभा-कक्ष' भी था। इस सभा-कक्ष में पाँच-पाँच ईंटों की ऊँचाई की चार चबूतरों की पंक्तियाँ थीं। यह ऊँचे चबूतरे ईंटों के बने हुए थे और उन पर लकड़ी के खंभे खड़े किए गए थे। इसके पश्चिम की तरफ कमरों की एक कतार में एक पुरुष की प्रतिमा बैठी हुई मुद्रा में पाई गई है।

हड़प्पा की प्रसिद्ध इमारतों में से एक 'विशाल अन्नभण्डार' है। इसमें एक क्रम में ईंटों के चबूतरे (Platform) बने हुए थे जो अन्नभण्डारों के लिए नींव का काम देते थे। इन पर बने अन्न भण्डारों की दो कतारें थीं और प्रत्येक कतार में छः अन्नभण्डार थे। अन्न भण्डार के दक्षिण में ईंटों के गोल चबूतरों की कई कतारें थीं। फर्श की दरारों में पाया गया गेहूं और जौ का भूसा यह सिद्ध करता है कि इन गोल चबूतरों का इस्तेमाल अनाज गाहने (अनाज से भूसी अलग करने) के लिए किया जाता है।

कालीबंगन नगर मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की तुलना में छोटा था। यहाँ की गई खुदाई में सबसे महत्त्वपूर्ण खोज है अग्नि-कुण्डों का पाया जाना। यहाँ ईंटों के बने बहुत से चबूतरे पाए गए हैं। इनमें से एक चबूतरे पर एक पंक्ति में बने सात ''अग्नि कुण्ड'' और एक गड्ढे में पशुओं की हड्डियाँ तथा मृगश्रृंग पाए गए हैं।

घरों की बनावट

औसत दर्जे के नागरिक निचले शहर में भवन-समूहों में रहा करते थे। यहाँ भी घरों के आकार-प्रकार में विविधताएँ हैं। एक कोठरी वाले मकान शायद दासों के रहने के लिए थे।

हड़प्पा में अन्नभण्डार के नजदीक भी इसी तरह के मकान पाए गए हैं। दूसरे मकानों में आंगन और बारह तक कमरे होते थे और अधिक बड़े मकानों में कुएँ, शौचालय एवं गुसलखाने भी थे। इन मकानों का नक्शा लगभग एक जैसा था – एक चौरास प्रांगण और चारों तरफ कई कमरे। घरों में प्रवेश के लिए संकीर्ण गलियों से जाना पड़ता था। सड़क की तरफ कोई खिड़की नहीं होती थी। इसका मतलब यह हुआ कि मकान की ईंट की दीवारों का मुंह सड़क की ओर होता था।

हड़प्पा-सभ्यता के मकानों और नगरों के विवरण से पता चलता है कि ऐसे लोग भी थे जिनके पास बड़े-बड़े मकान थे। उनमें से कुछ तो विशिष्ट तरणताल में नहाते थे। अन्य लोग बैरकों (Barracks) में रहते थे। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बड़े-बड़े मकानों में रहने वाले लोग धनी वर्ग के थे जबकि बैरकों (Barracks) में रहने वाले लोग मजदूर और दास वर्ग के रहे होंगे।

निचले शहर के मकानों में काफी बड़ी संख्या में कर्मशालाएँ भी थीं। कुम्हारों के भट्टों, रंगसाजों के हौजों और धातु का काम करने वालों, सीपी-शंख के आभूषण बनाने वाले और मनके बनाने वालों की दुकानों की पहचान कर ली गई है।

6.6.2 मिट्टी के बर्तन

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाए गए अवशेषों में मिट्टी के बर्तन विशेष स्थान रखते हैं। इनमें बलूचिस्तान की मृत्तिका-शिल्प की परम्पराओं और सिन्धु व्यवस्था के पूर्व की संस्कृतियों का मेल हुआ जान पड़ता है। हड़प्पा की सभ्यता के मिट्टी के बर्तनों में से अधिकांश बिल्कुल सादे हैं, लेकिन काफी बर्तनों पर लाल पट्टी के साथ-साथ काले रंग से की गई चित्रकारी भी पाई गई है।

रंग से की गई चित्रकारी में विविध मोटाई की सपाट लाइनें, पत्तियों के नमूने, तराजू, चारखाने, जाली का काम, ताड़ और पीपल वृक्ष शामिल है। पक्षियों, मछलियों और पशुओं को भी दर्शाया गया है। इन बर्तनों की आकृतियों में खास हैं पैडेस्टल (Pedestal), बर्तन, थाली, पानपात्र, चारों ओर छिद्रित बेलनाकार बर्तन और विभिन्न तरह के कटोरे-कटोरियाँ। मिट्टी के बर्तनों पर बनी आकृतियों और चित्रकारी में एकरूपता के कारण स्पष्ट करना या बताना कठिन है। इस एकरूपता का सामान्यतः स्पष्टीकरण यही है कि मिट्टी के ये बर्तन स्थानीय कुम्हारों द्वारा बनाए जा रहे थे। किन्तु गुजरात और राजस्थान जैसे खेत्रों में अन्य अनेक तरह के बर्तन भी बनाए जा रहे थे। मिट्टी के कुछ बर्तनों पर मुद्रा के निशान पाए जाने से संकेत मिलता है कि कुछ खास किस्म के बर्तनों का व्यापार भी किया जाता था। फिर भी, अभी तक यह स्पष्ट नहीं है कि इतने विशाल क्षेत्र में मिट्टी के बर्तनों की परम्परा में एकरूपता कैसे संभव हुई।

6.6.3 औज़ार और उपकरण

हड़प्पा-सभ्यता के निवासियों द्वारा इस्तेमाल किए गए औज़ारों और उपकरणों के आकार-प्रकार तथा उत्पादन की तकनीक में भी आश्चर्यजनक एकरूपता दिखाई पड़ती है। वे तांबा, कांसा और पत्थर के बने औज़ार का प्रयोग करते थे उनके मूल औज़ार तांबे तथा कांसे के थे। इनमें चपटी कुल्हाड़ी, छैनी, चाकू हरावल और वाणाग्र मुख्य रूप से पाए जाते हैं।

सभ्यता के आगे के चरणों में वे छुरे, चाकू और चपटे तथा तीखी नोक वाले औज़ारों का भी प्रयोग करने लगे थे। वे कांसे और तांबे की ढलाई की तकनीक जानते थे। पत्थर के औज़ारों का भी आम इस्तेमाल होता ही था।
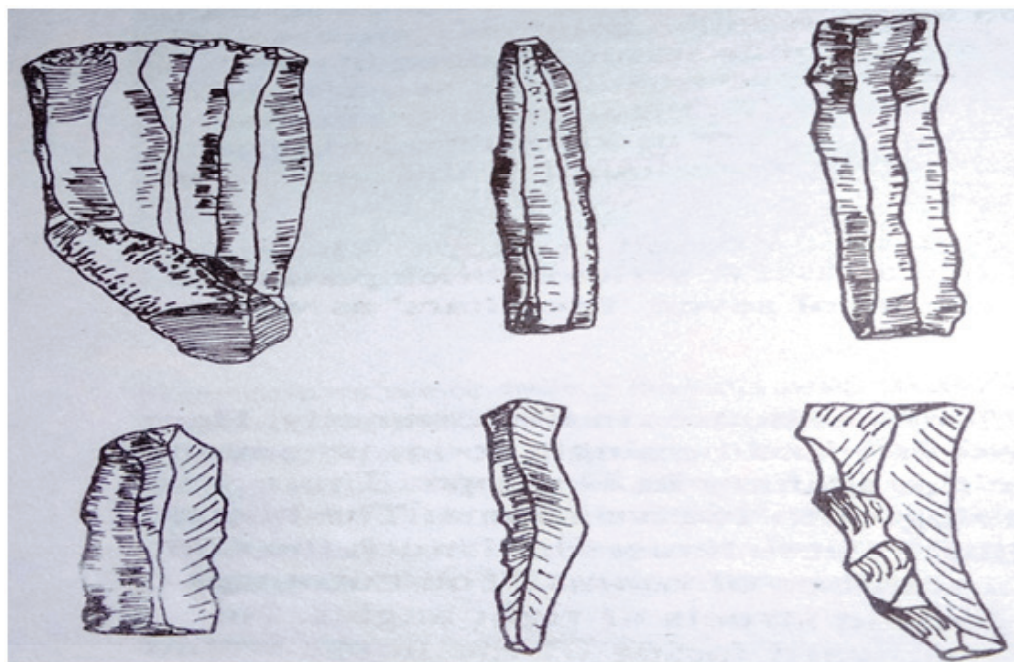
पत्थर के औज़ार (मोहनजोदड़ो)। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-06।
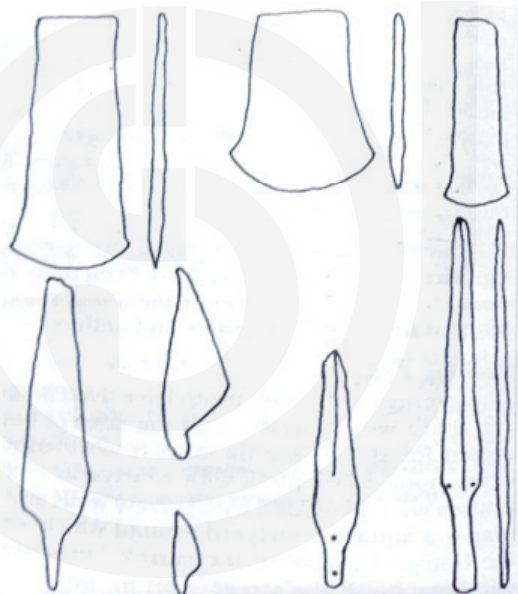
हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा काम में लाए जाने वाले तांबे और कांसे के औज़ार। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-6।

मछली पकड़ने के लिए कांटा। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-6।

सिंध में सुक्कुर जैसे उद्योग क्षेत्रों में इन औज़ारों का निर्माण बड़े पैमाने पर किया जाता था और फिर ये औज़ार विभिन्न शहरी केंद्रों को भेजे जाते थे। औज़ारों के आकार-प्रकार में एकरूपता का यही कारण था। ''प्रारम्भिक-हड़प्पा'' काल में औज़ार बनाने की परम्पराओं में विविधता थी, लेकिन बाद में हुई प्रगति के युग में हड़प्पा-सभ्यता के निवासियों ने लम्बे, पैनी धार वाले, सुव्यवस्थित औज़ारों का ही निर्माण किया जो उनकी उच्चस्तरीय क्षमता और विशिष्टता का संकेत देते हैं। पर, इन औज़ारों को सुन्दर बनाने और उनमें नवीनता लाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

6.6.4 कला और शिल्प

कलाकृतियों से यह जानकारी मिलती है कि समाज किस तरह अपने वातावरण, अपने परिवेश

और परिस्थितियों से जुड़ता है या जुड़ने की कोशिश करता है। कलाकृतियाँ हमें यह भी बताती हैं कि समाज, प्रकृति, मानव और ईश्वर के प्रति क्या विचार रखता है। पूर्व आधुनिक समाजों के अध्ययन में कला और शिल्प को अलग करना कठिन काम है। अतः उनका एक साथ अध्ययन किया जाएगा।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में पाई गई हड़प्पा-सभ्यता की संभवतः सबसे प्रसिद्ध कलाकृति है नृत्य की मुद्रा में नग्न स्त्री की एक कांस्यमूर्ति। सिर पीछे की ओर झुकाए, आंखें झुकी हुई, बाईं भुजा कूल्हे पर टिकाए और बाईं भुजा नीचे लटकी हुई दर्शाने वाली यह मूर्ति नृत्य की स्थिर मुद्रा में है। स्त्री प्रतिमा ने बहुत सारी चूड़ियाँ पहनी हुई है और उसको बालों को सुन्दर वेणी बनी हुई है। इस मूर्ति को हड़प्पा-कला का अद्वितीय नमूना माना जाता है। भैंसे और भेड़ की छोटी-छोटी कांस्य प्रतिमाओं में पशुओं की मुद्राओं को सुन्दर ढंग से पेश किया गया है। खिलौनों के रूप में कांसे की दो गाडियाँ की बहुत आकर्षक एवं प्रसिद्ध हैं। हालांकि इनमें से एक हड़प्पा में पाई गई थी और दूसरी 650 कि.मी. दूर चन्हूदारों में फिर भी इन दोनों की बनावट एक जैसी है।

नृत्य की मुद्रा में स्त्री की एक कांस्यमूर्ति (मोहनजोदड़ो)। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-2, इकाई-6।

दाढ़ी वाले सिर की प्रतिमा (मोहनजोदड़ो)। स्रोत : ई.एच.आई.-2, खंड-2, इकाई-6।

मोहनजोदड़ों में पाई गई दाढ़ी वाले सिर की प्रस्तर प्रतिमा भी बड़ी प्रसिद्ध कलाकृति है। चेहरे पर दाढ़ी है परन्तु मूंछ नहीं है। अर्ध-मुदित आंखें शायद विचारमग्न मुद्रा को दर्शाती है। बाएँ कंधे के दोनों ओर एक आवरण पड़ा है जिस पर तिपतिया पैटर्न की सुन्दर नक्काशी की हुई है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह पुजारी की अर्ध-प्रतिमा है।

हड़प्पा की खुदाई में पाई गई दो पुरुषों की अर्ध मूर्तियों के बारे में यह भी कहा जाता है कि वे बाद के युग की रही होंगी। प्रतिमा के मांसल भागों को इस खूबसूरती और वास्तविकता से तराशा गया है कि देख कर आश्चर्य होता है। फिर भी, ऐसा लगता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग अपनी कला-कृतियों के लिए प्रस्तर या कांसे का इस्तेमाल बहुत अधिक नहीं करते थे। इस तरह की कलाकृतियाँ बहुत कम संख्या में पाई गई हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों से पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियाँ बड़ी संख्या में पाई गई हैं। इनका प्रयोग खिलौनों या पूजा-उपासना के लिए किया जाता था। ये लघु मूर्तियाँ विभिन्न तरह के पक्षियों, बन्दरों, कुत्तों, भेड़ों, मवेशियों और कूबड़दार तथा कूबड़रहित सांडों की हैं। स्त्री और पुरुषों की छोटी-छोटी मूर्तियाँ भी बड़ी तादाद में मिली हैं। पक्की मिट्टी (terracotta) की बनी तरह-तरह की गाड़ियों-ठेलों के नमूने भी मूर्ति कला में असाधारण सजीवता को प्रदर्शित करते हैं। इन नमूनों को देखकर लगता है कि आधुनिक काल में इस्तेमाल की गई बैलगाड़ियों का स्वरूप हड़प्पा-युग की बैलगाड़ियों का ही परिवर्तित रूप है।

'हड़प्पा-सभ्यता के लोग गोमेद, फीरोजा, लाल-पत्थर और सेलखंड़ी जैसे बहुमूल्य एवं अर्थ-कीमती पत्थरों से बने अति सुन्दर मनकों का प्रयोग करते थे। इन मनकों को बनाए जाने की प्रक्रिया चन्हूदारों में एक कारखाने के पाए जाने से स्पष्ट हो जाती है। इस प्रक्रिया में पत्थर को आरी से काट कर पहले तो आयताकार छड़ में बदल दिया जाता था, फिर उसके बेलनाकार टुकड़े करके पॉलिश से चमकाया जाता था। अन्त में, चर्ट बरमे या कांसे के नलिकाकार बरमे से उनमें छेद किया जाता था। सोने और चांदी के मनके भी पाए गए हैं। मनके बनाने के लिए सबसे अधिक सेलखड़ी का प्रयोग किया जाता था।

तिपतिया पैटर्न के बेलनाकार मनकों का संबंध विशेष रूप से हड़प्पा-सभ्यता से जोड़ा जाता है। लाल पत्थर के मनके भी बहुत संख्या में पाए गए हैं। मोहनजोदड़ो के गहनों का ढेर भी पाया गया है। जिसमें सोने के मनके, फीते और अन्य आभूषण शामिल हैं। चांदी की थालियाँ भी पाई गई हैं।

हड़प्पा की बस्तियों से 2000 से अधिक मुहरें पाई गई हैं। इन्हें ग्रामीण शिल्पकारिता के क्षेत्र में सिन्धु घाटी का उत्कृष्ट योगदान माना जाता है। ये आम तौर पर चौकोर होती थीं और सेलखड़ी की बनी होती थीं लेकिन कुछ गोल मुहरें भी पाई गई हैं। मुहरों पर चित्रलिपि में संकेत चिन्हों से सम्बद्ध अनेक तरह के जानवरों के आकार बने होते थे। कुछ मुहरों पर केवल लिपि उत्कीर्ण है जबकि कुछ अन्य पर मानव और अर्ध-मानव आकृतियाँ बनी हुई हैं। कुछ मुहरों पर ज्यामिति से संबंधित विभिन्न नमूने बने हुए हैं। दर्शाई गई पशु आकृतियों में भारतीय हाथी, गवल (बिश) ब्राह्मनी सांड, गैंडा और बाघ प्रमुख हैं। अनेक तरह के संयुक्त पशु भी दर्शाए गए हैं। इस तरह की एक आकृति में मनुष्य के चेहरे पर हाथी की सूंड और दांत बने हुए हैं, सिर पर सांड के सींग हैं, अग्रभाग मेष का है और पीछे का भाग बाघ का। अनेक मुहरों में यह आकृति पाई गई है। इस तरह की मुहरों को धार्मिक प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाता होगा। मुहरों का प्रयोग बड़े शहरों के बीच माल के विनिमय के लिए भी किया जाता होगा। पशुओं से घिरे और योग की मुद्रा में बैठे सींगयुक्त देवता को दर्शाने वाली मुहर को भगवान् पशुपति से संबंधित माना गया है। हड़पपा-सभ्यता की कलाकृतियाँ हमें दो कारणों से निराश करती हैं :
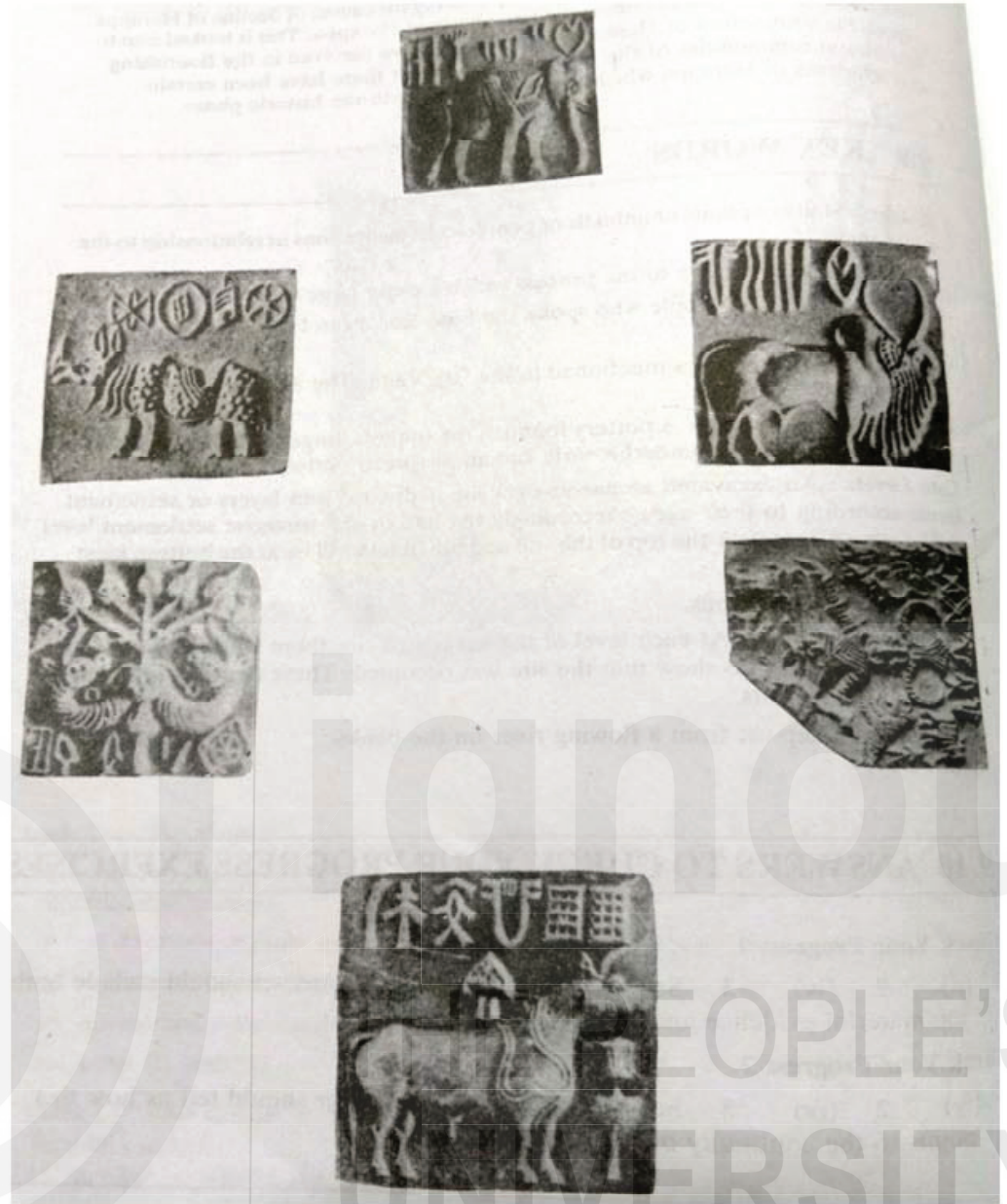
हड़प्पा सभ्यता की कुछ मुहरें। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-02, इकाई-6।

i) पाई गई कलाकृतियों की संख्या बहुत सीमित है और

ii) उनमें अभिव्यक्ति की उतनी विविधता नहीं है जितनी मिश्र और मेसोपोटामिया की समकालीन सभ्यताओं की कलाकृतियों में पाई गई है।

हड़प्पा-सभ्यता की प्रस्तर मूर्तिकला मिश्र के लोगों की मूर्तिकला की तुलना में सीमित और अविकसित थी। पक्की मिट्टी की कलाकृतियाँ भी स्तर में उतनी अच्छी नहीं थीं जितनी कि वे जो मेसोपोटामिया में बनाई जाती थीं। संभव है कि हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने अपनी कला की अभिव्यक्ति के लिए कपड़ों पर आकृतियाँ बनाई हों और रंगचित्रों का प्रयोग किया हो जो कम टिकाऊ होने के कारण समय के साथ नष्ट हो गए हों।

6.6.5 सिन्धु-लिपि

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयोग की गई मुहरों (Seals) पर लिखावट होती थी। यह लिपि अभी तक पढ़ी न जा सकने के कारण रहस्य बनी हुई है। प्राचीन मिश्र की लिपियों जैसे अन्य विस्मृत लिपियों को दुबारा पढ़ना इसलिए संभव हो सका क्योंकि विस्मृत लिपि में लिखित कुछ लेख बाद में एक परिचित लिपि में पाए गए हैं। इस परिचित लिपि के कुछ अक्षर विस्मृत लिपि

के अक्षरों से मिलते-जुलते थे। हड़प्पा में कोई द्विभाषिक लेख अभी तक नहीं मिले हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि हड़प्पा-निवासी कौन सी भाषा बोलते थे और उन्होंने क्या लिखा। दुर्भाग्यवश, अब तक पाए गए लेख बहुत संक्षिप्त हैं और मुहरों पर खुदे हुए हैं। इस कारण उन्हें पढ़ पाना और भी कठिन हो जाता है। हड़प्पा निवासी चित्राक्षरों का प्रयोग करते थे और दाईं से बाईं ओर लिखते थे। किन्तु, विद्वान अभी भी इस लिपि के रहस्य को खोलने की कोशिश में लगे हुए हैं। इस कार्य में सफलता मिलने पर हड़प्पा की सभ्यता के बारे में और भी जानकारी प्राप्त होगी।
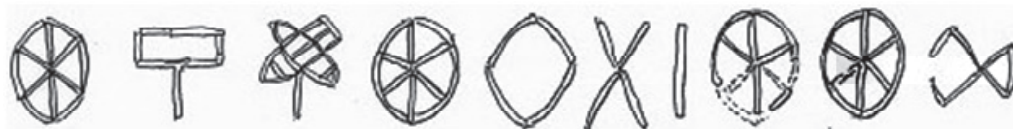
धोरावीरा के उत्तर द्वार से प्राप्त दस अक्षर। इसे धोलावीरा का 'सूचना-पट्ट' कहा गया है। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:The_%27Ten_Indus_Scripts%27_discovered_near_the_northern_gateway_of_the_Dholavira_citadel.jpg)।

6.6.6 जीवन-यापन का स्वरूप

हड़प्पा सभ्यता की शहरी आबादी कृषि उत्पादन पर निर्भर करती थी। विभिन्न स्थानों पर की गई खुदाई के दौरान हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की आहार संबंधी आदतों के बारे में वृहत जानकारी प्राप्त हुई है। ऐसा लगता है कि भेड़ और बकरी के अलाावा, कूबड़दार मवेशियों को भी पाला जाता था। बहुत सी बस्तियों में सूअर, भैंस, हाथी और ऊँट की हड्डियाँ भी पाई गई हैं। अभी तक यह निश्चित नहीं है कि ये जानवर पाले जाते थे या उनका शिकार किया जाता था। फिर भी, कुछ मुहरों पर एक सुसज्जित हाथी के चित्र में यह संकेत मिलता है कि इस जानवर को पालतू बना लिया गया था। मुर्गों की हड्डियाँ भी पाई गई हैं। संभवतः उन्हें पालतू बना लिया गया था। जंगली जानवरों की हड्डियाँ भी बड़ी तादाद में पाई गई हैं। उनमें हिरण, गैंडे, कछुए आदि की हड्डियाँ शामिल हैं। हड़प्पा काल में लोग घोड़ों के विषय में शायद नहीं जानते थे।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में गेहूँ की दो किस्में अधिक पाई गई हैं। जौं काफी बार पायी गई है। अन्य फसलों में खजूर और फलदार पौधों की किस्में शामिल हैं, जैसे कि मटर। उनके अलावा इस काल में सरसों और तिल की फसल भी होती थी। लोथल और रंगपुर में चिकनी मिट्टी में और मिट्टी के बर्तनों में चावल की भूसी दबी हुई पाई गई है। यह नहीं कहा जा सकता कि चावल की ये किस्में जंगली थीं या नियमित रूप से उगाई जाने वाली किस्में। भारत अपने परम्परागत सूती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध रहा है। मोहनजोदड़ों में सूती कपड़े का एक टुकड़ा पाया गया है जिससे पता चलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग कपास की खेती करने और कपड़े बनाने पहनने की कला में निपुण हो चुके थे।

कालीबंगन में खांचेदार खेत के प्रमाण मिले हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग लकड़ी के हल का प्रयोग करते थे। इस क्षेत्र में अभी भी एक दिशा में काफी दूर-दूर और एक दिशा में बहुत पास-पास आड़े-तिरछे खांचे बनाने की पद्धति प्रचलित है। आधुनिक कृषक अपने खेत में इसी ढंग से खांचे बनाकर एक तरफ कुलथी या तिल की खेती करता है और दूसरी तरफ सरसों की। हड़प्पा की सभ्यता के किसान भी शायद यही करते थे।

इस तरह, यह पाया गया है कि हड़प्पा-युग के जीवन-निर्वाह की व्यवस्था अनेक प्रकार की फसलों, पालतू पशुओं और जंगली जानवरों पर निर्भर करती थी। इस विविधता के कारण ही जीवन-निर्वाह व्यवस्था मजबूत बनी हुई थी। वे प्रति वर्ष एक साथ दो फसलें उगा रहे थे।

इससे अर्थव्यवस्था इतनी मजबूत हो गई थी कि नगरों में रहने वाली और अपने लिए अन्न का उत्पादन खुद न करने वाली बड़ी जनसंख्या का भरण-पोषण किया जा सकता था।

बोध प्रश्न 2

1) हड़प्पा-सभ्यता की भौतिक विशेषताओं का विवेचन करें।

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगायें।

   i) हड़प्पा की खुदाई में पाया गया विशाल स्नान-कुण्ड ईंटों का बना है। ( )

   ii) मोहनजोदड़ो में खोजा गया विशाल अन्न भण्डार एक महत्त्वपूर्ण इमरात है। ( )

   iii) अग्नि कुण्ड लोथल में पाए गए हैं। ( )

   iv) हड़प्पा-सभ्यता के लोग लोहे के बने औज़ारों का इस्तेमाल करते थे। ( )

   v) हड़प्पा-सभ्यता की लिपि को अभी तक नहीं पढ़ा जा सका है। ( )

3) रिक्त स्थानों को सही उत्तर से पूरा करें :

   i) .... (मोहनजोदड़ो/हड़प्पा/कालीबंगन) में मिली नर्तकी की कांस्य मूर्ति को हड़प्पा-कला का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है।

   ii) लोथल में .... (चावल/गेहूं/जौं) के दाने मिट्टी में धंसे पाए गए हैं।

   iii) हड़प्पा-सभ्यता के लोग पशुओं में .... (हाथी/ऊँट/घोड़े) से अनजान थे।

   iv) कपास के प्रमाण .... (हड़प्पा/मोहनजोदड़ो/ कालीबंगन) से मिलते हैं।

6.7 व्यापार तंत्रों की स्थापना

यह माना जाता है कि पूर्व शहरी समाज में विभिन्न क्षेत्रों के बीच सक्रिय लेन-देन नहीं था। अब सवाल यह है कि नगरवासियों ने दूरस्थ देशों से सम्पर्क क्यों स्थापित किया और हमें इस विषय में कैसे पता चलता है? शहरी केंद्रों में जनसंख्या का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा खाद्यान्न उत्पादन में न लगकर दूसरे अन्य प्रकार के कार्यकलापों में लगा होता है। ये लोग प्रशासनिक, व्यापार और विनिर्माणी कार्य करते हैं। साथ ही यदि वे स्वयं खाद्यान्न उत्पादन नहीं करते हैं तो वह काम दूसरे को उनके लिए करना पड़ता है। यही कारण है कि नगर, खाद्यान्न आपूर्ति के लिए आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र पर निर्भर हैं।

यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि शहर और गाँव के बीच सम्बन्ध असमान हैं। शहरों का प्रशासनिक या धार्मिक केंद्रों के रूप में विकास होने पर पूरे देश में संसाधन वहाँ एकत्र हो जाते हैं। यह

सम्पत्ति करों, उपहारों, भेटों या खरीदे हुए सामान के रूप में भीतरी प्रदेश से शहर में आते हैं। हड़प्पा समाज में इस सम्पत्ति का नियंत्रण शहरी समाज के सबसे अधिक प्रभावशाली लोगों के हाथ में था। साथ ही शहर के धनी और प्रभावशाली लोग आरामदायक जीवन बिताते थे। उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा उनके द्वारा बनाए गए भवनों और उनके द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली भोग विलास की वस्तुओं के अधिग्रहण से प्रतिबिम्बित होती है जो स्थानीय रूप से अनुपलब्ध थीं। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि शहरों का दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने का मुख्य कारण इस अमीर और प्रभावशाली लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना था। हड़प्पावासियों के दूरस्थ देशों से सम्पर्क स्थापित करने के कारणों में से एक कारण यह भी हो सकता है।

हड़प्पा, बहावलपुर और मोहनजोदड़ो वाला भू-भाग सभ्यता का मूल क्षेत्र है। लगभग दस लाख अस्सी हज़ार वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में पाई गई बस्तियों में हड़प्पा सभ्यता के प्रभाव के प्रमाण पाए गए हैं।

यहाँ पर एक प्रासंगिक प्रश्न उठाया जा सकता है कि अफगानिस्तान के शार्तुघई और गुजरात के भगत्रव जैसे दूर तक फैले हुए क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने बस्तियाँ क्यों बसाईं? इसका युक्तिसंगत उत्तर विभिन्न क्षेत्रों की आपसी आर्थिक अंतर्निर्भरता और व्यापारतंत्र है। मूल संसाधनों का अलग-अलग स्थानों पर उपलब्ध होना सिन्धु घाटी के विभिन्न क्षेत्रों को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कारण था। इन संसाधनों में कृषि संबंधी संसाधन, खनिज संसाधन, लकड़ी आदि शामिल थे और ये व्यापार मार्गों की स्थापना करके ही प्राप्त किए जा सकते थे। उपजाऊ सिन्ध-हाकड़ा मैदान के धनी लोग अधिक से अधिक विलास की वस्तुएँ प्राप्त करना चाहते थे। इस खोज में उन्होंने अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ पहले से विद्यमान सम्बन्धों को और मजबूत बनाया। उन्होंने गुजरात और गंगा की घाटी जैसी जगहों में भी बस्तियाँ बसाईं।

6.8 अंतर्क्षेत्रीय सम्पर्क

अब हम हड़प्पा नगरों के आपसी और उस समय के दूसरे शहरों और समाजों के साथ सम्पर्क के स्वरूप का मूल्याँकन करने की चेष्टा करेंगे। हमारे पास इस सम्पर्क के प्रमाण हड़प्पाकालीन नगरों की खुदाई द्वारा पाई गई वस्तुओं पर आधारित हैं। इनमें से कुछ प्रमाणों की पुष्टि समकालीन मेसोपोटामिया की सभ्यता के लिखित स्रोतों में पाए गए प्रसंगों द्वारा की गई है।

6.8.1 शहर

अब हम हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाए गए अन्नभण्डारों से संबंधित प्रमाणों की चर्चा करेंगे। ये बड़ी इमारतें अनाज रखने के लिए बनाई गई थीं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, शहरी केंद्र खाद्यान्न आपूर्ति के लिए गाँवों पर ही निर्भर हैं। अन्न भण्डारों की उपस्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि शासक खाद्यान्न के एक सुनिश्चित भाग को अपने पास रखना चाहते थे। यह अनुमान है कि आस-पास के गाँवों से अनाज लाकर यहाँ रखा जाता था। फिर यह शहरी निवासियों को पुनर्वितरित किया जाता था। अनाज ऐसा संसाधन है जिसकी रोज बड़ी मात्रा में खपत होती थी। काफी मात्रा में अनाज एकत्रित करके बैलगाड़ियों और नावों द्वारा भेजा जाता था। दूरस्थ स्थानों के लिए अधिक मात्रा में खाद्य सामग्री ढोना मुश्किल काम है। यही कारण है कि नगर सर्वाधिक उपजाऊ क्षेत्रों में ही पाए गए हैं और सम्भवतया वहाँ अनाज आस-पास के गाँवों से लाया जाता था।

उदाहरणस्वरूप, मोहनजोदड़ो जो कि सिन्ध के लरकाना जिले में स्थित था आज भी सिन्ध का सबसे उपजाऊ क्षेत्र है। परन्तु महत्त्वपूर्ण व्यापार मार्गों या औद्योगिक क्षेत्रों में से कुछ अन्य

बस्तियाँ स्थापित हुईं। बस्तियों की अवस्थिति किसी क्षेत्र की कृषि से संबंधित उपजाऊ क्षमता पर उतना निर्भर नहीं करती जितना कि व्यापार और विनिमय की सम्भावनाओं पर निर्भर करती है।

यही कारण है कि बड़े शहरों की अवस्थिति के कारणों का विश्लेषण करते समय विद्वान इन बातों को ध्यान में रखते हैंः

- खाद्य उत्पादन के लिए उस स्थान की समर्थता, और
- उसकी व्यापार मार्गों और खनिज स्रोतों से निकटता।

यदि हम उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखें तो हम पाएँगे कि हड़प्पा की अवस्थिति बहुत ही उत्तम है। इसके उत्तर पश्चिम के समूचे भौगोलिक क्षेत्र में किसी दूसरी हड़प्पाकालीन बस्ती के प्रमाण नहीं मिले हैं। यहाँ तक कि 19वीं शताब्दी में भी इस क्षेत्र में मुख्यतया खानाबदोश चरवाहे ही रहते थे। कुछ विद्वानों का मत है कि हड़प्पा ऐसी जगह पर स्थित था जो दक्षिण की ओर स्थित कृषि बस्तियों और उत्तर पश्चिम की ओर स्थित खानाबदोश चरवाही बस्तियों को एक-दूसरे से विभाजित करती थी। इस प्रकार हड़प्पा के लोग दोनों समुदायों के संसाधनों का उपयोग कर सकते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि यद्यपि खाद्य उत्पादन के सम्बन्ध में हड़प्पा का कोई भी महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं था, यह एक बड़े शहर के रूप में इसलिए विकसित हो सका क्योंकि एक व्यापारिक बस्ती के रूप में इसकी अवस्थिति बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। यदि हम हड़प्पा को बीच में रखकर लगभग 300 किलोमीटर के क्षेत्र में उसके चारों ओर एक वृत बनाएँ तो हम पाएँगे कि हड़प्पा की अवस्थिति बहुत ही उत्तम है।

1) हड़प्पा निवासियों की हिन्दुकुश और पश्चिमोत्तर सीमांत तक पहुँच थी। इसका अर्थ यह है कि लगभग दस दिन की यात्रा करके हड़प्पा निवासी उस क्षेत्र में पहुँच सकते हैं जहाँ फिरोजा तथा वैदूर्यमणि जैसे बहुमूल्य पत्थर पाए जाते थे। वे बहुमूल्य पत्थर हिन्दुकुश तथा पश्चिमोत्तर सीमांत के मार्गों में लाए जाते थे।
2) वे नमक क्षेत्र से खनिज नमक भी प्राप्त कर सकते थे।
3) उन्हें राजस्थान से टिन और तांबा सुलभ रूप से प्राप्त था।
4) सम्भवतया वे कश्मीर में सोने और एमिथिस्ट के स्रोतों का भी उपयोग करते थे।
5) इस 300 किलोमीटर की परिधि में उस स्थान तक भी उनकी पहुँच थी जहाँ पंजाब की पाँचों नदियाँ एक धारा में मिल जाती थीं। इसका अर्थ यह हुआ कि हड़प्पा निवासियों का पंजाब की पाँचों नदियों के नदी परिवहन पर भी नियंत्रण था। उस समय जब पक्की सड़कें नहीं थीं, नदियों द्वारा परिवहन कहीं अधिक सुलभ था।
6) उनकी अवस्थिति उनकी कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों से लकड़ी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती थी। हड़प्पा ऐसी जगह पर स्थित है जहाँ आधुनिक समय में भी पश्चिम और पूर्व के अनेक व्यापार मार्ग आपस में मिलते हैं।

अवस्थिति के संदर्भ में मोहनजोदड़ो और लोथल की बस्तियों का भी अपना महत्त्व था। कुछ विद्वानों का मानना है कि मोहनजोदड़ो में बड़ी इमारतों का धार्मिक स्वरूप इस ओर संकेत करता है कि यह एक धार्मिक केंद्र था। यह धार्मिक केंद्र हो या न हो, यहाँ के अमीर लोग सोना, चांदी और दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं का प्रयोग करते थे जो स्थानीय रूप से प्राप्य नहीं थी। हड़प्पा की तुलना में मोहनजोदड़ो समुद्र के अधिक निकट था। इसके कारण मोहनजोदड़ो वासियों के लिए फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया पहुँचना आसान था। फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया वे क्षेत्र थे जो सम्भवतया चांदी के मुख्य आपूर्तिकर्ता

(Suppliers) थे। इसी प्रकार लोथल निवासी दक्षिणी राजस्थान और दक्कन से संसाधन प्राप्त करते थे। सम्भवतः वे हड़प्पावासियों को कर्नाटक से सोना प्राप्त करने में मदद करते थे। कर्नाटक में सोने की खानों के पास समकालीन नवपाषाण युगीन बस्तियाँ पाई गई हैं।

6.8.2 गाँव

गाँव आवश्यक अनाज और कच्चा माल नगरों को भेजते थे पर हड़प्पा सभ्यता के नगर बदले में उन्हें क्या देते थे? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें कुछ इने-गिने सुराग मिले हैं। एक तो यह कि नगरों के शासक अनाज को कर के रूप में वसूल करने के लिए बल प्रयोग करते थे। यह कर प्रशासनिक सेवाओं के बदले लोगों द्वारा दिया जाता था। इस ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध का एक महत्त्वपूर्ण अवयव उन समस्त वस्तुओं को प्राप्त करना था जो स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं थीं और उन्हें ग्रामीण भीतरी प्रदेश (Hinterland) में उपलब्ध कराना था।

हड़प्पा काल की दिलचस्प वस्तुएँ पत्थर के औज़ार थे। हड़प्पा-सभ्यता के लगभग सभी नगरों और गाँवों के लोग समानान्तर आकार के पत्थर के ब्लेड का प्रयोग करते थे। ये पत्थर के ब्लेड बहुत ही उच्च स्तर के पत्थर से बनाएजाते थे जो हर स्थान पर नहीं पाए जाते थे। ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार का पत्थर सिंध में सुक्कुर (Sukkur) नामक स्थान ले लाया जाता था। यह परिकल्पना इस तथ्य से सिद्ध होती है कि हड़प्पा-सभ्यता की शहरी अवस्था के दौरान गुजरात में स्थित रंगपुर के लोग दूर प्रदेशों से लाए गए पत्थर के औज़ारों का प्रयोग करते थे। जब हड़प्पा सभ्यता ह्रास की ओर अग्रसर हुई तब इन क्षत्रों के लोगों ने स्थानीय पत्थर से बने औज़ारों का प्रयोग करना शुरू कर दिया। हड़प्पा के लोग तांबे और कांसे जैसी धातुओं का भी प्रयोग करते थे। तांबा कुछ ही स्थानों पर उपलब्ध था। हड़प्पा सभ्यता की लगभग सभी बस्तियों में तांबे और कांसे के औज़ार पाए गए हैं। हड़प्पा-सभ्यता की लगभग सभी बस्तियों में पाए गए इन औज़ारों की बनावट और प्रयोग में एकरूपता थी। इससे यह पता चलता है कि वहाँ उत्पादन और वितरण अवश्य ही केंद्रीकृत संस्थाओं द्वारा किया जाता होगा। इन संस्थाओं में नगरों में रहने वाले प्रशासक या व्यापारी शामिल थे।

जिन वस्तुओं का ऊपर उल्लेख किया गया है वे आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण थी। इसके अलावा हड़प्पा सभ्यता की छोटी अथवा बड़ी बस्तियों से सोने चाँदी और अनेक कीमती और अर्ध कीमती पत्थरों से बनी वस्तुएँ भी पाई गई हैं। ये धातु और पत्थर व्यापारियों या शहर के शासकों द्वारा लाए जाते थे। शहरीकरण की शुरुआत के साथ हड़प्पा-सभ्यता में व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। मोहनजोदड़ो से मनकों के प्रमाण मिले हैं। ये वस्तुएँ छोटे गाँवों और नगरों के अमीर और प्रभावशाली लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाती थीं।

ऊपर की गई चर्चा से यह बात उभर कर सामने आती है कि :

- गाँवों की अवस्थिति मुख्यतया भूमि की उपजाऊ क्षमता और सिंचाई की सुविधा की सुलभता पर निर्भर करती थी।
- नगरों की अवस्थिति ऊपर दिए गए घटक के अन्य अतिरिक्त घटकों जैसे खानों या व्यापार मार्गों से इन नगरों की निकटता पर निर्भर करती थीं।
- कभी-कभी नगरों की अवस्थिति व्यापार के घटक पर अन्य घटकों से अधिक निर्भर करती थी तथा कई नगर उन अनुपयोगी (Inhospitable) जगहों पर बसाए गए जहाँ कृषि उत्पादन बहुत कम था। उदाहरणस्वरूप मकरान समुद्र तट सुत्कागन दोर एक ऐसी बस्ती थी। वह कृषि उत्पादन की दृष्टि से अनुपयोगी क्षेत्र में स्थित है और इसकी मुख्य भूमिका हड़प्पा और मेसोपोटामिया के बीच व्यापार चौकी के रूप में थी।

अब हम हड़प्पा-सभ्यता के अन्य शहरों में घटित होने वाली गतिविधियों की चर्चा करेंगे।

- बलूचिस्तान, समुद्रतट के पास बालाकोट और सिंध में चहुंदड़ों सीपी-शिल्प और चूड़ियों के लिए प्रसिद्ध थे,
- लोथल और चहूंदड़ो में लाल (Carnelian) पत्थर और गोमेद के मनके बनाए जाते थे।
- चन्हूंदड़ों में वैदूर्यमणि के कुछ अधबने मनके इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हड़प्पा निवासी दूर दराज स्थानों से बहुमूल्य पत्थर आयात करते थे और उन पर काम करके उन्हें बेचते थे।
- मोहनजोदड़ो में पत्थर की सिंचाई करने वाले, कुम्हार, तांबे और कांसे के शिल्पकार ईंटें बनाने वाले, सील काटने वाले, मनके बनाने वाले आदि हस्त कौशल में निपुण लोगों की उपस्थिति के प्रमाण पाए गए हैं।

6.9 कच्चे माल के स्रोत

हड़प्पा-सभ्यता की विभिन्न बस्तियों की खुदाई द्वारा बहुत संख्या में चूड़ियाँ, मनके, मिट्टी के बर्तन और विभिन्न प्रकार के तांबे, कांसे और पत्थर की वस्तुयें पाई गई हैं। हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में पाई अनेक प्रकार की वस्तुएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वे अनेक प्रकार की धातुओं और बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग करते थे जो प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से उपलब्ध नहीं थे। रोचक बात यह है कि हड़प्पा-सभ्यता की छोटी-छोटी बस्तियों में भी बहुमूल्य पत्थरों और धातुओं के औज़ार पाए गए हैं। ये अमीर लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक विस्तृत विनिमय तंत्र की ओर संकेत करते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले खनिज पदार्थ और धातुओं के क्या स्रोत थे?

- वे राजस्थान की खेतड़ी खानों से तांबा प्राप्त करते थे।
- मध्यवर्ती राजस्थान में जोधपुरा, बागोर और गणेश्वर बस्तियाँ जो हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों के समकालीन मानी जाती हैं। सम्भवतया हड़प्पा सभ्यता के लिए कच्चे तांबे का स्रोत रही होंगी।
- गणेश्वर में 400 से अधिक तांबे के तीर शीर्ष, 50 मछली पकड़ने के कांटे और 58 तांबे की कुल्हाड़ियाँ पाई गई हैं।

इन बस्तियों में लोग खानाबदोशी चरवाहों तथा शिकार संग्रहकर्त्ताओं दोनों ही की तरह से जीवन-यापन करते थे। इन पर हड़प्पा सभ्यता का प्रभाव शायद नहीं पड़ा था। इससे व्यापार संबंधों की समस्या की जटिलता और भी बढ़ जाती है। पुरातत्ववेत्ताओं का विश्वास है कि हड़प्पावासी उस क्षेत्र से तांबे के औज़ारों का आयात करते थे जहाँ के लोग चरवाहे और शिकारी के रूप में जीवन यापन करते थे। तथापि हम यह नहीं कह सकते हैं कि ये दोनों समुदाय एक जो विकसित शहरी सभ्यता और दूसरा जो चरवाह समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है, आपस में किस प्रकार आदान-प्रदान करते थे। सम्भवतया ये सम्बन्ध अप्रत्यक्ष थे।

शायद हड़प्पा-सभ्यता के लोग तांबा बलूचिस्तान और उत्तरी पश्चिमी सीमांत से प्राप्त करते थे। सोना सम्भवतया कर्नाटक के कोलार क्षेत्र और कश्मीर से प्राप्त किया जाता था। हड़प्पावासियों की समकालीन कुछ नवपाषाण युगीन बस्तियाँ भी इस क्षेत्र में पाई गई हैं। राजस्थान के जयपुर और सिरोही, पंजाब के हाजरा, कांगड़ा और झंग और काबुल और सिन्धु नदियों के किनारे सोने के मुलम्मों के प्रमाण मिले हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बहुत सी बस्तियों से चांदी के बर्तन पाए गए हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में चांदी के कोई विदित स्रोत नहीं हैं। चांदी शायद अफगानिस्तान और ईरान से आयात किया जाती होगी। सम्भवतया सिंध के व्यापारियों के मेसोपोटामिया से व्यापार संबंध थे तथा वे अपने माल

के बदले में मेसोपोटामिया से चांदी प्राप्त करते थे। सीसा शायद कश्मीर या राजस्थान से प्राप्त किया जाता होगा। पंजाब और बलूचिस्तान में भी थोड़े बहुत सीसे के स्रोत थे।

वैदूर्यमणि जो कि एक कीमती पत्थर था उत्तरी पूर्वी अफगानिस्तान में बदक्शां (Badakshan) में पाया जाता था। इस क्षेत्र में शोर्तुघई और अलतिन देपे (Altyn Depe) जैसी हड़प्पाकालीन बस्तियों का पाया जाना उस बात की पुष्टि करता है कि हड़प्पावासियों ने इस स्रोत का लाभ उठाया होगा। फ़िरोजा और जेड मध्य एशिया से प्राप्त किए जाते थे। गोभेव, श्वेत*वर्ण* स्फटिक और लाज पत्थर सौराष्ट्र या पश्चिमी भारत से प्राप्त किये जाते थे। समुद्री सीपियाँ जो हड़प्पावासियों में बहुत लोकप्रिय थीं गुजरात के समुद्र तट और पश्चिमी भारत से प्राप्त की जाती थीं। जम्मू में मंडा (Manda) उस स्थान पर स्थित है जहाँ पर चेनाव नदी में नौपरिवहन संभव है। सम्भवतया अच्छी किस्म की लकड़ी अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों से प्राप्त होती थी और मध्य सिंधू घाटी में नदियों द्वारा पहुँचाई जाती थी। शोर्तुघई (Shortughai) में हड़प्पाकालीन अवशेषों में काफी मात्रा में वैधूर्यमणि पाए गए हैं। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने दूरस्थ क्षेत्रों में पाए जाने वाले खनिज पदार्थों का उपयोग करने के लिए उपनिवेशीकरण की नीति अपनाई थी। इससे यह पता चलता है कि व्यापार और बाहर से नई प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त करने में हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की दिलचस्पी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापार विनिमय व्यापारियों का आपसी मामला न होकर एक प्रशासनिक कार्यकलाप था क्योंकि लगभग 500 किलोमीटर के क्षेत्र में उपनिवेश स्थापित करना किसी व्यापारी के लिए सम्भव नहीं था। हड़प्पा काल के प्रशासक दूरस्थ प्रदेशों के संसाधनों को नियंत्रित करना चाहते थे।

6.10 विनिमय व्यवस्था

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों में भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर और बाहर अंतर्क्षेत्रीय व्यापार का एक बृहद तंत्र स्थापित किया था। लेकिन हमें यह मालूम नहीं है कि हड़प्पा-सभ्यता और अन्य क्षेत्रों के बीच किस प्रकार की विनिमय व्यवस्था प्रचलित थी। इससे बड़े क्षेत्र के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया में विभिन्न समुदायों का शामिल होना अवश्यम्भावी है। उस समय देश के एक बड़े भू-भाग में शिकारी संग्रहकर्त्ता रहते थे। कुछ क्षेत्रों में खानाबदोश चरवाहे थे। कुछ समुदायों ने कृषि उत्पादन शुरू कर दिया था। इनकी तुलना में हड़प्पा सभ्यता अधिक विकसित थी। हड़प्पा-सभ्यता के लोग शिकारी संग्रहकर्त्ताओं या किसी और समुदाय के क्षेत्रों से खनिज पदार्थ प्राप्त करने के लिए क्या तरीके अपनाते थे? हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने ऐसे कुछ क्षेत्रों में अपनी बस्तियाँ बसाई थीं। सम्भवतया हड़प्पा-सभ्यता के लोगों से भिन्न समुदाय हड़प्पा-सभ्यता के लोगों से कीमती वस्तुएँ प्राप्त करते थे। परन्तु विनिमय एक नियमित कार्यकलाप नहीं था। बल्कि यह इन समुदायों के मौसमी प्रवास या किसी एक जगह पर एकत्रित होने पर निर्भर था। हड़प्पा-सभ्यता के व्यापारी उन स्थानों पर जाते थे जहाँ ये समुदाय मौसमी डेरे डालते थे। मौसमी प्रवास की प्रक्रिया के दौरान खानाबदोश चरवाहे भी दूर-दराज के क्षेत्रों से सामान प्राप्त करते थे। हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की विनिमय प्रणाली के बारे में हमें बहुत कम जानकारी है।

हड़प्पाकालीन नगरों के बीच विनिमय पद्धति

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों ने आपसी व्यापार और विनिमय को नियंत्रित करने के प्रयास किए। दूर फैली हुई हड़प्पा कालीन बस्तियों में भी नाव और तौल की व्यवस्थाओं में समरूपता थी। तौल निम्न मूल्याँकों में द्विचर प्रणाली के अनुसार है : 1, 2, 4, 8 से 64 तक फिर 150 तक और फिर 16 से गुणा वाले दशमलव 320, 640, 1600 और 3200 आदि तक। ये चकमकी पत्थर, चूना पत्थर, सेलखड़ी आदि से बनते हैं और साधारणतया घनाकार होते हैं। लम्बाई

37.6 सेंटीमीटर की एक फुट की इकाई पर आधारित थी और एक हाथ की इकाई लगभग 51.8 से 53.6 सेंटीमीटर तक होती थी। नाप और तौल की समरूप व्यवस्था केंद्रीय प्रशासन द्वारा हड़प्पा-सभ्यता के लोगों में आपसी तथा अन्य लोगों के साथ विनिमय को व्यवस्थित करने के प्रयास की ओर इशारा करती है।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में काफी संख्या में मुहरें और मुद्रांकण पाए गए हैं। ये मुहरें और मुद्रांकण दूरस्थ स्थानों को भेजे जाने वाले उत्पादों के उच्च स्तर और स्वामित्व की ओर संकेत करते हैं। इनका प्रयोग व्यापारिक गतिविधियों में होता था। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि बहुत से मुद्रांकणों में पीछे की ओर रस्सी और चटाई के निशान हैं। इनमें पाए जाने वाले चिन्हों से यह पता चलता है कि ये मुद्रांकण तिजारती माल में ठप्पे की तरह प्रयोग में लाए जाते होंगे। लोथल में गोदामों में वायुसंचालन के रास्तों में राख में अनेक मुद्रांकण पाए गए हैं। ये सम्भवतया आयातित माल के गट्ठरों को खोलने के बाद फैंक दिए जाते होंगे। इन मुहरों पर विभिन्न जानवरों की आकृतियाँ भी चित्रित हैं और इन पर जो लिपि उत्कीर्ण है वह अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी हैं। ऐसा लगता है कि दूरस्थ स्थानों के साथ व्यापार विनिमय में इनका प्रयोग होता था।

बोध प्रश्न 3

1) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगायें।

   क) हड़प्पाकालीन नगर आत्मनिर्भर थे। ( )

   ख) हड़प्पा-सभ्यता के लोगों का दूर तक फैले स्थानों में बस्तियाँ बसाने का उद्देश्य प्रधान रूप से आर्थिक था। ( )

   ग) बड़े शहरों की अवस्थिति को निर्धारित करने में किसी क्षेत्र की खाद्य उत्पादन क्षमता एक महत्त्वपूर्ण घटक थी। ( )

   घ) नदी परिवहन आवागमन का सबसे सस्ता और आसान साधन था। ( )

   ङ) हड़प्पाकालीन बस्तियों में पाए गए औज़ारों की बनावट में समरूपता नहीं दिखाई देती। ( )

   च) सिन्धु के व्यापारी अपने माल का विनिमय मेसोपोटामिया की चांदी से करते थे। ( )

2) खाली स्थान भरें।

   क) हड़प्पा-सभ्यता के लोग सोना (स्वर्ण) .... (कश्मीर / राजस्थान) से प्राप्त करते थे।

   ख) (लोहा / टिन) .... से हड़प्पा सभ्यता के लोग परिचित नहीं थे।

   ग) वैदूर्यमणि .... (कालीबंगन / शोर्तुघई) में अधिक मात्रा में पाया गया है।

   घ) ताम्र .... (राजस्थान / गुजरात) से प्राप्त होता था।

   ङ) (सुत्कागन दोर / कालीबंगन) .... हड़प्पा-सभ्यता के लोगों और मेसोपोटामिया वासियों के बीच एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक बंदरगाह था।

3) हड़प्पाकालीन नगरों में विनिमय प्रणाली के बारे में विवेचन करें।

....

....

....

....

....

6.11 फ़ारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया के साथ व्यापार

अब तक हमने हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के अंतर्क्षेत्रीय विनिमय कार्यकलापों की चर्चा की है। इन कार्यकलापों में हड़प्पा-सभ्यता के लोग प्रमुख भागीदार थे। अब हम हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की समकालीन पश्चिम एशिया की सभ्यताओं के साथ व्यापार और विनिमय के कार्यकलापों की चर्चा करेंगे। मेसोपोटामिया हड़प्पा-सभ्यता के मुख्य क्षेत्र से हज़ारों मील दूर स्थित था फिर भी इन दोनों सभ्यताओं के बीच व्यापार सम्बन्ध थे।

6.11.1 पुरातात्विक प्रमाण

विनिमय के विषय में हमारी जानकारी का आधार मोसोपोटामिया में पाई गई विशिष्ट हड़प्पाकालीन मुहरें हैं। मेसोपोटामिया के सूसा (Susa), उर (Ur) आदि शहरों में हड़प्पा सभ्यता की, या हड़प्पाकालीन मुहरों से मिलती-जुलती लगभग दो दर्जन मुहरें पाई गई हैं। हाल ही में फारस की खाड़ी में फैलका (Failka) और बेहरैन (Behrain) जैसे प्राचीन स्थानों में भी हड़प्पाकालीन मुहरें पाई गई हैं। मेसोपोटामिया के निप्पुर (Nippur) शहर में एक मुहर पाई गई है जिस पर हड़प्पाकालीन लिपि उत्कीर्ण है और एक सींग वाला पशु बना हुआ है। दो चीकोर सिंधु मुहरें जिन पर एक सींग वाला पशु और सिन्धु लिपि उत्कीर्ण है, मेसोपोटामिया के किश (Kish) शहर में पाई गई हैं। एक अन्य शहर उम्मा (Umma) में भी सिंधु सभ्यता की एक मुहर पाई गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि सिंधु घाटी और इन क्षेत्रों के बीच व्यापार विनिमय संबंध थे।

तेल असमार (Tel Asmar) में हड़प्पाकालीन मृद्भाण्ड शिल्प नक्काशी किये हुए लाल पत्थर के मनके और गुर्दे के आकार की हड्डी के जड़ाऊ काम पाए गए हैं। इनसे मेसोपोटामिया और हड़प्पा-सभ्यता के लोगों के बीच व्यापार सम्बन्ध के बारे में पता चलता है। पक्की मिट्टी की छोटी मूर्तियाँ, जो साधारणतया सिंधु घाटी में पाई गई हैं, मेसोपोटामिया में निप्पुर में भी पाई गई हैं। इन छोटी मूर्तियों में प्रमुख हैं – एक मोटे पेट वाला नग्न पुरुष, जानवरों जैसे चेहरे, गोलमटोल पूंछें और हिलने डुलने वाले हाथों का जोड़ने के लिए कंधों में खाली जगह। निप्पुर में इसी प्रकार की तीन छोटी मूर्तियाँ पाई गई हैं जिनमें निप्पुर पर हड़प्पा-सभ्यता के प्रभाव का पता चलता है। सिंधु के चौसर के नमूने (1/2, 3/6, 4/5) मोसोपोटामिया के ऊपर (Ur), निप्पुर (Nippur) और तेल असमार शहरों में पाए गए हैं। इनके अलावा मेसोपोटामिया में विशिष्ट आकार के मनके पाए गए हैं और लगता है कि ये सिंधु घाटी से ही लाए गए थे। चन्हुंदड़ों में पाए गए इकहरे, दोहरे, तिहरे वृत्ताकार मनके, मेसोपोटामिया के किश (Kish) में पाए गए मनकों से बहुत मिलते-जुलते हैं। फारस की खाड़ी और मेसोपोटामिया में हड़प्पाकालीन तौल (बाट) भी पाए गए हैं।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में मेसोपोटामिया की बहुत ही कम वस्तुएँ पाई गई हैं। मोहनजोदड़ो में मेसोपोटामिया की सभ्यता के बेलनाकार मुहरों के नमूने पाए गए हैं। सम्भवतः उनके हड़प्पा के ही किसी केंद्र में बनाया गया होगा। कुछ धातु की वस्तुएँ शायद

मेसोपोटामिया से लाई गई थीं। लोवन में एक बटन के आकार की छोटी मुहर पाई गई है। बहरैन (Behrain) के बंदरगाह की खुदाई द्वारा इस प्रकार की अनेक मुहरें पाई गई हैं। लगता है कि ये मुहरें फारस की खाड़ी के बंदरगाहों से लाई गई थीं। लोथल में बन (bun) के आकार के तांबे के ढले हुए धातु पिंड भी पाए गए हैं। ये फारस की खाड़ी में द्वीपों और सूसा में पाई गई मुहरों से मिलते-जुलते हैं।

जिन वस्तुओं को हड़प्पा-सभ्यता और मोसोपोटामिया में पाया जाना हड़प्पा और मेसोपोटामिया वासियों के बीच प्रत्यक्ष व्यापार-विनिमय की ओर संकेत करता है, इनके कम मात्रा में पाए जाने के कारण विद्वानों को इन दो सभ्यताओं के बीच प्रत्यक्ष व्यापार की धारणा पर संदेह है। यह माना जाता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग अपने माल को व्यापार के लिए फारस की खाड़ी की बस्तियों में ले जाते होंगे। कुछ सामान बेहरैन जैसे फारस की खाड़ी के बंदरगाहों के व्यापारियों द्वारा मेसोपोटामिया के नगरों में भेजा जाता होगा।

6.11.2 लिखित प्रमाण

मेसोपोटामिया में कुछ प्राचीन लेख पाए गए हैं जिनसे उसके हड़प्पाकालीन सभ्यता के साथ व्यापार सम्बन्धों का पता चलता है। मेसोपोटामिया में स्थित अक्काद (Akkad) के प्रसिद्ध सम्राट सारगॉन (Sargon) (2350 बी.सी.ई.) का यह दावा था कि दिलमुन (Dilmun), मगान (Magan), और मेलुहा (Meluha) के जहाज उसकी राजधानी में लंगर डालते थे। विद्वान साधारणतया मेलुहा तथा हड़प्पा-सभ्यता के समुद्रतटीय नगरों या सिंधु नदी के क्षेत्र को एक ही मानते हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि मगान तथा मकरान समुद्रतट एक ही हैं। उर (Ur) शहर के व्यापारियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ अन्य दस्तावेज़ भी पाए गए हैं। ये इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उर के व्यापारी मेलुहा से तांबा, गोमेद, हाथी दांत, सीपी, वैदूर्यमणि, मोती और आबनूस आयात करते थे। ऐसा लगता है कि ये वस्तुएँ हड़प्पाकालीन बस्तियों में काफी मात्रा में उपलब्ध थीं।

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली कुछ वस्तुओं जैसे तांबे के विषय में हमें कोई जानकारी नहीं है। फिर भी हमें यह याद रखना चाहिए कि हड़प्पा सभ्यता के लोग मध्य एशिया तक के एक बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र के संसाधनों का उपयोग कर रहे थे। शायद उन्होंने आरम्भिक हड़प्पा काल में मध्य एशिया और अफ़गानिस्तान के व्यापार तंत्र पर अधिकार कर लिया था। मेसोपोटामिया के आरम्भिक साहित्य में मेलुहा के व्यापार समुदाय का जिक्र है जो मेसोपोटामिया में रहता था। मेसोपोटामिया के एक अन्य लिखित दस्तावेज़ में मेलुहा की भाषा के सरकारी दुभाषिए (Interpreter) का जिक्र है। इन सब उदाहरणों से संकेत मिलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों और मेसोपोटामिया के लोगों के बीच सम्बन्ध अप्रत्यक्ष नहीं थे। इन समाजों के बीच भौगोलिक दूरी को देखते हुए इनके बीच नियमित आदान-प्रदान की आशा नहीं की जा सकती। फिर भी इन दोनों सभ्यताओं के बीच बहुत नजदीकी संबंध थे। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि मेसोपोटामिया का राजा यह दावा करता था कि मेलुहा के जहाज उसके बंदरगाहों में लंगर डालते हैं।

हड़प्पा में मेसोपोटामिया की वस्तुओं का न पाया जाना इस तथ्य से स्पष्ट किया जा सकता है कि परम्परागत रूप में मेसोपोटामिया के लोग कपड़े, ऊन, खुशबूदार तेल और चमड़े के उत्पाद बाहर भेजते थे। ये सभी वस्तुएँ जल्दी नष्ट हो जाती हैं इस कारण इनके अवशेष नहीं मिले हैं। शायद चांदी भी निर्यात किया जाता था। हड़प्पा सभ्यता की बस्तियों में चांदी के स्रोत नहीं थे। लेकिन वहाँ के लोग इसका काफी मात्रा में प्रयोग करते थे। सम्भवतया यह मेसोपोटामिया से आयात किया जाता होगा।

6.12 परिवहन के साधन

सम्पर्क और विनिमय के स्वरूप की चर्चा के अंतर्गत परिवहन के साधनों का प्रश्न भी सामने आता है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाई गई मुहरों में जहाजों और नावों को चित्रित किया गया है। लोथल में पक्की मिट्टी से बने जहाज का एक नमूना पाया गया है जिसमें मस्तूल के लिए एक लकड़ी चिन्हित खोल तथा मस्तूल लगाने के लिए छेद है। लोथल में ही 219 X 37 मीटर लम्बाई का एक हौज मिला है जिसकी 4.5 मीटर ऊंची ईंटों की दीवारें हैं। इसके उत्खनक ने इसको एक जहाजी पोतगाह के रूप में पहचाना है। इस स्थान के अलावा अरब सागर के समुद्रतट पर भी अनेक बंदरगाह थे। रंगपुर, सोमनाथ, बालाकोट जैसे हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा बाहर जाने के रास्ते के रूप में प्रयोग में लाए जाते थे। मकरान समुद्रतट जैसे अनुपयोगी क्षेत्रों में भी सुत्कागन दोर और सुत्काकोह जैसी हड़प्पाकालीन बस्तियाँ पाई गई हैं। ऐसे अनुपयोगी क्षेत्रों में उनके स्थित होने का मुख्य कारण था कि वे पश्चिमी भारत और सिंधु के समुद्रतट पर टकराने वाली लहरों तथा तूफानी हवाओं से सुरक्षित थे। बारिश के महीनों में वे हड़प्पा-सभ्यता के लोगों द्वारा बाहर जाने के रास्ते के रूप में उपयोग में लाए जाते थे। सुत्कागन-दोर आधुनिक पाकिस्तान और ईरान की सीमा पर स्थित है। यह सम्भव है कि ईरान की तरफ भी कुछ हड़प्पाकालीन बस्तियाँ थी। उनका अभी तक पता नहीं लगा है। इस तरह समुद्र-तट के विस्तार से हड़प्पावासियों को फारस की खाड़ी तक अपने जहाजों के लंगर डालने की सुविधा प्राप्त हो सकेगी।

बैलगाड़ी अंतर्देशीय परिवहन का साधन थी। हड़प्पाकालीन बस्तियों से मिट्टी के बने बैलगाड़ी के अनेक नमूने पाए गए हैं। हड़प्पा में एक कांसे की गाड़ी का नमूना पाया गया है जिसमें एक चालक बैठा है तथा छोटी गाड़ियों के नमूने भी पाए गए हैं जो बहुत कुछ पंजाब के आधुनिक इक्कों से मिलते-जुलते हैं। जंगलों वाले क्षेत्र में लम्बे सफर के लिए भारवाही बैलों के काफिले परिवहन का मुख्य साधन रहे होंगे। ऐतिहासिक काल में खानाबदोश चरवाहे सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजते थे। सम्भवतया हड़प्पा-सभ्यता के लोग भी ऐसा ही करते होंगे। उस समय नौ परिवहन अधिक प्रचलित सुलभ तथा सस्ता था।
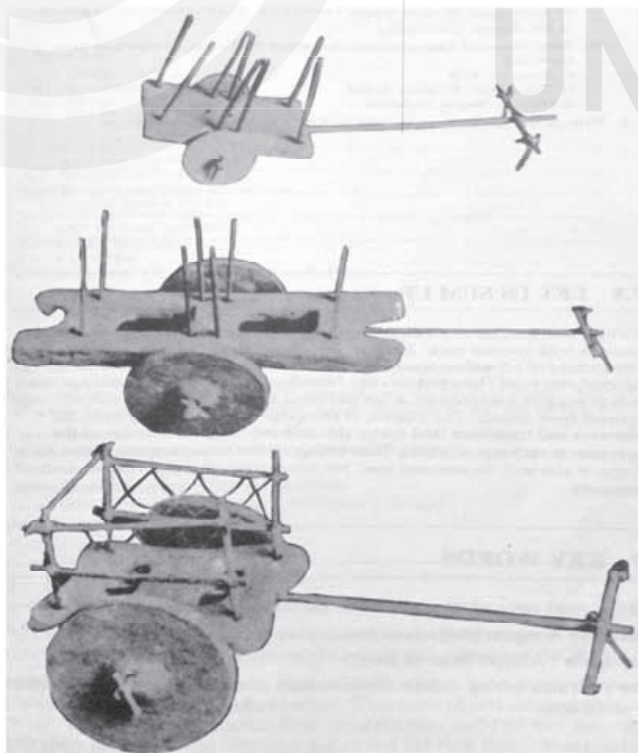
खिलौना गाड़ी। स्रोत : ई.एच.आई-02, खंड-03, इकाई-7।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) या गलत (x) का निशान लगाएँ :

i) क) मेसोपोटामिया के लिखित स्रोतों में इस बात का जिक्र नहीं है कि समकालीन हड़प्पा-सभ्यता से उसका कोई सम्पर्क था। ( )

ख) मेसोपोटामिया के शहरों में हड़प्पा-सभ्यता की मुहरों की खोज से सिद्ध होता है कि हड़प्पा और मेसोपोटामिया सभ्यताओं के बीच सम्पर्क था। ( )

ग) लोथल में जहाज़ी पोतगाह की खोज से हड़प्पा-सभ्यता के समुद्रवर्ती व्यापार के बारे में पता चलता है। ( )

घ) हड़प्पा-सभ्यता में परिवहन के रूप में बैलगाड़ी प्रचलित नहीं थी। ( )

ii) सही (✓) का निशान लगाएँ :

हड़प्पाकालीन शहरों से मेसोपोटामिया को क्या निर्यात किया जाता था।

क) कपड़े, खुशबूदार तेल, चमड़े का सामान।

ख) चांदी, सोना, कांसा।

ग) तांबा, हाथी दांत, वैदूर्यमणि।

iii) हड़प्पा ाकाल के कुछ प्रमुख बंदरगाह थे :

क) दिलमुन, मगान, मेलुहा।

ख) कालीबंगन, बनवाली, लोथल।

ग) उर (Ur), निप्पुर (Nippur), चहूंदड़ो।

iv) हड़प्पा मुहरें इन प्रमुख मेसोपोटामिया स्थलों से प्राप्त हुई हैं :

क) सूसा, उर, किश

ख) तेल असमार, बेहरैन, अक्काद

ग) दिलमुन, मगान, मेलुहा

2) हड़प्पाकालीन परिवहन के विषय में पाँच वाक्यों में लिखें।

....

....

....

....

....

6.13 समाज

हड़प्पा से प्राप्त पुरातात्विक उपलब्धियों के आधार पर इस काल के समाज की कल्पना की जा सकती है। हम इस समाज के लोगों की वेश-भूषा और खान-पान, व्यापार, शिल्प कलायें तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के प्रति जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आइए सबसे पहले हम हड़प्पा के लोगों की प्रकट रूप एवं वेश-भूषा के संबंध में चर्चा करें।

6.13.1 वेश-भूषा

हड़प्पावासी देखने में कैसे लगते थे? इस प्रश्न का उत्तर इस काल की पकी हुई मिट्टी से बनी हुई मूर्तियों तथा पाषाण शिल्प के अध्ययन से मिल सकता है। जानकारी प्राप्त करने का एक अन्य तरीका हड़प्पा बस्तियों की खुदाई से प्राप्त कंकालों का अध्ययन हो सकता है।

कंकालों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हड़प्पा के लोग वर्तमान उत्तर भारत के निवासियों जैसे दिखते थे। उनके चेहरे, रंग रूप एवं लम्बाई में इन क्षेत्रों के वर्तमान निवासियों से काफी कुछ समानता दिखती है। आधुनिक नर-नारियों की भांति वे पैन्ट-शर्ट अथवा सलवार-कमीज नहीं पहनते थे। हम उनके पहनावे एवं फैशनों का अनुमान उस काल की शिल्प कला तथा पक्की मिट्टी की बनी मूर्तियों के अध्ययन से लगा सकते हैं। पुरुषों को बहुधा ऐसे पहनावे में दिखाया गया है जिससे उनके शरीर का निचला भाग लपेटा रहता था तथा वस्त्र का एक सिरा बायें कन्धे से लेकर दायें बाजू के नीचे पहुँच जाता था, जिस प्रकार आधुनिक साड़ी पहनी जाती है। दूसरी पोशाक एक घुटने तक घाघरा और कमीज थी जो पुरुषों और महिलाओं दोनों के द्वारा पहनी जाती थी। पुरुष अपने बाल विभिन्न तरीकों से बनाते थे, कभी-कभी जूड़ा बनाकर माथे पर पट्टी बांधते थे। आधुनिक भारतीयों की अपेक्षा वे कहीं अधिक गहनों का प्रयोग करते थे। वे अंगूठियाँ पहनते थे, कंगन पहनते थे तथा गले और हाथों में काफी गहने पहनते थे। दाढ़ी रखना सामान्य था लेकिन वे अपनी मूंछे मुंडवा लेते थे। महिलायें कमर में गहने पहनती थीं। गले में वे कई प्रकार के हार पहनती थीं, चूड़ियों का भी प्रयोग होता था तथा बाल काढ़ने के असंख्य तरीके थे। पुरुष और महिलायें दोनों ही लंबे बाल रखते थे वे सूती कपड़े पहनते थे तथा एक मूर्ति में वस्त्र लाल रंगों में त्रिदल पद्धति में दिखाया गया है। इन तमाम फैशनों के बावजूद यदि हड़प्पा-सभ्यता का कोई पुरुष हमें आज सड़क पर टहलता हुआ दिख जाय तो वह हमें किसी भिक्षु के स्वरूप ही दिखाई देगा।
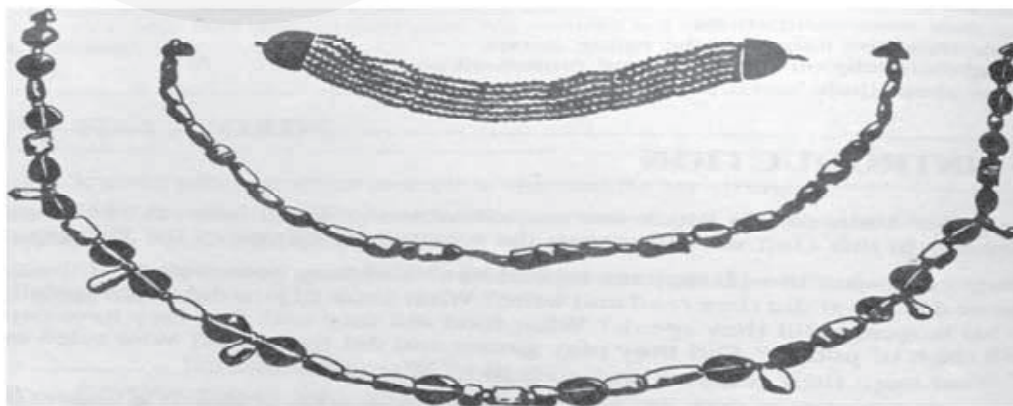
सोने और अर्ध-कीमती पत्थर के जेवर। स्रोत : ई.एच.आई-02, खंड-2, इकाई-8।

6.13.2 खान-पान

वे क्या खाते थे? इस संदर्भ में हमें बहुत कम जानकारी है। सिन्ध और पंजाब में हड़प्पा निवासी गेहूँ और जौं खाते थे। राजस्थान में रहने वाले लोगों को केवल जौं से ही संतुष्ट होना पड़ता था। गुजरात के रंगपुर, सुरकोत्ड़ा आदि स्थानों के हड़प्पा निवासी चावल और बाजरा

खाना पसन्द करते थे। आइए ये देखने का प्रयास किया जाय कि वे प्रोटीन और चर्बी युक्त भोजन कहाँ से प्राप्त करते थे?

वे तेल और चर्बी, तिल, सरसों तथा संभवतः घी से प्राप्त करते थे। हमें इस बात की जानकारी नहीं है कि वे गन्ने की खेती करते थे या नहीं। अतः चीनी के विषय में हमारे पास जानकारी नहीं है। सम्भव है कि वे अपने खाने को मीठा बनाने के लिए शहद का उपयोग करते हों। हड़प्पा स्थलों से मिलने वाले उन्नाव और खजूर के बीजों से यहाँ के लोगों की फल के प्रति प्राथमिकता का पता चलता है। संभवतः वे केले, अनार, खरबूजा, नींबू, अंजीर तथा आम भी खाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे विभिन्न प्रकार के जंगली फलों का भी सेवन करते थे लेकिन उन फलों की पहचान करना अत्यंत कठिन है। वे मटर भी खाते थे। इसके अतिरिक्त हड़प्पा निवासी मांसाहारी भोजन भी शौक से खाते थे। हड़प्पा बस्तियों के अवशेषों में हिरन, भालू, भेड़ तथा बकरियों की हड्डियाँ मिलती रही हैं। वे मछली, दूध तथा दही का भी सेवन करते रहे होंगे। लेकिन न तो उन्हें चाय का ज्ञान था न ही आलू के चिप्स का। क्या आप स्वयं इसका कारण ढूंढ़ सकते हो?

6.13.3 भाषा एवं लिपि

वे कौन सी भाषा बोलते थे और क्या लिखते पढ़ते थे? इसकी भी हमें स्पष्ट जानकारी नहीं है। हम केवल हड़प्पा निवासियों की लिपि को खोज सके हैं जैसा कि पहले कहा जा चुका है हम अभी तक इस लिपि को पढ़ने में असमर्थ रहे हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वहाँ लिखी जाने वाली भाषा द्रविड़ भाषा समूहों (जैसे तमिल) की जननी थी। अन्य विद्वान इसे किसी आर्य भाषा (जैसे संस्कृत) की जननी मानते हैं।

अभी तक किसी भी विद्वान ने सर्वमान्य तर्क प्रस्तुत नहीं किया है। हड़प्पा की लिपि के संदर्भ में एक बात स्पष्ट नजर आती है कि पूरी हड़प्पा-सभ्यता के काल में इस लिपि में कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं जबकि अन्य सभी प्राचीन लिपियों में समय के साथ-साथ परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इससे ये सिद्ध होता है कि हड़प्पा की लिपि का उपयोग विस्तृत नहीं था। संभवतः एक वर्ग विशेष लिखित शब्दों पर आधिपत्य जमाये बैठा था। वे क्या सीखते थे और कैसे सीखते थे इसका हमारे पास उत्तर नहीं है। समकालीन मेसोपोटामिया की भांति हड़प्पा में भी स्कूल थे अथवा नहीं इसकी जानकारी हमारे पास नहीं है।

6.13.4 युद्ध

क्या वे खेल खेलते थे और युद्ध करते थे? हम जानते हैं कि वे चौसर खेलते थे लेकिन इसके आगे हमें जानकारी नहीं है। उनके युद्ध करने के काफी प्रमाण हमारे समक्ष हैं। संभवतः ऐसा इसलिए है कि विभिन्न हड़प्पा स्थलों की खुदाई में लगे पुरातत्व शास्त्री युद्ध के प्रमाण ढूंढ़ रहे थे न कि खेल कूद के। इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह भी मिलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के उद्भव के समय कई ''आरंभिक हड़प्पा' स्थल (जैसे कोट दीजी तथा कालीबंगन) जला दिये गये थे। दुर्घटनापूर्ण अग्नि से बड़े नगरों का ध्वस्त हो जाना असंभव तो नहीं है। लेकिन इस बात की प्रबल संभावना है कि ये बस्तियाँ विजयी मानवीय समूहों द्वारा जलायी गयी होंगी। इसके अतिरिक्त मोहनजोदड़ो की गलियों में कंकालों के बिखरे पाये जाने के भी प्रमाण मिलते हैं। प्राचीनतम काल से लेकर अब तक के समाजों में नियमित रूप से अपने मृतकों का अंतिम संस्कार परम्परागत रूप से किया जाता रहा है। यह स्वाभाविक ही है कि हड़प्पा के लोग अपने मृतकों को सड़कों पर सड़ने के लिए नहीं छोड़ देते थे। अतः स्पष्ट है कि किसी असाधारण टकराव के कारण ही हड़प्पा के लोग अपने मृतकों का अंतिम संस्कार नहीं कर पाए। हड़प्पा के कई नगरों के चारों ओर किलेबंदी और दुर्ग बने होने से इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है कि इन लोगों को बाह्य तत्वों से सुरक्षा की आवश्यकता प्रतीत होती

थी। कुछ सुरक्षा दीवारों का उपयोग बाढ़ से बचने के लिए बांध के रूप में भी हुआ होगा। हड़प्पा नगरों के आस-पास की ग्रामीण जनता की तुलना में नगरवासियों की संपन्नता को देखते हुए इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि अपनी बस्तियों की किलेबंदी करके अपने जानमाल की सुरक्षा करना चाहते थे। यहाँ से तांबे एवं कांसे के काफी हथियार भी प्राप्त हुए हैं।

6.13.5 मुख्य शिल्प व्यवसाय

हड़प्पा निवासी अपने जीवन यापन के लिए क्या करते थे? इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षाकृत से आसान है। इसका कारण यह है कि पूर्व आधुनिक समाजों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन समाजों के अधिकतर लोग कृषि से जुड़े हुए थे लेकिन हड़प्पा के काफी सारे लोग विभिन्न प्रकार की अन्य गतिविधियों में भी लगे हुए थे। मालाएँ बनाना हड़प्पा के निवासियों का मन पसंद व्यवसाय था। मोहनजोदड़ो चंहुदड़ो तथा लोथल बस्तियों की काफी बड़ी संख्या में हड़प्पावासी इस कार्य से जुड़े हुए थे। चूंकि मालाएँ बनाने में अकीम (Carnllion), लाजवर्द (Lapistazuli), सुलेमानी पत्थर (Agate) तथा नीलम (Jasper) जैसे बहुमूल्य रत्नों का प्रयोग होता था अतः संभव है कि प्रत्येक रत्न के माला बनाने के लिए भिन्न दक्ष कारीगर होते हों। कुछ अन्य हड़प्पावासी पत्थर के औज़ार में दक्ष थे। इनके अतिरिक्त हड़प्पा नगरों में कुम्हारों, कांसे एवं तांबे के कार्य करने वालों, पत्थर के काम करने वालों, घर बनाने वालों, ईंट बनाने वालों तथा मुहरें काटने वाले होने की पूरी संभावना है। जब हम हड़प्पा-सभ्यता की चर्चा करते हैं तो हम बुनियाद पर इस युग की मुहरों, ईंटों, बर्तनों तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं का सहारा लेते हैं। वस्तुओं के पाए जाने का अर्थ है कि इनके बनाने वाले इस युग में मौजूद थे।

बोध प्रश्न 5

1) निम्नलिखित में से कौन से वाक्य सही (✓) हैं और कौन गलत (×) हैं?

   i) हड़प्पा सभ्यता के पूरे युग में इस क्षेत्र की लिपि में काफी परिवर्तन आए। ( )

   ii) हड़प्पावासी शुद्ध शाकाहारी थे। ( )

   iii) साधारणतया हड़प्पा के नगर किले बंद होते थे। ( )

   iv) हड़प्पावासी पुरुष गहने पहनने के शौकीन थे। ( )

2) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

   i) हमें हड़प्पा के लोगों की वेश-भूषा तथा फैशनों की जानकारी .... से प्राप्त होती है।

   ii) हड़प्पा के लोग धातु औज़ार बनाने में .... धातु का प्रयोग करते थे।

   iii) राजस्थान में .... पंजाब और सिंध में .... और गुजरात में हड़प्पावासियों का नियमित भोजन .... था।

   iv) हड़प्पा बस्तियों में भारी मात्रा में पायी जाने वाली मालाएँ ....की बनी हुई हैं।

3) हड़प्पा लिपि के विषय में पाँच पंक्तियाँ लिखें।

   ....

....

....

....

....

6.14 हड़प्पा के शासक

हड़प्पा समाज के शीर्ष पर तीन प्रकार के लोगों की अदृश्य श्रेणियाँ थीं – शासक, व्यापारी तथा पुरोहित। सामाजिक संगठन की समस्याओं की समझ के आधार पर इन श्रेणियों की कल्पना की जा सकती है। सभ्यता के उदय का संबंध सीधे-सीधे केंद्रीकृत निर्णय प्रणाली के अभ्युदय से है, जिसे राज्य कहा जाता है। हड़प्पा-सभ्यता के अन्तर्गत स्थानीय शासन चलाने के लिए निर्णय लेने के अधिकार रखने वालों के अस्तित्व की प्रबल संभावना है। इसके कई कारण हैं।

1) व्यापक स्तर पर नीतियों की व्यवस्था तथा सड़कें बनाने एवं व्यवस्थित रखने के लिए शहरों में स्थानीय प्रशासन की आवश्यकता रही होगी।

2) अनाज गोदामों के होने से भी इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है। आस-पास से अनाज इकट्ठा करके नागरिकों के बीच बाँटने के लिए प्रशासन अवश्य रहा होगा।

3) जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हथियारों, औज़ारों और ईंटों की बनावट में असाधारण समरूपता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हथियार तथा औज़ार किसी एक स्थान पर बड़े पैमाने पर बनाए जाते और विभिन्न नगरों एवं बस्तियों में वितरित किए जाते थे। हज़ारों मील के क्षेत्र में इन वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रेता के प्रबंध से वह वर्ग असाधारण रूप से शक्तिशाली बन गया होगा जो कि निर्णय लेता होगा कि कितना उत्पादन हो और कहाँ उसका वितरण हो। यदि यह लोग किसी नगर को वस्तुएँ देना बंद कर दें तो वहाँ औज़ारों और हथियारों का अकाल ही पड़ जाय।

4) बड़े नगरों के निवासियों द्वारा उत्पादनों के प्रकार एवं मात्रा के उपभोग की दर से संकेत मिलता है कि वहाँ कोई शासक वर्ग रहता होगा। काफी वस्तुएँ सुदूर प्रदेशों से लाई गयी दुर्लभ वस्तुएँ होती थीं। बहुमूल्य पत्थरों एवं धातुओं से संपन्न होने से मालिकों की शेष जनता की तुलना में प्रतिष्ठा बढ़ जाती थी।

5) इसी प्रकार नगरों के वृहत होने से केवल इस ओर ही संकेत नहीं मिलता कि वहाँ काफी बड़ी संख्या रहती थी बल्कि इस तथ्य का भी पता चलता है कि वहाँ मंदिरों तथा महलों जैसे भवन भी मौजूद थे। इन भवनों में रहने वाले लोग राजनैतिक आर्थिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में अधिकार सम्पन्न रहे होंगे। यही कारण है कि वे मोहरें जिन पर व्यापारियों, पुरोहितों अथवा प्रशासकों के अधिकार चिन्ह अंकित हैं, सबसे अधिक संख्या में मोहनजोदड़ो से मिलती हैं। जहाँ कि सबसे अधिक संख्या में मन्दिरों और महलों के रूप में अवशेष पाये गये हैं।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि मोहनजोदड़ो हड़प्पा-सभ्यता की राजधानी थी। यह भी संभव है कि हड़प्पा-सभ्यता में दो अथवा पाँच स्वतंत्र राजनैतिक इकाइयाँ रही हों। हमारे कहने का तात्पर्य केवल यह है कि मोहनजोदड़ो नगर राजनैतिक आर्थिक शक्ति का केंद्र बन गया था। हमें यह ज्ञात नहीं है कि हड़प्पा के शासक कौन थे, संभव है वे राजा रहे हों अथवा पुरोहित अथवा व्यापारी। हम जानते हैं कि पूर्व आधुनिक समाजों में आर्थिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक इकाइयों में स्पष्ट रूप से भेद नहीं किया जाता था जिसका अर्थ यह है कि एक

ही व्यक्ति प्रधान पुरोहित भी हो सकता था, राजा भी हो सकता था और धनी व्यापारी भी, लेकिन उपलब्ध प्रमाणों से संकेत मिलता है कि यहाँ शासक वर्ग अवश्य मौजूद था तथापि इस शासक वर्ग के स्पष्ट रूप से हम अवगत नहीं हैं।

6.15 धर्म एवं धार्मिक रीतियाँ

हड़प्पा के लोग किसकी पूजा करते थे? यह प्रश्न विद्वानों के बीच काफी चर्चा का विषय रहा है। हड़प्पा के अतीत के अवशेष इस संदर्भ में कोई सूत्र नहीं देते हैं। अतः उसकी धार्मिक मान्यताओं को समझने के लिए हमें केवल अपनी बुद्धि और तर्क पर निर्भर होना पड़ेगा। मुख्य समस्या यह है कि लिखित स्रोतों के अभाव में उनकी लौकिक और अलौकिक गतिविधियों के बीच अन्तर करना कठिन है, इसलिए हड़प्पा से प्राप्त होने वाली प्रत्येक जानकारी पर अलौकिक गतिविधि होने का शक पैदा होता है। इस पृष्ठभूमि में उचित होगा कि हड़प्पा के लोगों की धार्मिक मान्यताओं को आधुनिक मान्यताओं के परिप्रेक्ष में रखकर उन्हें समझा जाय।

6.15.1 पूजा-स्थल

मोहनजोदड़ो के किलेबंद नगर तथा निचले नगर की कई बड़ी इमारतें मन्दिरों के रूप में देखी गयी हैं। इस दृष्टिकोण से इस तथ्य को और भी बल मिलता है कि अधिकतर पत्थर की मूर्तियाँ इन्हीं इमारतों में मिली हैं।

मोहनजोदड़ो के निचले नगर में एक वृहत् इमारत मिली हैं। इस इमारत में संस्मारकीय द्वार तथा एक मंच की ओर ले जाने वाली दोहरी सीढ़ियों का रास्ता है। इस मंच पर 16½ इंच ऊँची एक पाषाण शिल्प कृति प्राप्त हुई है। इस कृति में अपने घुटनों पर हाथ रखे हुए एक पुरुष बैठा है। पुरुष के चेहरे पर दाढ़ी है तथा माथे पर पट्टी बंधी हुई है जिसके दोनों सिरे पीठ की ओर लटके हुए हैं। इसी इमारत में एक और पत्थर की मूर्ति प्राप्त हुई है यही कारण है कि विद्वानों ने इस इमारत को मन्दिर माना है।

मोहनजोदड़ो में किले के खंडहरों पर कई ऐसी इमारतों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिन्हें देखकर प्रतीत होता है कि वे हड़प्पा के पवित्र स्थल रहे होंगे, इनमें विशाल स्नानगृह सबसे अधिक प्रसिद्ध है। भारत के बाद के ऐतिहासिक युगों में इस प्रकार के विस्तृत स्नानगृहों का निर्माण पवित्र संस्कार स्थलों में होता था। अतः संभव है कि विशाल स्नानगृह कोई साधारण तरण ताल न रहा हो अपितु इसका पवित्र संस्कार स्थल के रूप में महत्त्व हो।

विशाल स्नानगृह के निकट ही एक अन्य विशाल इमारत (230 X 78 फुट) पाई गयी है। जिसे किसी मुख्य पुरोहित का निवास स्थल अथवा पुरोहितों का मठ माना जाता है। इसी प्रकार किलेबंद क्षेत्र में एक सभागार पाया गया है। इसके पश्चिम की ओर एक साथ कई कमरे बने हुए मिले हैं जिनमें से एक में एक बैठे हुए पुरुष की मूर्ति भी मिली है। इसे भी एक धार्मिक इमारत के रूप में देखा गया है। इन पवित्र धार्मिक इमारतों से मोहनजोदड़ो की धार्मिक रीतियों की ओर संकेत मिलता है। हम यह मान सकते हैं कि कुछ धार्मिक गतिविधियाँ इस विशाल मंदिर जैसी इमारत में की जाती रही होंगी।

6.15.2 आराध्य

आराध्य अथवा पूज्य वस्तुओं के विषय में प्रमाण हड़प्पा की मुहरों एवं पकी मिट्टी की मूर्तियों से प्राप्त होते हैं, मुहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सबसे प्रसिद्ध देवता की पहचान आदि – शिव के रूप में की गई है। कई मुहरों में एक देवता जिसके सिर पर भैंस के सींग का मुकुट है, योगी की मुद्रा में बैठा हुआ है। देवता बकरी, हाथी, शेर तथा मृग से घिरा हुआ है। मार्शल ने इस देवता को पशुपति माना है। कई स्थानों पर देवता के सींग के बीच से एक पौधा उगता

दिखाया गया है। एक अन्य मुहर पर एक देवता जिसके सिर पर सींग और लम्बे बाल हैं, नंगे बदन पीपल की शाखाओं के बीच खड़ा है। एक उपासक उसके समक्ष झुका हुआ है। उपासक के पीछे आदमी के सिर वाली बकरी है तथा अन्य सात मानवीय आकृतियाँ हैं, इन मानवीय आकृतियों के लम्बी चोटियाँ हैं एवं सिर पर लम्बे वस्त्र बंधे हैं। एक मुहर में योगी के साथ एक सर्प की आकृति हैं। सींग वाली सभी आकृतियों के साथ दर्शाये गये लक्षण को उत्तर भारतीय इतिहास के शिव से संबंधित माना गया है। कुछ हड़प्पा बस्तियों से शिव लिंग भी प्राप्त हुए हैं। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने शिव को हड़प्पा का सबसे महत्त्वपूर्ण देवता माना है। संभवतः सारे मंदिरों में शिव की पूजा होती थी।

मातृ देवी

हड़प्पा बस्तियों में भारी संख्या में पक्की मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें महिलाओं की भी मूर्तियाँ हैं जो कि बड़ी सी मेखला, वस्त्र तथा गले में हार पहने हुए दिखाई गयी हैं। वे सिरों पर पंखानुमी मुकुट धारण किए हैं। कभी-कभी उनके साथ शिशु भी दिखाये गये हैं। अभिजनन पंथ को आमतौर से गर्भ धारण के विभिन्न रूपों द्वारा चित्रित किया गया है। इन प्रमाणों से हड़प्पा सभ्यता में अभिजनन पंथ के प्रति विश्वास तथा देवियों की आराधना की ओर संकेत मिलते हैं।

वृक्ष आत्माएँ

संभवतः हड़प्पा के लोग वृक्ष आत्माओं की पूजा करते थे। कई स्थानों पर वृक्षों की शाखाओं के बीच से झांकती हुई आकृतियाँ दिखायी गयी हैं। विद्वानों का मत है कि यह आकृतियाँ वृक्ष आत्माओं को बिंबित करती है। कई चित्रों में आराधक पेड़ के सामने खड़े दिखाये गये हैं। कई अन्य स्थानों पर शेर अथवा किसी अन्य जानवर को वृक्ष के सामने बिंबित किया गया है। एक स्थान पर वृक्ष के सामने सात मानवीय आकृतियाँ खड़ी दिखाई गयी हैं और वृक्ष के अन्दर एक आकृति जिसके सिर पर सींग हैं, दिखाई गयी है। जैसी कि पीछे चर्चा की गई है सींग वाली आकृति संभवतः शिव की है। भारत में पीपल के पेड़ की पूजा युगों से होती रही है और कहीं-कहीं पीपल के पेड़ और शिव की पूजा साथ-साथ होती दिखाई गयी है। सात आकृतियाँ बहुधा सात महान् ऋषियों अथवा भारतीय मिथक की सात जननी मानी गयी है।

कुछ पौराणिक नायक

कुछ अन्य माननीय आकृतियाँ जिनका धार्मिक महत्त्व हो सकता है मुहरों और गण्डों पर पायी गयी हैं। मुहरों के सिर पर सींग तथा लम्बी दुम वाली आकृतियाँ बड़ी मात्रा में पायी गयी हैं। यदा कदा इन आकृतियों के खुर तथा पिछली टाँगे जानवरों जैसी दिखायी गयी हैं। कुछ अन्य मुहरें मेसोपोटामिया के मिथकों से मिलती-जुलती हैं। उदाहरण के लिए दो शेरों से लड़ता हुआ एक पुरुष हमारा ध्यान तुरन्त उस प्रसिद्ध योद्धा गिलगामेष की ओर ले जाता है जिसके विषय में दो शेरों को मारने की कथा प्रचलित है।

जानवरों की पूजा

ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा के लोग कई प्रकार के जानवरों की पूजा करते थे, इस संदर्भ में भी हमारी जानकारी का स्रोत मुहरें एवं पक्की मिट्टी की मूर्तियाँ हैं। चन्हुदाड़ो में एक मुहर मिली है जिसमें लिंग बाहर किए हुए सांड एक झुकी हुई मानव आकृति के साथ संभोग कर रहा है। यह निश्चित रूप से अभिजनन के प्रति विश्वास का सूचक है। मुहरों पर बहुधा एक ब्राह्मणी बैल चित्रित मिलता है जिसके गले के नीचे भारी झालरदार खाल लटकती दिखाई देती है। संभवतः वर्तमान सभ्यता के बैलों एवं गायों के प्रति आदर भाव के बीज हड़प्पा-सभ्यता में रहे हों।

मिथकीय जानवर

मुहरों पर विभिन्न समष्टि आकृति वाले जानवर चित्रित किए गए हैं। मुहरों पर ऐसे जानवर रूपी जीव मिलते हैं जिनका अगला हिस्सा मनुष्य जैसा है तथा पिछला शेर जैसा दिखाया गया है। इसी प्रकार भेड़ों, बैलों तथा हाथियों की मिली-जुली आकृतियों वाले समष्टि काफी संख्या में प्राप्त हुई हैं। वे निश्चित रूप से पूज्य आकृतियाँ रही होंगी। हड़प्पा के बाद के भारतीय परंपरा के मिथकों से समष्टि आकृति वाले जीवों जैसे ''नर सिंह'' का विशेष स्थान रहा है। हड़प्पा की मुहरों पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण जानवर एक श्रृङ्क (Unicorn) चित्रित मिलता है। यह एक घोड़े जैसा जानवर है जिसके सिर के बीच एक सींग निकली हुई है। इस जानवर के सामने एक विचित्र वस्तु दिखाई देती है। जो कि किसी अन्य जानवर से मिलती-जुलती नहीं है। इस चित्र में एक पिंजरे जैसी वस्तु एक दंड से लटकी रही है। दंड के बीच में एक कटोरे जैसी वस्तु है। हमें इस वस्तु का प्रयोजन ज्ञात नहीं है। इसकी पहचान पवित्र हौदे अथवा धूपदान के रूप में की गयी है। एक अन्य मुहर में एक श्रृङ्क एक मिथकीय पशु था क्योंकि इस प्रकार का कोई पशु कहीं नहीं पाया जाता। संभवतः इसकी उपासना की जाती रही होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि कालीबंगन एवं लोथल के हड़प्पावासी भिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे। कालीबंगन में किले में उभरी ईंटों के चबूतरे मिले हैं जिनके ऊपर ''अग्नि वेदियाँ'' हैं जिनमें पशुओं की हड्डियाँ एवं राख हैं। इस स्थान पर भी कुआं और स्नानगृह हैं। यह स्थान पूजा क्रिया का केंद्र रहा होगा जहाँ पशुओं की बलि, धार्मिक पवित्रीकरण तथा अग्नि की पूजा की जाती रही होगी। निचले नगर के कई मकानों में भी ''अग्नि *वेदी*'' वाले कमरे हैं। कई अन्य ''अग्नि वेदियाँ'' होने की भी जानकारी मिली है, लोथल में भी 'अग्निवेदियाँ'' पायी गयी हैं यह प्रमाण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि :

अ) इनमें यह संकेत मिलता है कि विभिन्न क्षेत्रों के हड़प्पावासी विभिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे, तथा

ब) वैदिक युग के धर्म के अग्नि पूजा का केंद्रीय महत्त्व था।

वैदिक युग के आर्यजन भिन्न प्रकार के लोग थे। कालीबंगन से मिले प्रमाणों से ज्ञात होता है कि आर्यों ने हड़प्पा क्षेत्र में आकर बसने के बाद हड़प्पा के लोगों की ही धार्मिक रीतियों को अपनाया।

6.15.3 मृतकों का अंतिम संस्कार

मानव जाति अपने सगे सम्बन्धियों के मृत शरीरों के अंतिम संस्कार को महत्त्वपूर्ण धार्मिक गतिविधि के रूप में मानती रही है। इसका कारण मृतकों के प्रति दृष्टिकोण तथा इस जीवन तथा मृत्योपरांत जीवन के संबंध में मानव जाति के विश्वास से परस्पर जुड़ाव है। हड़प्पा सभ्यता से मृतकों का कोई ऐसा स्मारक नहीं प्राप्त हो सका है जो मिश्र के पिरामिड अथवा मेसोपोटामियाँ के उप नगर के राजकीय कब्रिस्तान के वैभव की बराबरी कर सकें। तथापि हमें हड़प्पा के लोगों में प्रचलित अंतिम संस्कार पद्धति के विषय में कुछ प्रमाण मिले हैं।

हड़प्पा में कई कब्रें मिली हैं। शव साधारणतया उत्तर-दक्षिण दिशा में रखकर दफनाए जाते थे। उन्हें सीधा लिटाया जाता था। कब्र में बड़ी संख्या में मिट्टी के बर्तन रख दिए जाते थे। कुछ स्थानों पर शवों को गहनों जैसे सीप की चूड़ियों, हार तथा कान की बालियों के साथ दफनाया जाता था। कुछ कब्रों में तांबे के दर्पण, सीप और सुरमें की सलाइयाँ भी रखी जाती थीं। कई कब्रें ईंटों की बनी हुई मिली हैं। हड़प्पा में एक कब्र में ताबूत भी प्राप्त हुआ है। कालीबंगन में अंतिम संस्कार की भिन्न रीतियाँ देखने को मिली हैं। यहाँ पर छोटे-छोटे

वृत्ताकार गड्ढे देखे गए हैं। जिनमें बड़ी राखदानियाँ तथा मिट्टी के बर्तन मिले हैं। लेकिन यहाँ कंकालों के अवशेष नहीं मिले हैं। कुछ ऐसे भी गड्ढे मिले हैं जिनमें हड्डियाँ एकत्रित मिली हैं। लोथल में साथ-साथ दफनाए गए महिला एवं पुरुष के मुर्दों के कंकालों के जोड़े मिले हैं।

इन रीतियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हड़प्पा के लोगों में मुर्दों के अंतिम संस्कार की रीतियाँ भारत में बाद में आने वाले समय की रीतियों से भिन्न थीं। भारत के ऐतिहासिक चरणों में अंतिम संस्कार की मुख्य पद्धति दाह संस्कार प्रतीत होती है। साथ ही मुर्दों का सावधानीपूर्वक रखकर अंतिम संस्कार करना तथा आभूषण एवं श्रृंगार की वस्तुएँ उनके साथ रखना इस तथ्य का द्योतक है कि वे लोग मरणोपरांत जीवन में विश्वास रखते थे। इस विश्वास के स्वरूप के विषय में हमें जानकारी नहीं है।

खुदाई से प्राप्त विभिन्न वस्तुओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा-सभ्यता के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की धार्मिक रीतियाँ प्रचलित थीं। कालीबंगन तथा लोथल में अग्नि पूजा प्रचलित थी किन्तु हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो में ऐसा प्रचलन नहीं था। मोहनजोदड़ो में प्रचलित पवित्र स्नान की रीति संभवतः हड़प्पा में नहीं थी। अंतिम संस्कार में विस्तृत विभिन्नता देखने को मिलती है। एक साथ कई मुर्दे दफनाने से लेकर जोड़े दफनाये तथा मुर्दे के साथ कुछ वस्तुएँ रखने तक की रीतियाँ पायी गयी हैं। कालीबंगन से प्राप्त जानकारी के आधार पर ऐसे तथ्य भी प्राप्त हुए हैं जो यह बताते हैं कि एक ही स्थान पर भी अंतिम संस्कार की भिन्न रीतियाँ प्रचलित थीं। धार्मिक विश्वास एवं रीतियों की इस विभिन्नता से मुख्य नगरों के जटिल स्वरूप की ओर संकेत मिलता है। कबीलाई समाजों के विपरीत से जहाँ कबीले का प्रत्येक सदस्य समान धार्मिक रीति का पालन करता है, मुख्य नगरों में यह विशेषता दिखाई देती है कि वहाँ के निवासी विभिन्न धार्मिक रीतियों का पालन करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुख्य नगरों का गठन विभिन्न सामाजिक समूहों के राजनैतिक एवं आर्थिक एकीकरण से हुआ होगा। इसके अतिरिक्त मुख्य नगरों में भिन्न धार्मिक रीतियों के अनुयायी विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारी निवास करते होंगे। वे लोग अपनी राजनैतिक तथा आर्थिक विशिष्टता तो बनाये न रख पाये होंगे, लेकिन अपनी सामाजिक तथा धार्मिक रीतियों का पालन करते रहे होंगे।

बोध प्रश्न 6

1) हम किस आधार पर कह सकते हैं कि हड़प्पा सभ्यता एक शहरी सभ्यता थी?

....

....

....

....

....

2) हड़प्पा की खुदाई में काफी तथ्य ऐसे मिले हैं जिनमें संकेत मिलता है कि वहाँ पर नागरिक तथा राजनैतिक प्रशासन विद्यमान था, वे तथ्य कौन से हैं?

....

....

....

....

....

3) हड़प्पा की धार्मिक इमारतों में से किस इमारत से सामूहिक पूजा के प्रचलन की ओर संकेत मिलता है?

....

....

....

....

....

4) निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही हैं?

i) संभवतः शिव हड़प्पावासियों के सबसे महत्त्वपूर्ण देवता हैं। ( )

ii) हड़प्पा के आराध्यों में कोई देवी नहीं है। ( )

iii) हड़प्पावासी संभवतः वृक्षों की भी पूजा करते थे। ( )

iv) हड़प्पावासी किसी पशु की पूजा नहीं करते थे। ( )

5) क्या हमें हड़प्पा में अग्नि पूजा के प्रमाण मिले हैं?

....

....

....

....

....

6) हड़प्पावासियों में मुर्दे दफनाने की रीति के अध्ययन से उस समाज के विषय में कौन से मुख्य बिन्दु उभरते हैं?

....

....

....

....

....

6.16 सारांश

इस इकाई में अपने हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों की भौगोलिक स्थिति और भौतिक विशेषताओं के बारे में पढ़ा है। भौतिक विशेषताओं की एकरूपताओं के कारण हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और घग्घर क्षेत्र में जीवन निर्वाह के एक जैसे तरीके सामने आए। किन्तु अन्य ऐसे स्थान भी थे, जहाँ जीविका के स्वरूप में वहाँ की परवर्ती भौगोलिक विशेषताओं के कारण विविधता थी। हड़प्पा की सभ्यता के लोगों की नगर-योजना अत्यंत कुशल थी। हड़प्पा सभ्यता के नगरों

में मकान और वहाँ की जलनिकास प्रणाली को देख कर हड़प्पा की सभ्यता के लोगों की अनोखी भौतिक उपलब्धियों का पता चलता है। हड़प्पा युग के मिट्टी के बर्तन, औज़ारों और उपकरणों में काफी हद तक एकरूपता पाई जाती है। हड़प्पा सभ्यता की मुहरें (Seals) और मनके कारीगरी के सुन्दर नमूने हैं लेकिन उनकी प्रस्तर मूर्तिकला और पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियाँ तकनीकी उत्कृष्टता में समकालीन मिश्र और मेसोपोटामिया की कला का मुकाबला नहीं कर सकती। हड़प्पा सभ्यता की जीवन-निर्वाह व्यवस्था अनेक फसलों की खेती और पालतू जानवरों पर निर्भर करती थी। इससे वहाँ की अर्थव्यवस्था नगरों में बसे लोगों का भरण-पोषण करने में समर्थ हो सकी। नगरों में रहने वाले लोग अपने अन्न का उत्पादन स्वयं नहीं करते थे। उनके लिए खाद्यान्न निकटवर्ती क्षेत्रों में आता था।

हमने यह भी देखा कि हड़प्पाकालीन सभ्यता में आंतरिक व्यापार काफी तेजी में था। आंतरिक व्यापार का अर्थ है कि विनिमय कार्यकलाप 10 लाख 30 हज़ार वर्ग किलोमीटर तक के क्षेत्र में होते थे। यह विनिमय कार्यकलाप इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाते हैं कि हड़पपा सभ्यता की छोटी सी बस्ती अल्लादीनों में भी मुहरें, मुद्रांकण अर्द्धकीमती पत्थरों के मनके और धातु के बर्तन पाये गये हैं। इनमें से अधिक वस्तुएँ आयात की जाती थी। नौगम्य जल मार्गों तथा परंपरागत भू-भागों पर हड़प्पाकालीन बस्तियों का स्थित होना उस बात की ओर संकेत करता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोग व्यापार विनिमय गतिविधियों में संलग्न थे। समकालीन पश्चिमी एशियाई संस्कृतियों के साथ उनके संबंधों की पुष्टि की जा चुकी है। इसलिए हम उन्हें नगर केंद्रित समुदाय कहते हैं।

इस इकाई में हमने हड़प्पावासियों के दैनिक जीवन से जुड़े सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों पर चर्चा की।

हड़प्पावासियों के मुख्य पहनावे आधुनिक साड़ियों जैसे बगैर सिले हुए वस्त्र होते थे जोकि शरीर पर लपेट लिये जाते थे। पुरुष एवं महिलाएँ समान रूप से घाघरा एवं कमीज पहनते थे। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का सेवन किया जाता था। मुख्य खाद्य पदार्थों में चावल, जौं, बाजरा तथा गेहूं का सेवन किया जाता था। विभिन्न प्रकार के फल, सब्जियाँ तथा मांसाहारी भोजन भी इस्तेमाल किए जाते थे। आशा है कि उपभाग 6.13.2 में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर आपको स्पष्ट हो गया होगा। यदि स्पष्ट नहीं हुआ तो उसका कारण यह है कि उस समय उस क्षेत्र में न चाय उगाई जाती थी और न ही आलू की खेती होती थी।

पुरातत्वशास्त्री तथा भाषाविद् अभी भी हड़प्पा की लिपि से जूझ रहे हैं वे अभी तक उसे पढ़ने में समर्थ नहीं हो पाए हैं। उनकी बस्तियों की किलेबंदी तथा प्राप्त हथियारों से उनके युद्ध करने की ओर भी संकेत मिलता है। मिट्टी के बर्तन बनाना, धातुओं के काम, मालाएँ बनाना तथा अन्य शिल्प कलाएँ हड़प्पा सभ्यता का अंग थी। यह हड़प्पा में दस्तकार तथा नगर स्थित श्रमिकों के अस्तित्व का द्योतक है। संभवतः समाज वर्गों में विभाजित था ऐसे भी संकेत मिलते हैं कि हड़प्पा में किसी न किसी प्रकार की राजनैतिक संरचना विद्यमान थी। नगरों में प्रमुख सामाजिक वर्ग प्रशासक, पुजारी, व्यापारियों तथा बड़ी संख्या में श्रमिकों के सामाजिक वर्ग रहे होंगे।

कुछ बड़ी इमारतें सामूहिक पूजा अथवा धार्मिक संस्कारों की ओर संकेत करती हैं। भारी संख्या में देवी-देवताओं की पूजा किए जाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। प्रमुख रूप से मातृ देवी, शिव तथा कई प्रकार के पशु एवं वृक्ष आराध्य थे। कुछ समष्टि रूपी मिथकीय पशु भी धार्मिक विश्वासों के अंग थे। मुर्दों के अंतिम संस्कार का सबसे प्रचलित तरीका दफनाना था न कि दाह संस्कार। कब्रों में कई प्रकार के आभूषण तथा अन्य वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। इन सभी प्रमाणों से हमें हड़प्पा समाज के प्रति यदि पूरी नहीं तो संतोषजनक जानकारी अवश्य प्राप्त हो जाती है।

6.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए :

   हड़प्पा की भौगोलिक स्थिति और जीवन-निर्वाह के स्वरूप का वर्णन, मोहनजोदड़ो, कालीबंगन, लोथल और सुत्कागन-दोर की भौगोलिक स्थिति का विवेचन। देखें भाग 6.5 और उपभाग 6.5.1 से 6.5.5 तक।

2) (i) घ (ii) क (iii) ख (iv) ग

3) (i) × (ii) × (iii) × (iv) ✓

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए :

   हड़प्पा निवासियों की नगर योजना का विवेचन, मिट्टी के बर्तनों, औज़ार एवं उपकरण, कला और शिल्प, सिन्धु तिलपि और जीवन-यापन के स्वरूप का वर्णन। देखें भाग 6.6 व उपभाग 6.6.1 से 6.6.6 तक।

2) i) × ii) × iii) × iv) ✓

3) i) मोहनजोदड़ो ii) चावल iii) घोड़ा iv) मोहनजोदड़ो

बोध प्रश्न 3

1) क) × ख) ✓ ग) × घ) ✓ ङ) × च) ✓

2) क) कश्मीर ख) लोहा ग) शोर्तुघई घ) राजस्थान ङ) सुत्कागन-दोर

3) उपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए :

   नापतौल की समरूप व्यवस्थाएँ, तोल की दोहरी व्यवस्था, स्वामित्व और गुण का निश्चय करने के लिए उत्पादों पे मुहरे और मुद्रांकण आदि। देखें भाग 6.10।

बोध प्रश्न 4

1) क) × ख) ✓ ग) ✓ घ) ×

2) ii) ग iii) क iv) क

3) आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिए :

   परिवहन प्रणाली, नदी परिवहन, अंतर्देशीय परिवहन के समर्थन में पुरातात्विक प्रमाण। देखें भाग 6.12।

बोध प्रश्न 5

1) i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓

2) i) पक्की मिट्टी की बनी मानव मूर्तियाँ ii) तांबा iii) जौ, गेहू और जौ चावल तथा बाजरा v) पत्थर।

3) आपका उत्तर निम्न बातों पर आधारित होना चाहिए :

   - कौन सी वर्तमान भाषा हड़प्पा लिपि से निकली प्रतीत होती है?

- इसमें क्या परिवर्तन आए हैं? और
- क्या हम इसे पढ़ पाने में सक्षम हैं?

बोध प्रश्न 6

1) आपके उत्तर में काफी बड़े क्षेत्र में फैली ईंटों की बनी मिली कई इमारतें, भारी संख्या में प्राप्त दस्तकारी उत्पादन, नगरों में नालियों की व्यवस्था आदि का विवरण होना चाहिए। देखें भाग 6.14।

2) आपके उत्तर में सुनियोजित नगर, बड़े-बड़े निवास, अनाज गोदाम तथा उनका प्रबंधन और इसी प्रकार के अन्य तथ्यों का विवरण होना चाहिए। देखें भाग 6.14।

3) मंदिरों जैसी बड़ी-बड़ी इमारतें जिनमें कई प्रकार के शिल्प, आम-स्नानगृह, सभागार तथा अग्नि कुण्ड आदि। (भाग 6.15 व अन्य उप-भाग 6.15.1) देखें।

4) i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓

5) कालीबंगन तथा लोथल जैसी हड़प्पा बस्तियों से प्राप्त जानकारी से यहाँ अग्निपूजा का प्रमाण मिलता है। सार्वजनिक पूजा स्थलों तथा घरों में भी अग्निवेदियों का पाया जाना इसके प्रमाण हैं। उपभाग 6.15.2 का अंति पैराग्राफ देखें।

6) सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि मृतकों को कुछ संस्कारों के साथ दफनाया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पावासी मरणोपरांत जीवन में विश्वास रखते थे। क्योंकि मुर्दों के साथ रोजमर्रा के इस्तेमाल की वस्तुएँ अथवा आभूषण रख दिये जाते थे। कभी-कभी महिला तथा पुरुष के जोड़े साथ-साथ दफनाए जाते थे। कभी-कभी सावधानी जिसमें हड्डियाँ रखी होती थीं भी दफनायी जाती थीं।

6.18 शब्दावली

शिल्प अवशेष : मनुष्य की कारीगरी का नमूना।

ढालू प्रणाली (Chute) : गंदे पानी को बाहर निकालने का मार्ग।

दुर्ग : शहर में किला, नगर-दुर्ग।

हड़प्पा की सभ्यता का पूर्वी अधिकार क्षेत्र : विशेषकर राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश में स्थित हड़प्पा सभ्यता की बस्तियाँ।

उत्खनन : पुरानी या प्राचीन जगह पर खुदाई करना।

अन्न भण्डार : अनाज रखने के लिए भण्डार ग्रह।

टेढ़े-मेढ़े बहना : नदी का मोड़, नदी का सर्प की भांति बल खाते हुए बहना और क्षीण होते जाना जिसके कारण गाद जमा हो जाती है।

चित्रलिपि : जिस लिपि में चित्रों को किसी वस्तु आदि के प्रतीक के रूप में प्रयोग में लाया जाये।

पठार : ऊँचाई पर समतल विस्तृत भूमि।

पक्की मिट्टी (Terrocotta) : मूर्तियाँ बनाने के लिए चिकनी मिट्टी और रेत का

		मिश्रण। इसे आग में पकाया जाता है और भूरे लाल रंग का होता है।
मनका	:	पत्थर का छोटा टुकड़ा जिसके बीच में धागा पिरोने के लिए छेद होता है।
मेसोपोटामिया	:	ईराक का प्राचीन नाम।
प्रदेश (Region)	:	वह क्षेत्र जिसमें विशिष्ट भूदृश्य हो जो अन्य क्षेत्रों से अलग करे।
भीतरी प्रदेश (Hinterland)	:	बंदरगाह या किसी प्रमुख क्षेत्र से दूर स्थित भीतरी क्षेत्र।
लिपि	:	लिखने की पद्धति।
अभिजनन पंथ	:	पूजा की वह रीति जिसमें प्रकृति एवं मानव जाति के पुनरुत्पादक के पक्ष पर बल दिया जाता है। इस पंथ का केंद्र बिंदु है ऐसा विश्वास कि पूजा से फसल अथवा बच्चे प्रचुर मात्रा में पैदा होंगे।
अग्निवेदियाँ	:	कालीबंगन में पाए गए ईंटों से बने गड्डे इनमें जानवरों की हड्डियाँ तथा राख मिली है। विभिन्न समाजों में अग्नि पूजा होती रही है। वैदिक समाज में इसी प्रकार गड्ढे खोदे जाते थे जिनमें अग्नि प्रज्ज्वलित करके उनकी पूजा की जाती थी।
शृङ्क	:	एक मिथकीय पशु जिसका शरीर घोड़े जैसा है और सिर पर एक सीधी सींग है।
उर के राजकीय कब्रिस्तान	:	मेसोपोटामिया के उर नगर में मिला कब्रिस्तान जो कि तश्तीय सहस्त्र बी.सी.ई. युग का है इस कब्रिस्तान में कई राजाओं की कब्रें हैं।

6.18 संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल, डी.पी. और *चक्रवर्ती*, डी.के. (1979) ऐड *ऐसैज इन इंडियन प्रोटो-हिस्ट्री*, नई दिल्ली।

ऑलचिन, ब्रिजैड और एफ.आर. (1988) *द राईज ऑफ सिविलाईजेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान*, सिलेक्ट बुक सर्विस, नई दिल्ली।

कोसाम्बी, डी.डी. (1987) *द कल्चर एण्ड सिविलाईजेशन ऑफ ऐंशियण्ट इण्डिया इन इट्स हिस्टोरिकल आऊटलाईन*, विकास, नई दिल्ली।

लाल, बी.बी. और गुप्ता, एस.पी. (1982) (ऐडिटेड) *फ्रण्टियर्स ऑफ द इंड्स सिविलाईजेशन*, नई दिल्ली।

मार्शल, जोन (1973) *मोहनजोदड़ो एण्ड द इंड्स सिविलाईजेशन*, वॉल्यूम-I और II, (पुनर्प्रकाशित)।

व्हीलर, आर.ई.एम. (1968) *द इंड्स सिविलाइजेशन*, लंदन।

इकाई 7 ताम्र पाषाण युग तथा आरंभिक लौह युग

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 गुरुए रंगे मृद्भाण्ड (Ochre Coloured Pottery) संस्कृति

7.3 ताम्र भंडारों (Copper Hoards) की समस्या

7.4 काले-एवं-लाल मृद्भांड (Black-and-Red Ware) संस्कृति
- 7.4.1 मृद्भांड
- 7.4.2 अन्य वस्तुयें
- 7.4.3 काले-एवं-लाल मृद्भांड

7.5 चित्रित धूसर मृद्भांड (Painted Grey Ware) संस्कृति
- 7.5.1 मृद्भांड
- 7.5.2 भवनों के अवशेष
- 7.5.3 अन्य वस्तुयें
- 7.5.4 पशु व फसल अवशेष
- 7.5.5 व्यापार प्रथाएँ एवं कड़ियाँ

7.6 उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्भांड (Northern Black Polished Ware) संस्कृति
- 7.6.1 भवनों के अवशेष
- 7.6.2 बर्तन
- 7.6.3 अन्य वस्तुएँ
- 7.6.4 गहने
- 7.6.5 पक्की मिट्टी की मूर्तियाँ
- 7.6.6 जीवन-यापन अर्थव्यवस्था एवं व्यापार

7.7 पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ
- 7.7.1 बर्तन : पहचान के लक्षण
- 7.7.2 अर्थव्यवस्था
- 7.7.3 घर एवं बस्तियाँ
- 7.7.4 अन्य विशेषताएँ
- 7.7.5 धर्म एवं विश्वास
- 7.7.6 सामाजिक संगठन

7.8 दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक बस्तियाँ
- 7.8.1 सांस्कृतिक चरण
- 7.8.2 जीवन यापन अर्थव्यवस्था
- 7.8.3 भौतिक संस्कृति
- 7.8.4 दाह संस्कार के तरीके

7.9 दक्षिण भारत में सतह पर मिलने वाले नवपाषाण संस्कृति के अवशेष

---
* यह इकाई ई.एच.आई.-02, खंड-3 से ली गई है।

7.0 उद्देश्य

पिछली दो इकाइयों में आपने हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न चरणों तथा समाज एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त की। आपने इसके भौगोलिक विस्तार तथा इसके पतन एवं फैलाव के विषय में भी पढ़ा। इस इकाई में हम उत्तरी, पश्चिमी, मध्य एवं पूर्वी भारत में उत्तर-हड़प्पा, ताम्र पाषाण सभ्यता एवं लौह संस्कृति के बारे में चर्चा करेंगे। इस इकाई में दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों तथा उसके बाद में लौह युग का विवरण भी दिया गया है। विशेषकर महापाषाण युगीन संस्कृति व उसके विभिन्न पहलुओं से भी हम आपको अवगत करायेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्न विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे :

- इन संस्कृतियों की भौगोलिक स्थिति तथा ताम्रपाषाण युगीन संस्कृतियों द्वारा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालना;
- किस प्रकार के घरों में लोग रहते थे, वे कौन से अन्न उगाते थे और किस प्रकार के औज़ारों का प्रयोग करते थे;
- किस प्रकार के बर्तनों को प्रयोग में लाया जाता था;
- लोगों के क्या धार्मिक विश्वास थे;
- आरम्भिक लौह युग में कौन-कौन से परिवर्तन आये;
- दक्षिणी भारत की प्रारम्भिक कृषि संस्कृति के क्रमिक चरण तथा उनकी बुनियादी विशेषताएँ; और
- इस क्षेत्र में प्रारम्भिक लौह युग की विशेषताएँ।

7.1 प्रस्तावना

दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. तक भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियाँ अस्तित्व में आयीं। ये संस्कृतियाँ न तो शहरी थीं और न ही हड़प्पा संस्कृति की तरह थीं, बल्कि पत्थर एवं ताँबे के औज़ारों का इस्तेमाल इन संस्कृतियों की अपनी विशिष्टता थी। अतः यह संस्कृतियाँ ताम्र पाषाण संस्कृतियों के नाम से जानी जाती हैं। ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ अपनी भौगोलिक स्थितियों के आधार पर पहचानी जाती हैं। इस प्रकार हम इन्हें निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत करते हैं :

- राजस्थान में बानस संस्कृति (बानस घाटी में स्थित),

- कायथा संस्कृति (चम्बल की सहायक नदी काली सिंध के तट पर स्थित कायथा नामक स्थान पर नामांकित) जो मध्य भारत (नर्मदा, तापती तथा माही घाटी में) में कई स्थलों पर पाई जाती है,
- मालवा संस्कृति (मालवा तथा मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के अन्य भागों में बिखरी संस्कृति),
- जोर्वे संस्कृति (महाराष्ट्र)।

इन संस्कृतियों से संबंधित स्थलों की खुदाई से हम इनके निम्न पक्षों के बारे में विस्तृत अनुमान लगा सके हैं :

- बस्तियों का फैलाव,
- अर्थव्यवस्था का ढाँचा,
- शव गृह और शवदाह के तरीके,
- धार्मिक विश्वास।

खुदाई स्थलों में इस संस्कृति से संबंधित वस्तुओं के साथ-साथ उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उडीशा एवं कर्नाटक के विभिन्न भागों में ताम्र/कांस्य की वस्तुओं के भंडार प्राप्त हुए हैं। चूँकि ये वस्तुएँ भंडारों (उपरोक्त राज्यों के 85 स्थानों पर लगभग एक हज़ार वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं) के रूप में प्राप्त हुई है, अतः इन क्षेत्रों के एक भिन्न ताम्र भंडार संस्कृति से सम्बद्ध होने का अनुमान लगाया गया। साईपई (इटावा जिला) उत्तर प्रदेश में ताम्र मत्स्यभाला तथा उसके साथ गेरुए चित्रित बर्तन (OCP) प्राप्त हुए हैं। यद्यपि कुछ अन्य ताम्र वस्तुओं के भंडार स्थलों में भी गेरुए चित्रित बर्तन मिले हैं किन्तु इस ताम्र भंडार का चित्रित बर्तनों के साथ सीधा सम्पर्क नहीं है। चूँकि गंगा-यमुना *दोआब* में 100 से अधिक स्थानों पर ये विशिष्ट प्रकार के बर्तन प्राप्त हुए हैं अतः इन्हें गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति से संबंधित माना जाता है। गेरुए चित्रित बर्तनों की संस्कृति के बाद काले-एवं-लाल मृद्भाण्डों की संस्कृतियाँ तथा चित्रित धूसर मृद्भाण्डों की संस्कृतियाँ जो कि विशिष्ट प्रकार के बर्तनों के आधार पर पहचानी जाती हैं, का युग आता है। उत्तर भारत में हरियाणा तथा ऊपरी गंगा घाटी में चित्रित धूसर मृदभाण्ड के स्थलों की बड़ी संख्या मिलती है जिनमें 30 की अब तक खुदाई हो चुकी है।

इस बिन्दु पर काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड, चित्रित धूसर मृदभाण्ड तथा उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड जैसी शब्दावलियों की व्याख्या आवश्यक है। यह संस्कृतियाँ बर्तनों की विशिष्ट किस्मों के आधार पर निर्धारित की जाती है क्योंकि बर्तनों की विशिष्ट किस्म उक्त संस्कृति का विशिष्ट लक्षण होती है। यद्यपि उक्त संस्कृति के कई अन्य पक्ष भी हो सकते हैं। विशिष्ट मृद्भाण्डों अथवा बर्तनों का प्रयोग किसी विशिष्ट संस्कृति की पहचान अथवा उसे नाम देने के उद्देश्य से किया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी विशेष क्षेत्र में यदि चित्रित धूसर मृद्भाण्ड पाए जाते हैं तो वहाँ की संस्कृति को चित्रित धूसर मृद्भाण्डों की संस्कृति कहा जाता है।

लोहे का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति में होता है और इसके बाद की संस्कृति जो कि उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों की संस्कृति के नाम से जानी जाती थी तथा आगे के चरणों में इसका प्रयोग बहुत विस्तृत पाया जाता है। 600 बी.सी.ई. से शहरीकरण का आरंभ दिखाई पड़ता है।

हड़प्पा सभ्यता के पतन के बाद के सांस्कृतिक विकास को समझने के लिए हमें चर्चा उत्तर भारत, विशेषकर गंगा-यमुना *दोआब* से आरम्भ करनी चाहिए।

7.2 गेरुए रंगे मृद्भाण्ड (Ochre Coloured Pottery) संस्कृति

1950 में उत्तर प्रदेश में बिसौली (बदायूं जिला) तथा राजपुर परसू (बिजनौर जिला), जो कि दोनों ही ताम्र भंडार क्षेत्र हैं, की परीक्षण दृष्टि से खुदाई में नए किस्म के बर्तन प्राप्त हुए। बर्तन मध्यम स्तर की दानेदार मिट्टी से बनाकर कम तपाए गए हैं। इन्हें नारंगी से लेकर लाल रंग तक के गेरुए, जो कि प्रायः घिसने पर धूमिल हो जाता है, रंग से रंगा गया है। इस प्रकार के मृद्भाण्डों से सम्बद्ध क्षेत्र गेरुए रंगे बर्तनों की संस्कृति (O.C.P.) वाले क्षेत्र कहलाते हैं। मायापुर (सहारनपुर जिला) से लेकर साईपई (इटावा जिला) तक लगभग 100 स्थल इस विशिष्ट संस्कृति के हैं।

Thermoluminiscence (ताप संदीप्ति परीक्षा) काल पद्धति के आधार पर ओ.सी.पी. मृद्भाण्ड संस्कृति का काल लगभग 2000-1500 बी.सी.ई निर्धारित किया गया है।

गेरुए रंगे बर्तनों के क्षेत्र सामान्यतः नदियों के तटों पर मिले हैं। ये क्षेत्र आकार में छोटे हैं तथा कई क्षेत्रों (जैसे बहादराबाद, बिसौली, राजपुर परसू, साईपई) में टीलों की ऊँचाई काफी कम है। इससे इन बस्तियों के जीवन काल अवधि अपेक्षाकृत कम होने की ओर संकेत मिलता है। बस्तियों के बीच की दूरी 5 से 8 किलोमीटर के बीच पाई गयी है। कुछ गेरुए चित्रित बर्तनों के क्षेत्रों (जैसे अम्बखेरी, बहेरिया, बहादराबाद, झिंझाना, लाल किला, अतरंजीखेड़ा, साईपई) की खुदाई से यहाँ नियमित बस्तियाँ होने के लक्षण नहीं मिले हैं। हस्तिनापुर तथा अहिक्षेत्र में गेरुए रंगे बर्तनों की संस्कृति तथा इसके बाद आने वाली चित्रित धूसर बर्तनों की संस्कृति के बीच की प्रक्रिया अवरोधित प्रतीत होती है, जबकि अतरंजीखेड़ा में गेरुए रंगे बर्तनों के स्तर के बाद काले-एवं-लाल मिट्टी के बर्तनों के स्तर आते हैं। गंगा-यमुना दोआब में लगभग 100 से ज्यादा स्थल इस संस्कृति के हैं। ओ.सी.पी. संस्कृति के बाद बी.आर.डब्ल्यू. तथा पी.जी.डब्ल्यू. संस्कृतियाँ पाई जाती हैं जिनकी मुख्य विशेषता मृद्भाण्ड हैं।

गेरुए रंगे बर्तनों की संस्कृति के भौतिक अवशेष मुख्य रूप से बर्तन हैं। इनमें मर्तबान (भंडारण करने वाले जार सहित), गोल आधार वाले प्याले, सुराही, दस्तेवाले बर्तन, छोटे बर्तन, पात्र, टोटी वाले बर्तन आदि शामिल हैं।

अन्य वस्तुओं में, पक्की मिट्टी की चूड़ियाँ, पक्की मिट्टी व इन्द्रगोप के मनके तथा पक्की मिट्टी की जानवरों की मूर्तियाँ एवं गाड़ी के पहिए जिनके केंद्र में एक गुमटा है, पत्थर की चक्की एवं मूसल तथा हड्डियों के हरावल प्राप्त हुए। साईपई में गेरुए बर्तनों के क्षेत्र में एक ताम्र मत्स्यभाला भी प्राप्त हुआ है।

घरों के ढाँचों से सम्बन्धित अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। पुराना किला से प्राप्त प्रमाणों, जो कि अपर्याप्त हैं, के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि फर्श थापी हुई मिट्टी के बनाये जाते थे। घर सरपट एवं उस पर मिट्टी की लिपाई के साथ बनाए जाते थे। ऐसा अनुमान पुराना किला में प्राप्त तपी मिट्टी के लेप एवं मिट्टी पर सरकड़े एवं बाँस के निशानों के आधार पर लगाया गया है।

इस संस्कृति से संबंधित अंतरजीखेड़ा से प्राप्त पुरातात्विक-वानस्पतिक अवशेषों से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में धान, जौ, दालें तथा केसरी की फसल उगाई जाती थी। बर्तनों के प्रकारों में समानता के आधार पर कुछ विद्वानों के विचार हैं कि गेरुए रंगे बर्तन उत्तर-हड़प्पा के तुच्छ मृद्भाण्डों का ही रूप हैं।

गेरुए रंगे बर्तनों से प्राप्त ताप संदीप्ति परीक्षा के आधार पर यह संस्कृति 2000 बी.सी.ई. से 1500 बी.सी.ई. के बीच की मानी गयी है।

7.3 ताम्र भंडारों (Copper Hoards) की समस्या

रेवाड़ी, हरियाणा से ताम्र भंडार वस्तु (शायद एक उपभोग वस्तु नहीं, अधिक संभावना में एक धार्मिक वस्तु)। श्रेय : पिथूल 6. स्रोत : मैटलवर्क ऑफ द ब्रॉन्ज ऐज इन इंडिया'', 1981. चित्र सौजन्य : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Rewari_Cu_hoard_object,_1075.jpg)।

ताम्र भंडार संस्कृति के संबद्ध प्रथम ताम्र वस्तु (ताम्र मत्स्यभाला) 1822 में ही कानपुर जिले के बिठूर नामक स्थान पर प्राप्त हुआ। तब से लेकर अब तक 85 विभिन्न क्षेत्रों में लगभग एक हज़ार ताम्र वस्तुएँ भंडारों में मिली हैं।

विभिन्न राज्यों में ताम्र भंडार क्षेत्र

राज्य	स्थलों की संख्या
हरियाणा	5
राजस्थान	6
उत्तर प्रदेश	33
बिहार	19
पश्चिमी बंगाल	6
उडीशा	7
मध्य प्रदेश	8
कर्नाटक	1

यह संभव है कि ऐसे ताम्र भंडार गुजरात और आंध्र प्रदेश में मिले हों परन्तु इनकी विधिवत सूचना उपलब्ध नहीं करायी गयी है।
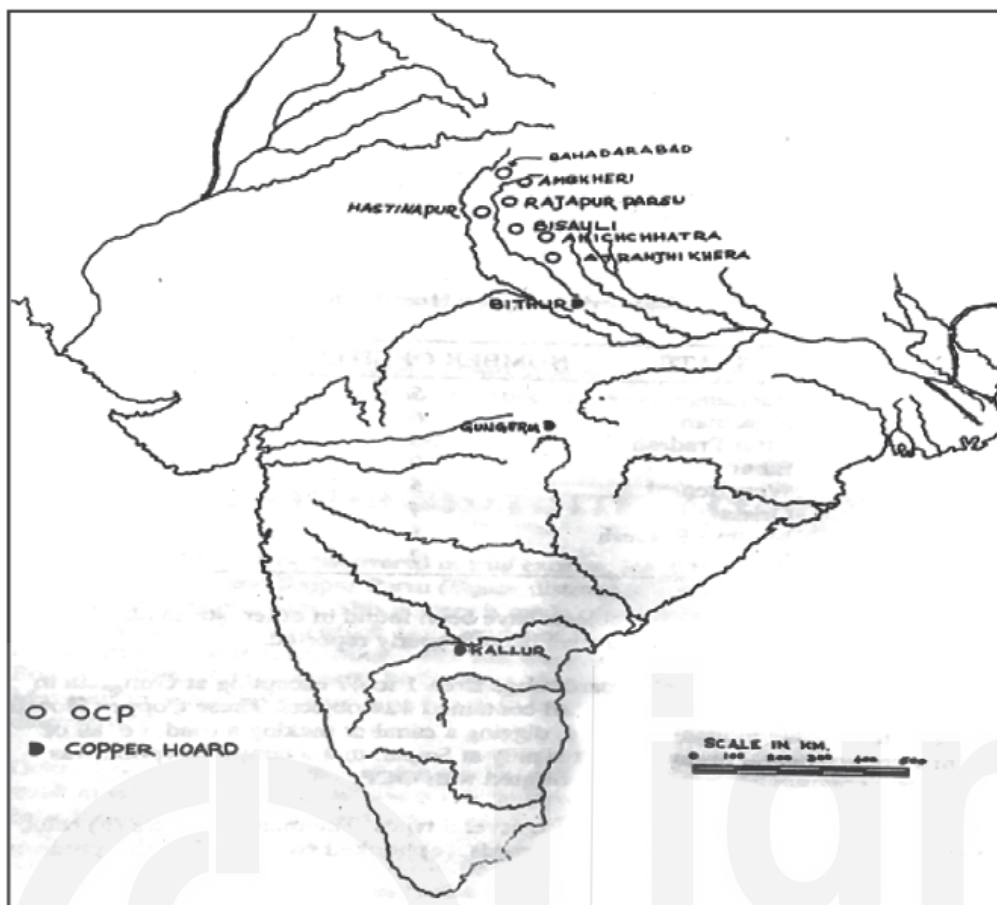
गेरुए चित्रित मृद्भाण्ड एवं ताम्र पाषाण भण्डार संस्कृतियाँ। स्रोत : ई.एच.आई.-2, खंड-3, इकाई-10।

मध्य प्रदेश में गुंगेरिया को छोड़कर, जहाँ कि केवल एक भंडार से 424 ताम्र वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, भंडारों में ताम्र वस्तुएँ पाए जाने की औसत 1 से 47 के बीच है। यह ताम्र भंडार हल चलाते समय, नहर खोदते अथवा सड़क बनाते समय प्रकाश में आए एवं सभी उपलब्धियाँ संयोगिक रही हैं। केवल साईपई में ही गेरुए चित्रित बर्तनों से सम्बन्धित क्षेत्र की खुदाई में एक ताम्र मत्स्यभाला प्राप्त हुई थी।

इन ताम्र भण्डारों में निम्न वस्तुएँ विशिष्ट हैं।

श्रृंगिका तलवार : श्रृंगिका तलवार (जिसकी लम्बाई 40 से.मी. से 50 से.मी. के बीच है) में एक फलक तथा एक दस्ता है। दस्ता किसी कीटाणु के श्रृंगिका की भांति विभक्त है। श्रृंगिका तलवार के फलक का मध्य वक्र काफी स्पष्ट है।

बेधनी तलवार : इन तलवारों में फलक के बजाय दस्ते पर कांटेदार बेधनी हैं।

मानवकल्प : मानवकल्प विशालकाय मानवरूपी वस्तु है जिनके हाथ मुड़े हुए हैं तथा बाहरी सिरा धारदार है। बाजू सर की अपेक्षा पतले हैं। लम्बाई 25 से.मी. से 45 से.मी. तथा चौड़ाई 30 से.मी. से 43 से.मी. के बीच है। इनका वजन 5 किलोग्राम तक है।

(इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख वस्तुएँ नीचे दिये गये चित्र में दर्शायी गयी हैं।)

साईपई में गेरुए चित्रित बर्तनों के साथ ताम्र मत्स्यभाले के पाए जाने तथा अन्य गेरुए रंगे मृद्भाण्ड क्षेत्रों में ताम्र भंडार पाए जाने (तथापि यह प्रत्यक्ष पुरातात्विक संबंध पर आधारित नहीं हैं) के आधार पर इन्हें गेरुए रंगे मिट्टी के बर्तनों की संस्कृति से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार ताम्र भंडारों का काल 2000 बी.सी.ई. से 1500 बी.सी.ई. के बीच रखा जा सकता है।
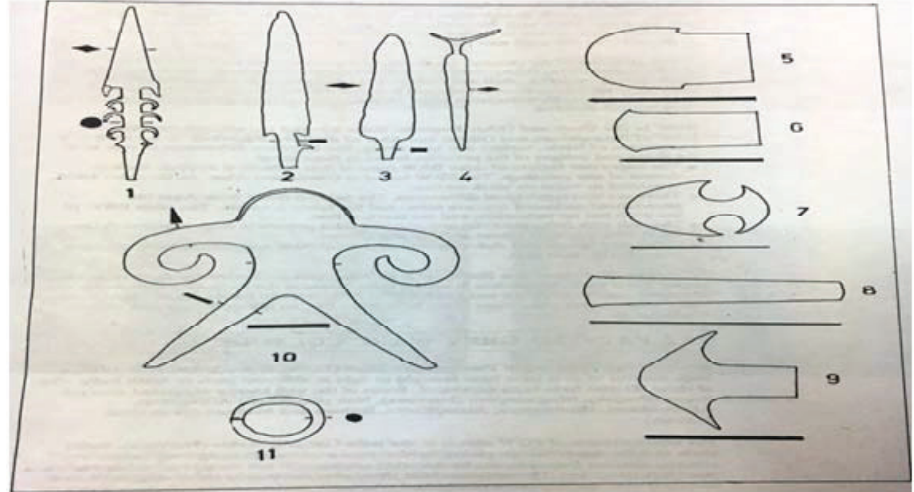
ताम्र भंडार वस्तुएँ : 1. बेधनी तलवार, 2. कांटे वाली तलवार, 3. तलवार, 4. शृंगिका तलवार, 5-6, माबिन कुल्हाड़ी, 7. दुधारी, कुल्हाड़ी, 8. पट्टीदार आविय कुल्हाड़ी, 9. स्कंध कुल्हाड़ी, 10. मानवकल्प, 11. छल्ला। स्रोत : ई.एच.आई-02, खंड-3, इकाई-10।

बोध प्रश्न 1

1) गेरुए रंगे बर्तनों की संस्कृति की मुख्य विशेषताओं पर पाँच पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

2. निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है :

क) गेरुए रंगे बर्तन पहाड़ी क्षेत्रों में पाए गए हैं। ( )

ख) गेरुए रंगे बर्तनों के भौतिक अवशेष मुख्यतः घरों के ढांचे हैं। ( )

ग) ताम्र भंडारों का काल लगभग 2500 बी.सी.ई है। ( )

iv) अधिकतर ताम्र भंडार संयोगिक रूप से प्राप्त हुए हैं। ( )

7.4 काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड (BLACK-AND-RED WARE) संस्कृति

1960 के दशक के आरंभ में अतरंजीखेड़ा में खुदाई के दौरान एक विशिष्ट प्रकार के, गेरुए रंगे बर्तनों एवं चित्रित धूसर मृदभाण्डों के स्तरों के बीच के मृद्भाण्ड प्रकाश में आए। इस स्तर के विशिष्ट बर्तन काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड कहे जाते हैं। जोधपुरा एवं नोह (राजस्थान) से 1970 के दशक में इसी प्रकार के स्तरीय क्रम प्रकाश में आए। किंतु अहिच्छत्र, हस्तिनापुर एवं आलमगीरपुर में काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के साथ प्राप्त हुए हैं।

7.4.1 मृद्भाण्ड

इन बर्तनों के विशिष्ट लक्षण यह हैं कि बर्तनों के अन्दर के भाग तथा बाहर के भाग में किनारा काले रंग तथा शेष बर्तन लाल रंग का है। ऐसा विश्वास है कि रंग का यह समायोजन बर्तनों को उल्टा करके तपा कर लाया गया है। बर्तन अधिकतर चाक पर बनाये गये हैं, यद्यपि कुछ

हाथ से बनाए हुए बर्तन भी हैं। महीन मिट्टी के बने इन बर्तनों की बनावट काफी सुगठित हैं तथा किनारे पतले हैं। काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में भी पाए गए हैं, किंतु *दोआब* के काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड चित्रित नहीं हैं।

7.4.2 अन्य वस्तुएँ

अतरंजीखेड़ा में खुदाई के दौरान पत्थर के टुकड़े, परत तथा टुकड़े, स्फटिक, सिक्थस्फटिक, अकीक तथा इन्द्रगोप के मूलभाग, इन्द्रगोप, सीप तथा ताम्र का एक मनका, ताम्र का एक चक्र तथा हड्डी से बनी कंघी का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है। पत्थर अथवा धातु के कोई औज़ार नहीं मिले हैं। जोधपुरा में हड्डी की नुकीली कील मिली है। नोह में आकृति रहित लोहे का टुकड़ा, पक्की मिट्टी का एक मनका तथा एक हड्डी की कील मिली है।

7.4.3 काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड

कुछ विद्वान यह मानते हैं कि अतरंजीखेड़ा तथा पश्चिमी राजस्थान में गिलुन्द तथा अहार में मिले काले-एवं-लाल मृद्भाण्डों के स्वरूप, बनावट एवं चमक के आधार पर समानता है। लेकिन इन स्थानों से प्राप्त बर्तनों के आकार और रूपरेखा में विभिन्नताएँ भी हैं जो निम्न हैं:

- *दोआब* के (तथा नोह के) काले-एवं-लाल बर्तनों की मुख्य विशेषता उनका सादा पृष्ठभाग है जो कि चित्र रहित है। जबकि गिलुंद एवं अहार में मिट्टी के बर्तन के काले पृष्ठभाग पर सफेद रंग के चित्र हैं।
- इनमें किस्मों का भी अंतर है। अहार के चित्रित काले-एवं-लाल मिट्टी के बर्तनों में स्पष्ट रूप से कोणिक अवतल किनारे हैं तथा बनावट खुरदुरी है। *दोआब* के काले-एवं-लाल मिट्टी के बर्तनों में कोणिक किनारे नहीं हैं तथा बनावट चिकनी है।
- स्वरूप विहीन किनारे तथा अवतल भाग वाली तश्तरियाँ *दोआब* के काले-एवं-लाल मिट्टी के बर्तनों में प्रचुर संख्या में मिलती है जबकि अहार एवं गिलुंद में ऐसी तश्तरियाँ नहीं प्राप्त हुईं।
- टोटी वाले प्याले तथा आधार (Stand) वाली तश्तरियाँ अहार एवं गिलुंद में प्राप्त हुईं लेकिन *दोआब* क्षेत्रों में नहीं प्राप्त हुईं।

यह तथ्य काफी महत्त्वपूर्ण है कि काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड विभिन्न क्षेत्रों में थोड़ी बहुत भिन्नताओं के साथ काफी बड़े क्षेत्र में फैले पाए गए हैं। ये मृद्भाण्ड उत्तर में रोपड़ से लेकर दक्षिण में आदिचनालूर तथा पश्चिम में अमरा तथा लाखबवाल से लेकर पूर्व में पाँडु-राजार ढिब्बी तक प्राप्त हुए हैं। इनका समय परिप्रेक्ष्य भी काफी लम्बा है जो कि लगभग 2400 बी.सी.ई. से लेकर सी.ई. युग की आरंभिक शताब्दियों तक फैला हुआ है।

7.5 चित्रित धूसर मृदभाण्ड (PAINTED GREY WARE) संस्कृति

चित्र धूसर मृद्भाण्ड सौंरव (उत्तर प्रदेश), गवर्नमंट म्यूजियम, मथुरा। श्रेय : बिसवारूप गांगुलि। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Painted Grey Ware - Sonkh - 1000-600 BCE - Showcase 6-15 - Prehistory and Terracotta Gallery - Government Museum - Mathura 2013-02-24 6461.JPG)।

1946 में अहिच्छत्र में चित्रित धूसर मृद्भाण्डों की खोज के बाद से उत्तरी भारत के विभिन्न क्षेत्रों से ये बड़ी संख्या में प्रकाश में आए हैं। इनमें से 30 स्थानों की खुदाई हुई है जिनमें से मुख्य रोपड़ (पंजाब), भगवानपुरा (हरियाणा), नोह (राजस्थान), आलमगीरपुर, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा, जखेड़ा तथा मथुरा हैं। ये सभी उत्तर प्रदेश में हैं।

काले-एवं-लाल मृद्भाण्डों के क्षेत्र सिंधु-गांगेय विभाजन, सतलुज के थाले तथा गंगा के ऊपरी मैदानों में केंद्रित हैं। स्थलों के बीच की औसत दूरी 10 से 12 कि.मी. की है यद्यपि कुछ क्षेत्र 5 कि.मी. की दूरी पर भी हैं। इन क्षेत्रों की बस्तियाँ अधिकतर छोटे-छोटे गाँव हैं (जिनका क्षेत्रफल 1 से 4 हेक्टेयर के बीच है)। केवल हरियाणा में बुखारी (अम्बाला जिला) इसका अपवाद है जो कि 96, 193 वर्ग मीटर में फैला हुआ है। आइए, अब हम उन वस्तुओं पर दृष्टि डालें जिन्हें चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति से संबंधित समझा गया है।

7.5.1 मृद्भाण्ड

- बर्तन चाक पर बनाए गए हैं। मिट्टी काफ़ी चिकनी है तथा बर्तनों का आधार काफ़ी पतला है।
- इनका पृष्ठभाग चिकना है तथा रंग धूसर से लेकर राख के रंग के बीच है।
- इनके बाहर तथा अन्दर के तल दोनों ही काले और काफी गहरे चॉकलेटी रंग में रंगे गए हैं। इन पर काले रंग की चित्रकारी है।
- इनकी लगभग 42 किस्म के एक-रेखा चित्र (Design) हैं और इनमें सबसे सामान्य किस्म प्याले एवं तश्तरियाँ हैं।

7.5.2 भवनों के अवशेष

अहिच्छत्र, हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा तथा जखेड़ा की खुदाई के बाद घरों तथा अन्य ढांचों के सरपत एवं मिट्टी से पाथे होने की जानकारी मिलती है। तपाई मिट्टी, मिट्टी की ईंटों, तपाई ईंटों, मिट्टी के चबूतरे तथा मिट्टी के लेप के साथ-साथ सरकण्डे एवं बाँस के निशान पाए जाने के आधार पर यह जानकारी मिलती है। भगवानपुरा (हरियाणा) क्षेत्र में खुदाई से घरों के ढांचों के भिन्न चरणों की ओर संकेत मिले हैं। प्रथम चरण में खंभों के गड्ढे घरों के गोलाकार एवं आयताकार होने की ओर संकेत करते हैं। दूसरे चरण में एक घर में 13 कमरे तथा दो कमरों के बीच बरामदा पाया गया है। इस घर में एक आंगन भी है।

7.5.3 अन्य वस्तुएँ

खुदाई के दौरान ताम्र, लौह, कांच तथा हड्डियों की कई प्रकार की वस्तुएँ मिली हैं। इनमें कुल्हाड़ियाँ, छेनियाँ, मछली के कांटे तथा बाण के फल मुख्य हैं। बरछे के फल केवल लोहे के हैं। खेती के उपकरणों में जखेड़ा में लोहे की बनी हंसिया और कुदाली प्राप्त हुई हैं। हस्तिनापुर के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में लोहे की वस्तुएँ मिली है। केवल अतरंजीखेड़ा से ही 135 वस्तुएँ मिली हैं जिनमें एक भट्टी, सतह पर लोहे का बुरादा तथा एक चिमटा मिला है। जोधपुरा में दो भट्टियाँ मिली हैं।

अकीक, पकी मिट्टी, सूर्यकांत, इन्द्रगोप, सिक्थस्फटिक, लाजवर्द, कांच तथा हड्डी के मनकों के गहने पाये गये हैं। हस्तिनापुर में दो कांच की चूड़ियाँ तथा जखेड़ा में ताम्र की चूड़ियाँ मिली हैं। मिट्टी की वस्तुओं में मानवीय (पुरुष और स्त्री दोनों) तथा पशुओं (बैल और घोड़े) की मूर्तियाँ, चपटी गोलाकृतियाँ (disk), गेंद, कुम्हार की मोहरें आदि पाई गई हैं।

7.5.4 पशु व फसल अवशेष

केवल हस्तिनापुर और अतरंजीखेड़ा में ही उगाई जाने वाली फसलों के प्रमाण मिले हैं। हस्तिनापुर में केवल चावल और अतरंजीखेड़ा में गेहूं और जौ के अवशेष मिले हैं। घोड़े, गाय, भैंसों, सुअर, बकरी और हिरन की हड्डियाँ हस्तिनापुर, अल्हापुर और अतरंजीखेड़ा से प्राप्त हुई हैं। इनमें जंगली और पालतू दोनों प्रकार के पशुओं की हड्डियाँ हैं।

7.5.5 व्यापार प्रथाएँ एवं कड़ियाँ

विभिन्न प्रकार के अर्धबहुमूल्य पत्थरों (जैसे अकीक, सूर्यकांत, इन्द्रगोप, सिक्थस्फटिक, लाजवर्द) के मनके *दोआब* के विभिन्न चित्रित धूसर मृद्भाण्ड क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं। जहाँ तक इन पत्थरों के कच्चे खनिक के रूप में प्राप्त होने का प्रश्न है, इनमें से *दोआब* में एक भी पत्थर उपलब्ध नहीं है। अकीक एवं सिक्थस्फटिक कश्मीर, गुजरात तथा मध्यप्रदेश में, तथा लाजवर्द अफगानिस्तान के बदखशां प्रांत में पाया जाता हैं। अतः चित्रित धूसर मृद्भाण्ड क्षेत्रों में निवासियों ने इन पत्थरों को इन क्षेत्रों से व्यापार के द्वारा अथवा विनिमय के रूप में प्राप्त किया होगा।

उत्तर पश्चिमी भारत के बर्तनों तथा चित्रित धूसर मृद्भाण्डों (PGW) के आकार और रूप के आधार पर कुछ समानताएँ मिलती हैं। विशेषकर लोहे के साथ पाए गए सलेटी बर्तनों का धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति से सम्बन्ध दिखलाई देता है।

बोध प्रश्न 2

1) काले-एवं-लाल मिट्टी के बर्तनों की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? विभिन्न क्षेत्रों में पाए गए काले-एवं-लाल मिट्टी के बर्तनों की क्षेत्रीय भिन्नता पर 5 पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

2) किन आधारों पर यह कहा जा सकता है कि चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का अन्य क्षेत्रों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था? पाँच पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

7.6 उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्भाण्ड (NORTHERN BLACK PALIDED WARE) संस्कृति

पूर्व संस्कृतियों की भाँति ही उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्भाण्ड संस्कृति की पहचान इसके विशिष्ट बर्तनों के आधार पर की जाती है। ये मृद्भाण्ड सर्वप्रथम 1930 में तक्षिला में मिले। इन मृद्भाण्डों की काली चमक के कारण इनके खोजने वालों ने उस समय इन्हें 'ग्रीक काले

मृद्भाण्ड समझा। तब से लेकर अब तक उत्तर पश्चिम में तक्षिला तथा उदग्राम से लेकर पूर्वी बंगाल में तालमुक एवं दक्षिण में अमरावती (आंध्र प्रदेश) तक लगभग 1500 उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों के क्षेत्रों की पहचान की जा सकी है जिसमें से 74 क्षेत्रों की खुदाई हो चुकी हैं।

उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों के खुदाई किए गए मुख्य क्षेत्र

क्षेत्र का नाम	राज्य जिनमें क्षेत्र स्थित है
रोपर	पंजाब
राजा कर्ण का किला	हरियाणा
जोधपुरा/नोह	उत्तरी राजस्थान
अहिच्छत्र/हस्तिनापुर/	
अतरंजीखेड़ा/कौशाम्बी	
श्रावस्ती	उत्तर प्रदेश
वैशाली/पाटलीपुत्र/सोनपुर	बिहार
चन्द्रकेतुगढ़	पश्चिमी बंगाल

खुदाई से पता चलता है कि :

- कई क्षेत्रों में उत्तरी काली पॉलिश किए मृदभाण्डों का उदय चित्रित धूसर मृद्भाण्ड स्तरों के उपरांत हुआ।
- कई स्थानों पर उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड काले-एवं-लाल मृद्भाण्डों के उपरांत मिलते हैं तथा लाल मृद्भाण्ड उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों के बाद मिलते हैं।

इस किस्म के बर्तनों तथा अन्य वस्तुओं का विभिन्न कालों से संबंधित होने के आधार पर ऐसा माना गया है कि उत्तरी काली पॉलिश किए बर्तनों की संस्कृति के दो भिन्न चरण रेखांकित किए जा सकते हैं।

चरण I

यह चरण 'प्रिडिफेंस' (Pre-defense) चरण भी कहा जाता है। इस चरण की विशेषता उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों की प्रचुरता तथा इनके साथ काले-एवं-लाल मृद्भाण्डों व चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के अवशेषों का भी पाया जाना है। यद्यपि ये अवशेष कम मात्रा में ही मिले हैं। इस चरण में पंच मार्कड सिक्के (आहत सिक्के) तथा तपाई गई ईंटों के मकान नहीं थे जो उच्च स्तरीय विकास के सूचक हैं। इसका प्रतिनिधित्व अतरंजीखेड़ा, श्रावस्ती तथा प्रह्लादपुर करते हैं।

चरण II

इस चरण में काले-एवं-लाल मृद्भाण्डों तथा चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के बर्तनों के नमूने नहीं मिलते हैं। उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड न तो अच्छी कोटि के हैं (इनकी बनावट मोटी है) और इनकी संख्या भी कम है। पंच मार्कड सिक्के तथा तपाई गई ईंटें इस चरण में पहली बार सामने आती हैं। एक अपरिष्कृत स्लेटी मृदभाण्ड इस चरण में प्रकाश में आया। इस चरण का प्रतिनिधित्व हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा, श्रावस्ती II और प्रहलादपुर करते हैं।

उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों तथा चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के बीच समानता को देखते हुए कुछ विद्वानों ने मत प्रकट किया है कि चित्रित धूसर मृद्भाण्ड उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों का परिष्कृत रूप हैं तथा दोनों के बीच भिन्नता केवल ऊपरी सतह के तौर पर है।

चित्रित धूसर मृद्भाण्डों, काले-एवं-लाल मृद्भाण्डों तथा उत्तरी काली पॉलिश किये मृद्भाण्डों के रासायनिक विश्लेषण से इस तथ्य की पुष्टि भी की जा चुकी है।

चूँकि उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों की पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में बहुतायत है अतः संभव है कि इनका उद्भव इसी क्षेत्र में हुआ हो। बाद के दिनों में ये गंगा के मैदानों के परे फैल गए होंगे जिसका कारण बौद्ध भिक्षुओं तथा व्यापारियों की गतिविधियाँ हैं।

7.6.1 भवनों के अवशेष

हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा तथा कौशाम्बी में खुदाई से यह स्पष्ट हो गया है कि इस काल के दौरान मकान बनाने का कार्य बड़े पैमाने पर शुरू हो गया था और शहर का बनना आरंभ हो चुका था। कौशाम्बी में बस्तियों के स्वरूप के प्रमाण काफी स्पष्ट रूप से उपलब्ध हुए हैं। इसी स्थान पर ईंटों के फर्श वाले रास्ते और गलियाँ मिली हैं। एक सड़क जो पहली बार लगभग 600 बी.सी.ई में बनायी गई थी जिसकी कई बार मरम्मत की गई (इसकी चौड़ाई 5.5 मीटर से 2.5 मीटर के बीच रही) और लगभग 300 सी.ई. तक प्रयोग में रही। घरों के ढांचे तपाई ईंटों के होते थे। खंभों के गड्ढों एवं दरवाज़े के बाजू के लिए बने कोष्ठों से इमारतों में लकड़ी के प्रयोग के प्रमाण भी प्रयाप्त मात्रा में मिलते हैं। घरों की छतें खपरैल लगा कर ढकी जाती थीं। कमरे वर्गाकार तथा आयताकार होते थे।
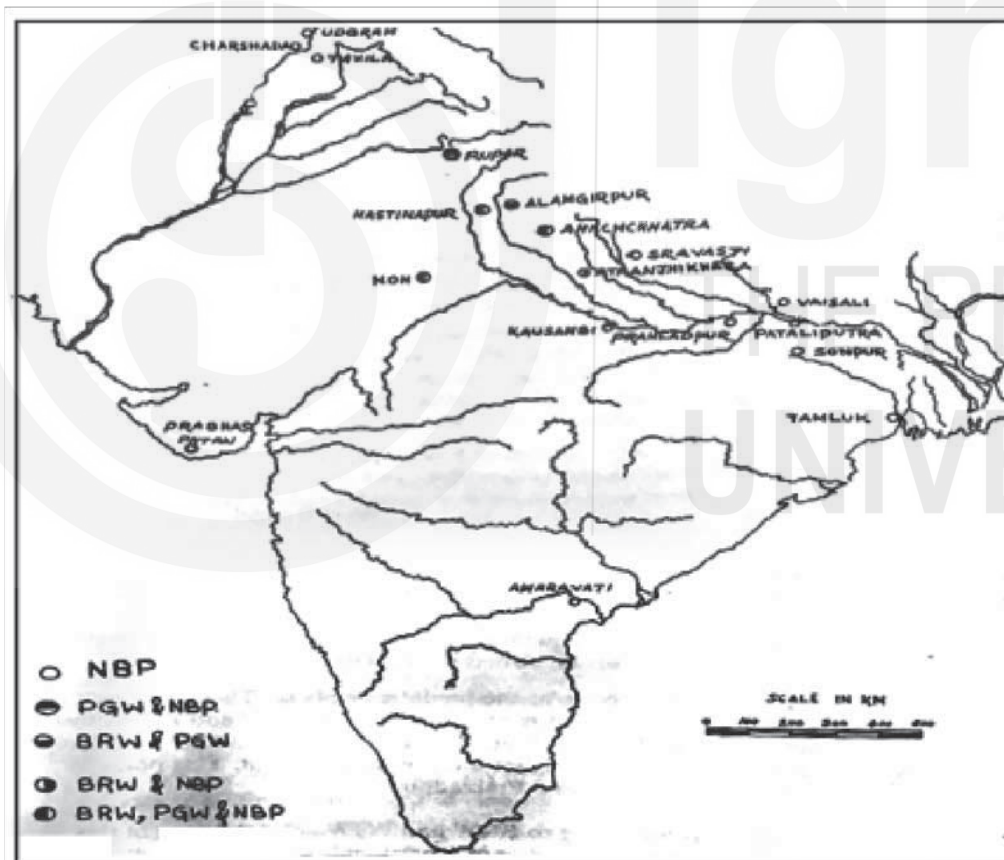
बी.आर.डब्ल्यू, पी.जी.डब्ल्यू. तथा एन.बी.पी.डब्ल्यू. बर्तनों के स्थलों को दर्शाता मानचित्र। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10।

इन सभी प्रमाणों से पता चलता है कि इमारतों की बनावट काफ़ी योजनाबद्ध तरीके से होती थी। हस्तिनापुर की खुदाई के साथ, जहाँ नालियों की विस्तृत व्यवस्था पायी गई है, इस तथ्य की और भी पुष्टि हो जाती है।

कुछ बस्तियाँ मिट्टी और ईंट की दीवारों के द्वारा किलेबन्द की गयी थीं और इस किलेबन्दी के चारों ओर खाइयाँ बना दी गयी थीं। कौशाम्बी में किले की दीवार के साथ जगह-जगह पर चौकीदारों के कमरे, बुर्ज तथा दरवाज़े बने पाए गए हैं।

इस बिंदु पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या इन ढांचों से इस काल के सामाजिक अथवा राजनैतिक जीवन के बारे में कोई जानकारी मिलती है? हाँ, मिलते हैं। उदाहरण के लिए :

- किलेबन्दी से आक्रमणों के विरुद्ध सुरक्षा उपायों तथा राजनैतिक तनावों पर प्रकाश पड़ता है।
- नालियों की व्यवस्था से न केवल लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता की जानकारी मिलती है बल्कि इस दिशा में इन लोगों द्वारा की गयी प्रगति की भी जानकारी मिलती है।
- यह पता चलता है कि बड़ी इमारत बनाने और किलेबन्दी करने के लिए बड़ी संख्या में कामगरों की आवश्यकता रही होगी तथा इन लोगों से काम लेने के लिए अधिकारी और सत्तावर्ग भी रहे होंगे।

7.6.2 बर्तन

उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों की मुख्य विशेषता इसकी चमकदार बाहरी सतह है। चाक पर बनाए गए इन बर्तनों के लिए मिट्टी अच्छी तरह गूंथ कर तैयार की गयी है। कुछ बर्तनों का तल 1.5 मिलीमीटर तक पतला है। चमकदार काले ऊपरी भाग के अतिरिक्त, उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड सुनहरे, रुपहले, सफेद, गुलाबी, इस्पाती नीले, चाकलेटी तथा भूरे रंग में भी पाए गए हैं। कुछ क्षेत्रों (जैसे-रोपर, सोनपुर) से रिपिट लगे बर्तनों (टूटे हुए टुकड़ों को जोड़कर बनाए गए) से पता चलता है उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड कितने मूल्यवान थे। इन मृद्भाण्डों तथा साथ-साथ अन्य बर्तनों की उपलब्धता से संकेत मिलता है कि उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड बहुत कीमती होते थे और सभी के पास नहीं होते थे। यह इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि इस काल में समाज असमान वर्गों में विभाजित था।

यद्यपि उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड सामान्यतः चित्रित नहीं हैं लेकिन कुछ चित्रित मृद्भाण्डों के टुकड़े भी मिले हैं। मृद्भाण्ड पीले तथा हल्के सिंदूरी रंग से चित्रित किए जाते थे। इनके सामान्य एक-रेखा चित्रों (Designs) में सादी पट्टियाँ, लहरदार रेखाएँ, बिंदियाँ, संकेद्री गोले, प्रतिच्छेदी गोले, अर्धवृत्त, चाप तथा फंदों की आकृतियाँ पाई गयी हैं। सबसे सामान्य बर्तन की किस्म प्याले तथा विभिन्न प्रकार की तश्तरियाँ हैं।
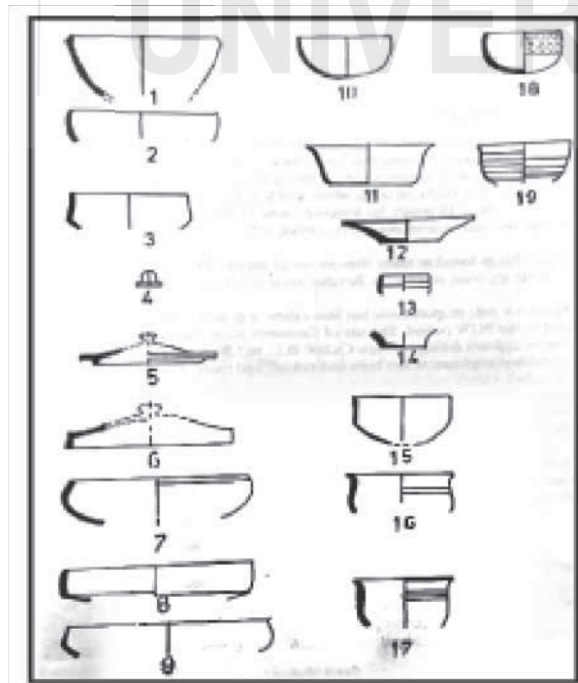
उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10।

7.6.3 अन्य वस्तुएँ

उत्तरी पॉलिश किए मृदभाण्डों के क्षेत्रों से ताम्र, लोहे, सोने, चाँदी, पत्थर, कांच तथा हड्डी के बने विभिन्न प्रकार के औज़ार, हथियार, गहने तथा अन्य वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इन उपलब्धियों से इस काल की तकनीकी प्रगति का संकेत मिलता है। बौद्ध साहित्य, जो कि कई प्रकार की कलाओं और शिल्पों का उल्लेख करता है, से इस तथ्य की और भी पुष्टि हो जाती है। *जातक* कथाओं में लकड़ी, धातु, पत्थर, बहुमूल्य तथा अर्धबहुमूल्य पत्थर, हाथी दाँत, कपड़े आदि के कामगरों के लगभग 18 श्रेणी समूहों का उल्लेख मिलता है।

कई क्षेत्रों से प्राप्त ताम्र वस्तुओं में छेनियाँ, चाकू, बेधक, पिनें, सूइयाँ, सुरमें की सलाइयाँ, काटने का औज़ार, जोड़ चूड़ी, चरखियाँ तथा चूड़ियाँ मुख्य हैं।

लोहे की वस्तुओं की न केवल इस संस्कृति में प्रधानता है बल्कि चित्रित धूसर मृद्भाण्ड युग की तुलना में इनमें काफी विविधता भी है। केवल कौशाम्बी से ही लगभग 800 बी.सी.ई.
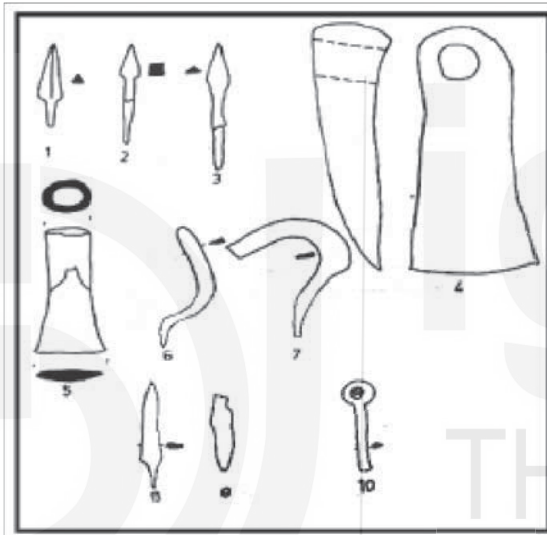
लोहे के औज़ार 1-3 : तीर के फलक, 4 : बसूला, 5 : कुदाली, 6-7 : हँसिया, 8 : कटार, 9 : छेनी, 10 : कल्दुली। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10।

से 550 बी.सी.ई. के बीच की 1,115 लोहे की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। इन वस्तुओं में मुख्य हैं :

अ) खेती के उपकरण जैसे : कुदालें और हंसिया तथा शिल्पकारों के औज़ार जैसे कुल्हाड़ियाँ, बसूला, छेनियाँ तथा पेच दंड।

ब) हथियार जैसे : तीर के फल, बरछे व भले के फल।

स) अन्य वस्तुएँ जैसे : चाकू, विभिन्न प्रकार के दस्ते, कांटे, कीलें, रिपिट, जोड़ पट्टी, अंगूठियाँ तथा छोटी घंटियाँ।

चाँदी के आहत सिक्के उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड संस्कृति के मध्य चरण से मिलना आरम्भ होते हैं। इसका अर्थ वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था से धातु मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था की ओर संभावी बदलाव है।
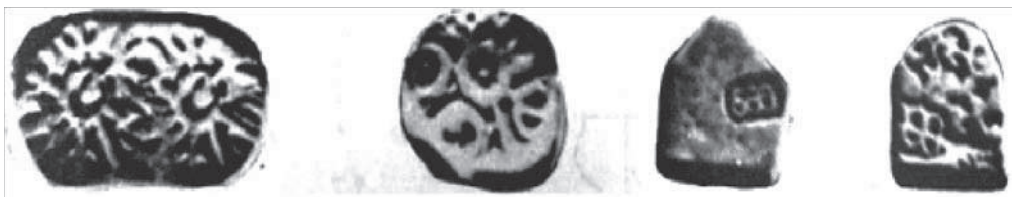
आहत सिक्के। स्रोतः ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10।

7.6.4 गहने

अर्ध बहुमूल्य पत्थर, कांच, चिकनी मिट्टी, ताम्र, शंख तथा हड्डियों की मनके, सबसे अधिक पाए गए हैं। इनकी आकृति सामान्यतः वृत्ताकार, गोलाकार, द्विकोणीय, बेलनाकार, ढोलाकार तथा चौकोर होती थी। कुछ मनके निक्षारित भी हैं। कौशाम्बी IB (लगभग 300 बीसी.सी.) से एकमात्र सोने का मनका प्राप्त हुआ है।

अन्य गहनों में पक्की मिट्टी, रंगी चमकाई मिट्टी (Faience), कांच, सीप, पत्थर एवं ताम्र की चूड़ियाँ थीं। ताम्र, लोहे, सींग तथा भूरी मिट्टी की अंगूठियाँ, चिकनी मिट्टी, अकीक तथा इन्द्रगोप के कुंडे (Locket) भी पाए गए हैं। इन सभी वस्तुओं से हमें निम्नलिखित जानकारी मिलती हैं :

- समाज में गहनों का इस्तेमाल,
- गहने बनाने वाले विशेषज्ञ शिल्पकारों का मौजूद होना,
- गहने बनाने की तकनीक की जानकारी के स्तर, तथा
- विभिन्न अर्धबहुमूल्य पत्थरों की उपलब्धता के लिए अन्य क्षेत्रों के साथ व्यापार अथवा विनिमय गतिविधियाँ।

7.6.5 पकी मिट्टी की मूर्तियाँ

मिट्टी की मूर्तियों में मनुष्यों तथा पशुओं की मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ शामिल हैं। मनुष्य की मूर्तियाँ अधिकतर सांचे में बनायी गई हैं। पुरुषों की मूर्तियाँ, कुछ को छोड़कर जिनके सिरों पर पहनावा है, सामान्यतः सादी हैं। महिलाओं की मूर्तियाँ सर के पहनावों, कान के गहनों, हार, कमर के लटकों से सुसज्जित हैं। पशुओं की मूर्तियाँ यद्यपि हाथ से गढ़ी गयी हैं लेकिन उनकी बनावट काफी अच्छी है। इनमें घोड़े, बैल, मेढ़े तथा हाथियों की मूर्तियाँ हैं। मिट्टी की अन्य वस्तुएँ खिलौनों की गाड़ियाँ, साधारण तथा पशुओं के सर वाले खिलौने, चक्र (disc), गेंद तथा कुम्हार की मुहरें हैं। इसी संस्कृति के अगले चरण में मुहरें, जिन पर ब्राह्मी लिपि में लिखावट मौजूद है, भी पायी गई है। इन तथ्यों से इन क्षेत्रों के निवासियों के संबंध में काफी जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए, खिलौने की गाड़ी से हमें पता चलता है कि यह लोग वाहन के साधन के रूप में गाड़ियों का प्रयोग करते थे।

7.6.6 जीवन-यापन अर्थव्यवस्था एवं व्यापार

पुरातात्विक वानस्पतिक अवशेषों से संकेत मिलता है कि इन क्षेत्रों में धान, गेहूं, जौ, बाजरा, मटर तथा काला चना उगाया जाता था। कुछ क्षेत्रों से मिले पशुओं के अवशेषों से लोगों के गाय, बैलों, भेड़, बकरियों, सुअरों तथा मछलियों पर निर्भर होने की जानकारी मिलती है। विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य रूप से पाई गई विविध प्रकार के मनकें व्यापारिक गतिविधियों की ओर संकेत करते हैं। इसी आधार पर अनुमान लगाया गया है कि तक्षिला, हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, श्रावस्ती तथा कौशाम्बी के बीच, लगभग 600 बी.सी.ई. से 200 बी.सी.ई के दौरान व्यापारिक संबंध रहे होंगे। बौद्ध साहित्य में व्यापार *संघ* तथा ऊंटों, घोड़ों, खच्चरों, बैलों तथा भैंसों के कारवां के संबंध में उल्लेखों से इस विचार की पुष्टि होती है। छठवीं तथा चौथी शताब्दी बी.सी.ई. के बीच भारत, बेबीलोनिया, सीरिया तथा सुमेर (मध्य एशिया) के बीच व्यापार होता था। निर्यात की मुख्य वस्तुएँ कपड़े, मसाले तथा सम्भवतः लोहे और इस्पात के बने सामान थे। *अर्थशास्त्र (पुस्तक II)* के अध्ययन से प्रतीत होता है कि राज्य न केवल व्यापार पर नियंत्रण रखता था बल्कि सोने, ताम्र, लोहे, सीसा, टिन, चाँदी, हीरे, जवाहरात तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों के उद्योग पर भी उसका प्रभुत्व था।

बोध प्रश्न 3

1) उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्डों की संस्कृति को यह नाम कहाँ से मिला?

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है और कौन सा गलत (×) है, निशान लगायें।

क) उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड विलासिता की वस्तु थे। ( )

ख) विद्वानों का मत है कि उत्तरी काली पॉलिश किए मृदभाण्ड संस्कृति के चार चरण थे। ( )

ग) साहित्यिक प्रमाण पुरातत्व शास्त्रियों के इस मत की पुष्टि करते हैं कि इस काल में व्यापारिक गतिविधियाँ होती थीं। ( )

घ) उत्तरी काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड संस्कृति की बस्तियों में किलेबन्दी नहीं होती थी। ( )

7.7 पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ

पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्य भारत में दूसरी एवं प्रथम सहस्राब्दी बी.सी.ई. के दौरान कई स्थानीय ताम्र पाषाण आरंभिक खेतिहर संस्कृतियाँ मौजूद थी। ये संस्कृतियाँ मूलतः ग्रामीण बस्तियाँ हैं तथा उनमें कई तत्व समान हैं। इन संस्कृतियों के विशिष्ट लक्षण निम्नलिखित हैं :

- चित्रित बर्तन जो मुख्यतः लाल पर काले रंगे हुए हैं, तथा
- सिलिकामय पत्थर के ब्लेड तथा परतों का अत्यधिक विकसित उद्योग।

ताम्र की जानकारी इस समय थी लेकिन चूंकि यह धातु प्रचुर मात्रा में नहीं थी अतः इसका इस्तेमाल सीमित पैमाने पर होता था। बस्तियों की संरचना गोल एवं आयताकार झोपड़ियों से होती थी। कई स्थानों पर गर्तावास के भी प्रमाण मिले हैं। अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन पर आधारित थी। इन संस्कृतियों के नाम उनके विशिष्ट क्षेत्रों के नाम पर रखे गए हैं।

ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ

संस्कृति का नाम	काल
कायथा	लगभग 2000-1800 बी.सी.ई.
अहार अथवा बानस	लगभग 2000-1400 बी.सी.ई.
सवालदा	लगभग 2000-1800 बी.सी.ई.
मालवा	लगभग 1700-1200 बी.सी.ई.(मध्य भारत में)
	लगभग 1700-1400 बी.सी.ई. (महाराष्ट्र में)
प्रभास	लगभग 1800-1500 बी.सी.ई.
रंगपुर	लगभग 1400-700 बी.सी.ई.
चिरंद	लगभग 1500-750 बी.सी.ई.

महाराष्ट्र की तापी घाटी में उत्तर-हड़प्पा सभ्यता की लगभग 50 गैर नगरीय बस्तियाँ अब तक प्रकाश में आ चुकी हैं (लगभग 1800-1600 बी.सी.ई. के बीच)। दायमाबाद की खुदाई से पता चला है कि उत्तर कालीन हड़प्पा के लोग दक्षिण की ओर प्रवरा घाटी (महाराष्ट्र) की ओर बढ़ गए।

कायथा संस्कृति का नाम कायथा (उज्जैन से 25 कि.मी. पूर्व की ओर), चम्बल नदी की एक उप नदी काली सिंध के तट पर स्थित क्षेत्र के नाम पर रखा गया है। **अहार** अथवा **बानस** संस्कृति का नाम बानस नदी के नाम पर रखा गया है तथा इसका विशिष्ट क्षेत्र अहार (राजस्थान में उदयपुर) है। दक्षिण पूर्व राजस्थान में बानस और बेराच घाटियों में इस संस्कृति की 50 से अधिक बस्तियाँ पायी गईं। **सावलदा** संस्कृति का नामकरण सावलदा (धूलिया जिला, महाराष्ट्र) बस्ती के नाम पर हुआ है। यद्यपि यह संस्कृति अधिकतर तापी घाटी तक सीमित है लेकिन दायमाबाद से मिले प्रमाणों से इस संस्कृति के प्रवरा घाटी तक पहुँचने के संकेत मिलते हैं। **मालवा** संस्कृति नर्मदा नदी के तट पर महेश्वर एवं नवदाटोली (निमार जिला, मध्य प्रदेश) की खुदाई के दौरान प्रकाश में आई। चूँकि इस संस्कृति की अधिकतर बस्तियाँ मालवा क्षेत्र के अंतर्गत प्रकाश में आईं इसलिए इस संस्कृति का नाम मालवा संस्कृति रखा गया। लगभग 1600 बी.सी.ई. के दौरान मालवा के लोग महाराष्ट्र की तरफ बढ़ना शुरू हो गए और तापी, गोदावरी तथा भीमा घाटियों में इनकी कई बस्तियाँ प्रकाश में आई हैं। महाराष्ट्र में प्रकाश (धुलिया जिला), दायमाबाद (अहमदनगर जिला), इनामगाँव (पुणे जिला) सबसे बड़ी बस्तियाँ थीं। प्रभास और रंगपुर संस्कृतियाँ क्रमशः प्रभासपाटन और रंगपुर (गुजरात) क्षेत्र के नामों से जानी जाती हैं। **जोर्वे** संस्कृति की विशिष्ट बस्ती महाराष्ट्र में स्थित जोर्वे (अहमदनगर जिला) है। प्रकाश, दायमाबाद तथा इनामगाँव में मालवा संस्कृति के बाद जोर्वे संस्कृति विस्तृत रूप में फैली। पाषाण और ताबें का प्रयोग करने वाले कई समूहों की जानकारी पूर्वी भारत में भी मिली है। उत्तरी बिहार में चिरंद नामक स्थान पर एक प्राचीन ग्रामीण बस्ती के अवशेष मिले हैं। यहाँ लोग मिट्टी से थापे हुए बाँस के घरों में रहते थे। उनका प्रमुख भोजन चावल और मछली था तथा ये लोग जंगली जानवरों का शिकार भी करते थे। यह लोग भी काले-व-लाल रंग के मिट्टी के बरतनों का प्रयोग करते थे। इसी प्रकार की कुछ बस्तियाँ गोरखपुर के सहगोरा (उत्तर प्रदेश) और गया के सोनपुर (बिहार) नामक स्थानों पर भी मिली हैं। यहाँ लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। बंगाल के बुर्दवान जिले में पंडु-राजर-ढीबी और भिरभुम जिले में माहिसदाल नामक स्थानों पर भी इसी तरह की बस्तियों के संकेत मिले हैं। ये सारी बस्तियाँ लगभग 1500 से 750 बी.सी.ई. की प्रतीत होती हैं।

पश्चिम तथा मध्य भारत में ताम्र पाषाण युगीन बस्तियाँ। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10।

आइए, इस संस्कृति की विभिन्न विशेषताओं पर दृष्टि डालें।

7.7.1 बर्तन : पहचान के लक्षण

इन ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों के बर्तनों पर हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे। कायथा के मृद्भाण्ड की बनावट की तीन मुख्य विशेषताएँ हैं :

- गहरे भूरे रूपरेखा चित्रों (designs) में बनी मोटी तथा गहरी लाल धारी वाले मृद्भाण्ड,
- लाल रंग में चित्रित हल्के भूरे मृद्भाण्ड (ये मृद्भाण्ड पतले हैं तथा काफी सफाई से गढ़े गए हैं), और
- बगैर धारी वाले खरोचे गए मृद्भाण्ड। गहरी तथा मोटी लाल धारी वाले अधिकतर बर्तनों का आधार गोल है। यह गोल आधार पूर्व हड़प्पा सोथी मृद्भाण्डों के समरूप है।

सोथी संस्कृति (राजस्थान) घग्घर घाटी (सरस्वती) के विभिन्न क्षेत्रों में फैली पायी गयी है। यहाँ पाए गए बर्तन कालीबंगन के पूर्व हड़प्पा बर्तनों के समरूप हैं।

अहार के बर्तनों के सात प्रकार के मृद्भाण्ड पाए गए हैं लेकिन इनमें मुख्य सफेद सावलदा चित्रित काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड हैं। सावलदा संस्कृति की विशेषता यहाँ के लाल-पर-काले चित्रित बर्तन हैं जिनको प्राकृतिक चित्रों जैसे चिड़ियों, जानवरों तथा मछलियों के चित्र बनाकर सुसज्जित किया गया है। मालवा के मृद्भाण्ड कुछ हद तक खुरदरे हैं तथा इन पर मोटी हल्की भूरी धारी है जिस पर काले अथवा गहरे भूरे रंग से चित्र बनाए गए हैं। प्रभास तथा रंगपुर दोनों के मृद्भाण्ड लाल-पर-काले चित्रित मृद्भाण्डों के समरूप हैं लेकिन चूँकि इनको चमकाया भी गया है अतः इन्हें चमकदार लाल मृद्भाण्ड (lustrous ware) कहा जाता है।

जोर्वे मृद्भाण्ड लाल-पर-काले चित्रित हैं तथा इनकी बनावट समतल, चमकरहित है, एवं इन पर लाल रंग की पुताई की गयी है।

इन विशिष्ट किस्मों के अतिरिक्त इन संस्कृतियों में अन्य मृद्भाण्ड भी मौजूद थे जो कि अधिकतर लाल अथवा धूसर हैं। बर्तन चाक गढ़ित हैं लेकिन हाथ के बनाए हुए बर्तन भी पाए गए हैं।

मालवा संस्कृति के मृद्भाण्ड। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10।

इन संस्कृतियों के सामान्य बर्तन प्याले, अन्दर की ओर धंसती गोल गर्दन वाले गोलाकार मर्तबान, तश्तरियाँ, लोटे आदि हैं। मालवा के बर्तनों के विशिष्ट लक्षण ठोस आधार वाले छोटे-छोटे गिलासों में परिलक्षित होते हैं। जोर्वे संस्कृति के विशिष्ट बर्तन नौतली प्याले, चौड़े मुंह वाले टोटीदार मर्तबान तथा गोल कलश हैं।

7.7.2 अर्थव्यवस्था

ये ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ जिन क्षेत्रों में फैलीं उनका अधिकतर भाग कपास उगाने के लिए उपयुक्त काली मिट्टी वाला क्षेत्र है। यहाँ का मौसम अर्धखुश्क है तथा वर्षा औसत 400 से 1000 मिलीमीटर के बीच है। इन ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों की अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन पर आधारित थी। कुछ क्षेत्रों में जंगली जानवरों तथा मछली आदि जैसे अन्य भोजन स्रोतों पर निर्भरता के प्रमाण मिले हैं।

i) फसलें

कुछ क्षेत्रों से खुदाई में प्राप्त बीजों के कार्बनयुक्त अवशेषों से यहाँ के कृषक समुदायों द्वारा विभिन्न प्रकार की फसलें उगाने के प्रमाण मिलते हैं। मुख्य फसलें जौ, गेहूं, धान, बाजरा, ज्वार, मसूर, फलियाँ, मटर, काला चना तथा मूंग थीं। अन्य पेड़ जिनके फलों का उपयोग किया जाता था वे थे – जामुन, बहेड़ा, जंगली खजूर, आंवला, बेर आदि।

इस काल में जौ मुख्य अन्न था। इनामगाँव से प्राप्त प्रमाणों से क्रमिक रूप में फसल उगाने, गर्मी तथा सर्दी की फसलों की कटाई तथा कृत्रिम सिंचाई की परंपरा का पता चलता है। आरंभिक जोर्वे युग (लगभग 1400-1000 बी.सी.ई.) में इनामगाँव में नहर द्वारा (200 मीटर लम्बी, 4 मीटर चौड़ी तथा 3.5 मीटर गहरी) बाढ़ के पानी की दिशा परिवर्तन के लिए एक विशाल बाँध (240 मीटर लम्बा तथा 2.40 मीटर चौड़ा) बनाया गया था।

कपास उगाने के लिए उपयुक्त काली मिट्टी की जमीन की जुताई के संकेत इनामगाँव के समीप ही बालकी में मिले बैल के कंधे की हड्डी से बने अर्द (हल के फल का आरंभिक रूप) से मिलते हैं।

ii) पशु

खुदाई से यहाँ पालतू तथा जंगली दोनों प्रकार के जानवरों के प्रमाण मिले हैं।

1) ताम्र पाषाण युग के दौरान पालतू पशुओं में गाय-भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता, सुअर तथा घोड़े मुख्य थे। गाय-भैसों तथा भेड़-बकरियों की हड्डियाँ यहाँ के अधिकांश क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक मिली हैं। हड्डियों पर चोट पड़ने तथा कटने के निशानों से पता चलता है कि यह पशु भोजन की दृष्टि से काटे गए होंगे। इन हड्डियों से आयु निर्धारण के संकेत मिलते हैं कि इन पशुओं को कम आयु (तीन महीने से लेकर 3 वर्ष के बीच) में ही काटा गया होगा।

2) जंगली जानवरों में मृग, चार सींगों वाले हिरन, नीलगाय, बारहसिंगा, सांबर, चीतल, जंगली भैंस तथा गैंडे थे।

कुछ क्षेत्रों में जलमुर्गियों, समुद्री कछुआ तथा चूहों की भी हड्डियाँ मिली हैं। इनामगाँव में समुद्री मछलियों की भी हड्डियाँ मिली हैं। यह मछलियाँ कल्याण अथवा महद खाड़ी बंदरगाहों जो कि इनामगाँव के समीपतम 200 कि.मी. पश्चिम की ओर स्थित थे से प्राप्त की गयी होगी।

7.7.3 घर एवं बस्तियाँ

आइए, अब हम इन संस्कृतियों की गृह-निर्माण परंपराओं को संक्षिप्त रूप में विश्लेषित करें। मिट्टी की दीवारों तथा छप्पर की छतों वाले आयताकार एवं गोलाकार घर इन संस्कृतियों में सामान्य थे, यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में घर के आकारों में भिन्नता थी।
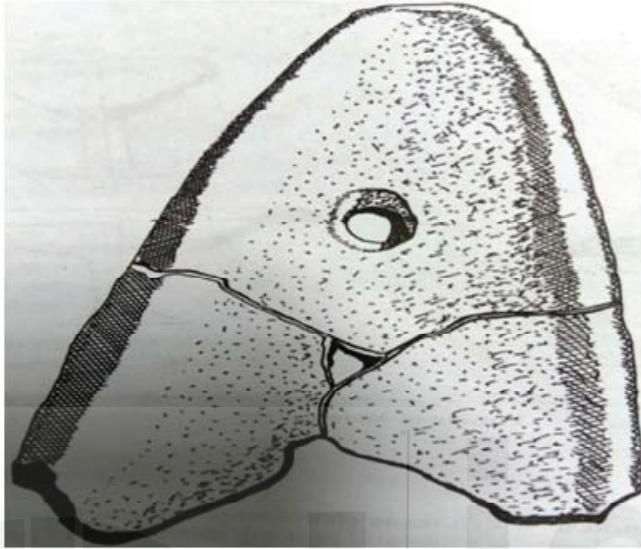
वालकी से प्राप्त हड्डी का आर्द। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10।

1) सावलदा संस्कृति में अधिकतर घर आयताकार तथा एक कमरे वाले थे लेकिन कुछ घरों में दो अथवा तीन कमरे भी थे। अहार के लोग पलमा पत्थरों के चबूतरे पर आधारित घर बनाते थे। इन्हीं चबूतरे पर मिट्टी अथवा मिट्टी की ईंटों की दीवारें बनाई जाती थीं। तथा उन्हें स्फटिक की रोड़ी से सजाया जाता था। फर्श तपाई मिट्टी अथवा मिट्टी में नदी के कंकड़ मिलाकर तैयार किया जाता था।

2) बाहर के घरों का आकार 7 मीटर x 5 मीटर अथवा 3 मीटर x 3 मीटर होता था। यहाँ मिले सबसे बड़े घरों का आकार 10 मीटर से भी अधिक लम्बा है। बड़े घरों में विभाजन दीवारें, चूल्हे तथा रसोई में चक्कियाँ होती थीं।

3) मालवा की बस्तियाँ, जैसी कि नावदातोली, प्रकाश, दयामावाद तथा इनामगाँव में मिली हैं, काफी बड़ी थीं। इनामगाँव से मिले प्रमाणों से संकेत मिलते हैं कि बस्तियाँ बनाने का काम योजनाबद्ध तरीके से होता था। इनामगाँव में मिले लगभग 20 घरों में से अधिकतर पूर्व पश्चिम दिशा में नियोजित किए गए हैं। यद्यपि यह घर एक दूसरे से काफी निकट बनाए गए हैं लेकिन इनके बीच लगभग 1-2 मीटर की दूरी अवश्य रखी गयी है जो संभवतः गली के रूप में इस्तेमाल की जाती रही होगी। इनामगाँव में मिले इन घरों का आकार काफी बड़ा (7 मीटर x 5 मीटर) और आयताकार है। इनमें विभाजन करती हुई दीवारें मौजूद हैं। घरों की दीवारें मिट्टी की बनी हैं तथा काफी नीची हैं एवं इनकी छतें ढलवा हैं। घरों के अन्दर आग जलाने के गोलाकार गड्ढे हैं जिनके किनारे दीवारों के रूप में ऊपर की ओर उठे हैं, जिससे आग पर नियंत्रण रखा जा सके। नावदातोली के घरों में रसोई के अन्दर एक मुंह अथवा दो मुंह वाले चूल्हे होते थे। अनाज का भंडारण गहरे बने अन्न भंडारण गड्ढों (एक मीटर व्यास तथा एक मीटर गहरे) में होता था। घरों के अन्दर मिट्टी के गोल चबूतरे (1.5 मीटर व्यास के) संभवतः अनाज के टोकरों को रखने के काम आते होंगे।
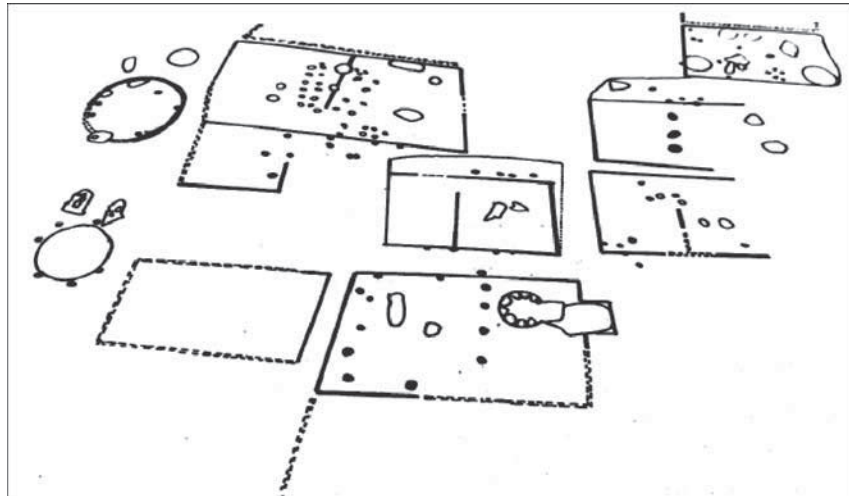
मालवा संस्कृति के अंतर्गत इनामगाँव में गृह-निर्माण योजना। स्रोत : ई.एच.आई.-2, खंड-03, इकाई-10।

4) जोर्वे संस्कृति (जिसके अब 200 से अधिक क्षेत्र प्रकाश में आ चुके हैं और इनमें से अधिकतर को एक से चार हैक्टेयर के बीच के गाँवों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है) की मुख्य विशेषता यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र में एक बड़े केंद्रीय क्षेत्र का पाया जाना है। यह केंद्र प्रकाश, दायमाबाद तथा इनामगाँव है जो कि क्रमशः तापी, गोदावरी तथा भीमा की घाटियों में हैं। दयमाबाद जोर्वे बस्तियों में सबसे बड़ी बस्ती थी जो लगभग 30 हैक्टेयर में फैली थी जबकि प्रकाश एवं इनामगाँव पाँच-पाँच हैक्टेयर में फैले थे।

5) इनामगाँव में जोर्वे (पूर्वकालीन एवं उत्तर दोनों) की बस्ती की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि दस्तकारों, जैसे कुम्हार, सुनार, हाथीदांत व मनकों के शिल्पकार आदि के घर मुख्य निवास क्षेत्र की पश्चिमी सीमा की ओर होते थे जबकि समृद्ध किसान केंद्रीय भाग में रहते थे। दस्तकारों के घरों का आकार समृद्ध किसानों की अपेक्षा छोटा होता था। घर बनाने के स्थान पर आकार के आधार पर इस समाज में दस्तकारों के निचले सामाजिक स्तर की जानकारी मिलती है।

कुछ ताम्र पाषाण बस्तियों के चारों ओर किलाबंदी भी की जाती थी। उदाहरण के लिए, मालवा संस्कृति की एरन तथा नागदा (मध्य प्रदेश) तथा इनामगाँव (जोर्वे युग) में पत्थर के रोड़ों की बुर्ज युक्त मिट्टी की दीवार तथा बस्ती के चारों ओर खुदे हुए गड्ढे मिले हैं।

इनामगाँव में घरों की बनावट में पूर्वकालीन जोर्वे युग (1400-1000 बी.सी.ई.) के घरों तथा उत्तरकालीन जोर्वे युग (1000-700 बी.सी.ई.) के घरों में भिन्नता दिखाई देती हैं।

पूर्वकालीन जोर्वे घरों के ढांचे आयताकार होते थे, इनकी मिट्टी की दीवारें नीची (लगभग 30 सेंटीमीटर ऊँची) होती थीं तथा चारों ओर सरपत एवं मिट्टी से बने ढांचे होते थे। यह घर पंक्तियों में बनाए जाते थे तथा दिशा लगभग पूर्व से पश्चिमी की ओर होती थी, इन घरों के बीच में लगभग 1.5 मीटर चौड़ा खुला स्थान भी होता था जोकि संभवतः गली अथवा सड़क का काम देता था। इसके विपरीत उत्तरकालीन जोर्वे के घर यहाँ की निर्धनता का चित्रण करते हैं। बड़ी-बड़ी आयताकार झोपड़ियाँ इस युग में नहीं दिखाई देतीं। इनकी जगह मिट्टी की छोटी दीवारें वाली गोल झोपड़ियाँ बनाई जाती थीं। अन्न भण्डार गड्ढों की जगह चार पत्थरों पर रखे चौपाए भण्डारण जार का उपयोग होता था।

तमाम प्रमाणों से संकेत मिलते हैं कि पूर्व कालीन जोर्वे से उत्तरकालीन जोर्वे में इस प्रकार का परिवर्तन वर्षा की दर में कमी आने के परिणामस्वरूप खेती का पतन होने के कारण हुआ। पश्चिमी एवं मध्य भारत में खोजबीन से पता चलता है कि दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के अंतिम

चरण में इस क्षेत्र में मौसम में भारी परिवर्तन आने के कारण पूरा क्षेत्र खुश्क होने लगा जिसके परिणामस्वरूप लोगों को बाध्य होकर अर्ध खानाबदोश जीवन की ओर लौटना पड़ा। यह निष्कर्ष विभिन्न स्तरों से प्राप्त पशुओं की हड्डियों की प्रतिशत मात्रा के आधार पर निकाला गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जोर्वे युग में जलवायु में शुष्कता बढ़ने के कारण कृषि का ह्रास हुआ जिससे कृषि पर आधारित अर्थव्यवसथा भेड़-बकरी पशुपालन अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई।

7.7.4 अन्य विशेषताएँ

यह सभी विशेषताएँ पत्थर के ब्लेडों, पत्तरों के उद्योग, जो कि सिक्थस्फटिक, चकमकी, सूर्यकांत तथा अकीक जैसे सिलिकामय पत्थरों पर आधारित थे, द्वारा रेखांकित होती हैं। औज़ारों में समानांतर किनारे वाले फलक, कुण्ठित किनारे वाले फलक, दंतुर फलक, चाकू, नवचन्द्राकार, तिकोने तथा समलंबाकार औज़ार पाए गए हैं। इन फलकों वाले औज़ारों में कुछ की धार पर चमक है, जिसका अर्थ यह हुआ कि यह औज़ार फसल की कटाई के काम में इस्तेमाल किए जाते थे। पॉलिश की गयी पत्थर की कुल्हाड़ियाँ भी जो कि विशिष्ट रूप से कर्नाटक, आंध्र के नव पाषाण-ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियों से सम्बद्ध हैं, कुछ क्षेत्रों में प्राप्त हुई हैं यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं है।

ताम्र वस्तुओं में चपटी कुल्हाड़ियाँ अथवा काटने की उतल धार वाली कुठारें, तीर के फल, बरछों के फल, छेनियाँ, मछलियों के कांटे, मध्य पंशुका वाली तलवार, फलक, चूड़ियाँ, अंगूठियाँ तथा मालाएँ हैं। कायथा में मिली वस्तुओं में एक बर्तन में ताम्र की 28 चूड़ियाँ मिली हैं। कुल्हाड़ियाँ जैसी कुछ वस्तुएँ गढ़ी जाती थीं जबकि अन्य वस्तुएँ हथौड़ों से पीट कर निरुपित की जाती थी। गहनों में सबसे अधिक इन्द्रगोप, सूर्यकांत, सिक्थस्फटिक, अकीक, सीप आदि के मनके पाये गये हैं। कायथा संस्कृति से सम्बद्ध एक बर्तन में सेलखड़ी के 40,000 छोटे-छोटे मनकों की एक कण्ठी मिली है। इनामगाँव में सोने तथा हाथी दांत के मनके, सोने की एक कुँडलित आकार वाली कान की बाली तथा ताम्र की पहुँची प्राप्त हुई है।

इनमें से अधिकतर क्षेत्रों में मिट्टी की बनी वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में मिली हैं। यह वस्तुएँ मानवीय एवं पशुओं की मूर्तियों के रूप में हैं। पारंपरिक शैली के मिट्टी के सांड (जो कि अधिकतर छोटे आकार के हैं) कायथा के ताम्र पाषाण स्तर से मिले हैं। इनमें कुछ में स्पष्ट ककुद हैं, कुछ की सींगें पीछे की ओर मुड़ी हुई हैं तथा कुछ की सींगें आगे की ओर समतलीय रूप में निकली हुई हैं। इन ताम्र पाषाण क्षेत्रों के अधिकतर क्षेत्रों में मिट्टी के बने सांडों के पाए जाने से यह पता चलता है कि सांड पूजनीय पशु था। यद्यपि इनके खिलौनों के रूप में इस्तेमाल की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

दायमाबाद भंडार

एक संयोगिक उपलब्धि के रूप में दायमाबाद में टीले के ऊपर (इसके नीचे जोर्वे युग का 1.2 मीटर संग्रह है) चार वस्तुएँ मिली हैं। यह सभी वस्तुएँ ठोस ढली हैं तथा इनका वजन 60 कि. ग्रा. से ऊपर है।

1) हाथी : यह सबसे भारी है (ऊँचाई 25 सेंमी. तथा लम्बाई 27 से.मी.) तथा ताम्र के आधार पर, जिसके नीचे धुरियों को समाने के लिए चार कोष्ठ हैं, खड़ा है।

2) गेंडा : यह कुछ छोटा है तथा यह भी एक आधार पर खड़ा है। कोष्ठों में ताम्र की दो ठोस धुरियाँ तथा गढ़े हुए पहिए लगे हैं। गेंडा कुछ उसी प्रकार का है जैसा कि सिंधु की मुहरों पर बना है।

3) सवार सहित दो पहियों वाला रथ-रथ एक लम्बे ध्रुव के सहारे जुआ युक्त बैलों से, जो

कि दो ताम्र की ढली दो पट्टियों पर खड़े हैं, जुड़ा हुआ है। लेकिन इसमें पहियों के लिए कोष्ठ नहीं हैं। रथ में एक दंड है, जिसे दो समानांतर दंड संभाले हुए हैं। इस दंड पर सवार खड़ा है। इस कृति जैसा अन्य कोई उदाहरण नहीं है।

4) भैंस : इस कृति में भी दो पहिए एवं धुरी मौजूद है। इस कृति जैसी ही भैंस की मिट्टी एवं ताम्र अथवा कांस्य दोनों की ही मूर्तियाँ मोहनजोदड़ो से भी प्राप्त हुई हैं।

स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-10

दायमाबाद के भंडार की ताम्र की तुलना खुदाई में मिलीं अन्य ताम्र वस्तुओं से की जा सकती है। इस धातु के स्पेक्ट्रोमेटरिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें टिन अथवा कोई अन्य धातु की मिलावट नहीं की गयी थी। एक मत के अनुसार, दायमाबाद के भंडार का काल उत्तर कालीन उड़प्पा काल (1600-1300 बी.सी.ई.) है। एक अन्य मत के अनुसार, तकनीक के आधार पर इनका काल कल्लूर भंडारों वाला काल हो सकता है।

7.7.5 धर्म एवं विश्वास

खुदाई से प्राप्त जानकारियों से लोगों के धार्मिक विश्वासों एवं रीतियों पर भी प्रकाश पड़ता है।

i) **देवियाँ** : ताम्र पाषाण समुदाय के लोगों के देवियों में विश्वास तथा उनकी पूजा के प्रमुख प्रमाण नारी प्रतिमाओं (जो तपाए तथा गैर तपाए दोनों रूपों में मौजूद थीं) के पाए जाने से प्राप्त होते हैं। इन प्रतिमाओं में कुछ के सर हैं और कुछ के नहीं हैं। बस्तियों के निचले तलों में नेवासा (दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के मध्य में) में शीर्ष रहित बड़े आकार की एक नारी प्रतिमा मिली है जो कि बगैर किसी विशिष्ट शारीरिक लक्षणों की है। इनामगाँव में भी इसी प्रकार की मिट्टी की प्रतिमाएँ मिली हैं जिनमें स्तनों के अतिरिक्त अन्य शारीरिक लक्षण नहीं हैं।

   इनामगाँव में एक आरंभिक जोर्वे घर (1300 बी.सी.ई.) की खुदाई से देवी पूजा के प्रमाण मिले हैं। यहाँ पर एक कोने में फर्श के नीचे दबा अंडाकार मिट्टी का पात्र ढक्कन सहित मिला है। इस पात्र के अन्दर एक नारी प्रतिमा मिली है जिसके स्तन बड़े एवं लटके हुए हैं। साथ एक सांड की मूर्ति भी मिली है। इनामगाँव से मिले प्रमाण तथा सभी नारी प्रतिमाओं से उर्वरता की देवी की पूजा के संकेत मिलते हैं। यह प्रतिमाएँ (विशेषकर शीर्ष रहित प्रतिमाएँ), एक मतानुसार, शाखंबरी देवी (पूर्व ऐतिहासकि युग) जो कि कृषि उर्वरता की देवी थी तथा सूखे से छुटकारा पाने के लिए पूजी जाती थी, की प्रतीत होती है।

ii) **देवता** : ताम्र पाषाण बस्तियों में पुरुष प्रतिमाएँ काफी कम हैं। ऐसा मत है कि इनामगाँव में उत्तर जोर्वे तलों (1000-700 बी.सी.ई.) में मिली दो मिट्टी की पुरुष प्रतिमाएँ (जिनमें एक तपाई गयी है तथा दूसरी गैर तपाई है) देवताओं की प्रतिमाएँ होंगी। इसी संदर्भ में मालवा काल (1600 बी.सी.ई.) का एक चित्रित जार धार्मिक महत्त्व का माना गया है। इस बर्तन में दो भाग हैं। ऊपरी भाग में एक चित्र बना है, जिसमें एक मानवीय आकृति टहनियों का वस्त्र पहने हुए एक शेर के सामने झुका हुआ है, और उसके चारों ओर कुछ निश्चित शैली में ढले हुए पशु जैसे सांड, हिरन तथा मोर आदि खड़े हैं। निचले भाग में छलांग लगाते चीते अथवा तेंदुए हैं और यह भी निश्चित शैली में ढले हुए हैं। अच्छी तरह चित्रित करके सजायी गई तश्तरी भी सम्भवतः कर्मकाण्डीय प्रयोगों के लिए होगी। इसी प्रकार दायमाबाद से प्राप्त ठोस ताम्र हाथी और भैंस की प्रतिमाएँ आदि भी संभवतः धार्मिक महत्त्व रखते होंगे।

iii) **मृतकों को दफनाने की** : मृतकों को दफन करके विन्यास करना एक सामान्य रीति थी। वयस्क तथा बच्चे दोनों ही उत्तर-दक्षिण क्रम में दफनाए जाते थे। सर उत्तर की ओर होता था तथा पैर दक्षिण की ओर। वयस्क अधिकतर लिटा कर दफनाए जाते थे जबकि बच्चे कलशों में दफनाए जाते थे। यह कलश कभी एक और अधिकतर दो होते थे जिनका मुंह जोड़ कर उन्हें गड्ढे में लिटा दिया जाता। वयस्क और बच्चे दोनों ही गड्ढों में दफनाए जाते थे जो घर के फर्श में खोदे जाते थे और कभी भी घर के आंगन में नहीं खोदे जाते थे। इस संदर्भ में रुचिकर तथ्य यह है कि जोर्वे युग में वयस्क मृतकों के टखनों के नीचे का पैर काट दिया जाता था। मृतकों को घर के अहाते में दफनाने तथा टखने के नीचे का भाग काट देने की प्रथा संभवतः इस विश्वास की ओर संकेत करती है कि ऐसा करने से मृतक भूत नहीं बनेंगे जो कि दुष्ट हो सकते हैं।

विभिन्न स्थानों पर वयस्क शवाधान में शव के साथ कुछ वस्तुएँ भी रखी जाती थीं जो कि सामान्यतः दो और कभी-कभी दो से अधिक पात्र होते थे। उत्तर जोर्वे युग के एक शवाधान में पंद्रह पात्र रखे मिले हैं। मृतकों को उनके गहनों के साथ दफनाना भी सामान्य था। उत्तर जोर्वे युग के एक शवाधान में मनुष्य के अस्थिपंजर की गर्दन के निकट एक ताम्र का गहना प्राप्त हुआ है। इसी युग में दो कलशों में दफनाए गए एक बच्चे के साथ ताम्र एवं लाल इंद्रगोप के मनकों की क्रम में गुथी बारह मनकों की एक कण्ठी मिली है।

इनामगाँव से प्राप्त जानकारी से जोर्वे युग में कुछ असामान्य शवाधान के तरीकों का भी पता

चला है। यहाँ पर एक चार पायों वाला कलश, जो कि गैर तपाई मिट्टी का बना है और इसका दक्षिणी भाग मानवीय शरीर की तरह है, प्राप्त हुआ है। इस कलश (इसकी ऊँचाई 80 से.मी. तथा चौड़ाई 50 से.मी. है) का मुख चौड़ा और स्वरूप विहीन है और इसमें एक 30 से 40 वर्ष की आयु के पुरुष का ढांचा मिला है। यह ढांचा बैठने की मुद्रा में रखा मिला है। इसके टखने नहीं काटे गये हैं। कब्र की वस्तुओं में एक टोटीदार पात्र, जिस पर एक नाव, जिसके लम्बे चप्पू हैं का चित्र बना है, रखा मिला है। इस नाव के चित्र से आज हिन्दुओं के उस विश्वास को स्मरण होता है जिसमें वे मानते हैं कि मृतक की आत्मा को जल सागर पार करना होता है और तभी वह स्वर्ग पहुँचती है। इस प्रकार के भव्य शवाधान का गौरव प्राप्त करने वाला व्यक्ति संभवतः

- समाज में उच्च स्तर का व्यक्ति रहा होगा, अथवा
- बस्ती का प्रधान शासक रहा होगा, अथवा
- किसी ऐसे सामाजिक समूह का सदस्य होगा जिनके शवाधान का तरीका भिन्न था।

7.7.6 सामाजिक संगठन

ताम्र पाषाण संस्कृति के क्षेत्रों में पाये गये विभिन्न स्थलों के फैलाव के अध्ययन से यह लगता है कि स्थल दो प्रकार के थे, एक वह जो क्षेत्रीय केंद्रों का प्रतिनिधित्व करते थे तथा दूसरे गाँवों की बस्तियों का। यह अन्तर अथवा स्तरीकरण ताम्र पाषाण काल में किसी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था के मौजूद होने की ओर संकेत करता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि ताम्र पाषाण सामाजिक संगठन श्रेणीबद्ध था। इसके साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों में मिली सुरक्षा दीवारों, खाइयों, अनाज के गोदाम, बाँध तथा नहरों (जो कि इनामगाँव में काफी स्पष्ट हैं) आदि सार्वजनिक व्यवस्थाओं को समग्र रूप में देखने से किसी न किसी प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था के विद्यमान होने के विचार को और भी बल मिलता है।

उत्तर हड़प्पा में हुए विकास के विस्तृत संदर्भ में देखने पर ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ हड़प्पा संस्कृति के प्रभाव को आंशिक रूप में दर्शाती हैं। तथापि इन संस्कृतियों में अपने विशिष्ट क्षेत्रीय प्रभाव मौजूद हैं और एक दूसरे के साथ व्यापारिक संपर्क तथा सांस्कृतिक संबंध के प्रमाण मौजूद हैं।

धातु का इस्तेमाल करने वाले यह खेतिहर समुदाय दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के आस-पास फैले और प्रथम सहस्राब्दी बी.सी.ई के लगभग अदृश्य हो गए (केवल उत्तर कालीन जोर्वे 700 बी.सी.ई. तक विद्यमान रहा)। इस पतन का एक संभावी कारण (जो कि इन ताम्र पाषाण क्षेत्रों की मिट्टी के नमूनों के विश्लेषण के आधार पर व्यक्त किया गया है) बढ़ती हुई खुश्की तथा मौसम की विपरीत परिस्थितियाँ हैं। गोदावरी, तापी तथा अन्य घाटियों की कई बस्तियाँ निर्जन हो गयीं और पाँच अथवा छः शताब्दियों के अंतराल के बाद पाँचवीं/चौथी शताब्दी बी.सी.ई में शहरीकरण के साथ फिर से बसीं।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही (✓) है अथवा कौन सा गलत (×) है।

   क) पश्चिमी एवं मध्य भारत की ताम्र पाषाण संस्कृतियाँ शहरी बस्तियों पर आधारित थीं। (   )

   ख) खुदाई में मिले कार्बनयुक्त बीज इन (ताम्र पाषाण) लोगों द्वारा उगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की फसलों के द्योतक हैं। (   )

ग) इनामगाँव में मिले दस्तकारों के छोटे आकार के घर सामाजिक विभिन्नता की ओर संकेत करते हैं। ( )

घ) देवी की पूजा के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। ( )

ङ) कुछ क्षेत्रों में दफनाने के लिए कलशों का प्रयोग किया जाता था।

( )

2) मालवा बस्तियों की क्या विशेषताएँ हैं?

....

....

....

....

....

....

3) दायमाबाद के भंडार की विशेषताओं पर पाँच पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

7.8 दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक बस्तियाँ

दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदायों की बस्तियाँ तीसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. में अचानक अस्तित्व में आती हैं। आखेटन संग्रहण अर्थव्यवस्था से खाद्योत्पादन अर्थव्यवस्था की ओर क्रमबद्ध विकास (जैसा कि पश्चिमी एशिया में हुआ) के कोई प्रमाण नहीं मिले। इन क्षेत्रों से मिलने वाले प्रमाण इस दिशा की ओर संकेत करते हैं कि गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्र, पेनेरु तथा कावेरी नदियों के निकट खेती तथा जानवरों के लिए उपयुक्त क्षेत्रों का एक प्रकार से उपनिवेशीकरण हो गया था। अधिकतर स्थानों पर यह बस्तियाँ अर्धअसर कम वर्षा वाले तथा चिकनी मिट्‌टी के बालू वाले क्षेत्रों में फैली हुई थीं। ये क्षेत्र खुश्क खेती तथा चरवाही (गाय, बैल तथा भेड़, बकरी) के लिए उपयुक्त थे। इन बस्तियों की विशिष्टताएँ निम्नलिखित हैं :

i) स्थिर ग्रामीण बस्तियाँ जिनके घर तथा अन्य भवन अर्धस्थायी और स्थायी दोनों ही प्रकार के थे। स्थायी इमारती में सरपत से बने ढांचों पर लिपायी की जाती थी।

ii) पत्थरों की कुल्हाड़ियाँ (भूरी चट्‌टानों जैसे सख्त पत्थरों से बनी) जो कि घिसाई तथा चमका कर बनायी जाती थी। इस तकनीक के कारण आरंभिक कृषक संस्कृतियों के पत्थर के औज़ार के उद्योग को चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग कहा जाता है।
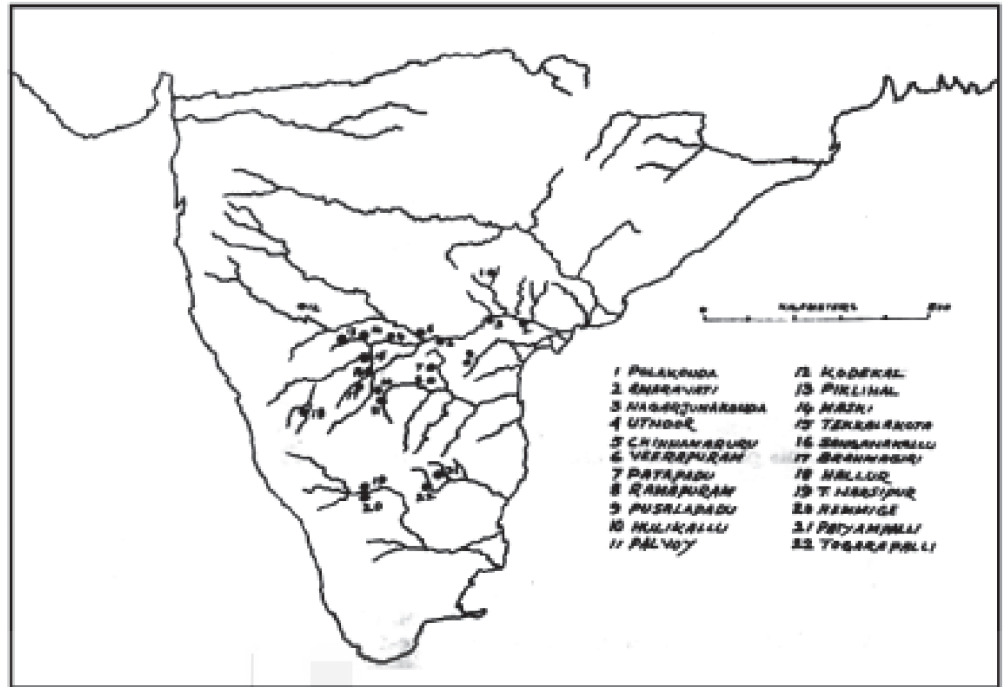
दक्षिण भारत में प्रमुख नवपाषाण तथा ताम्र पाषाण बस्तियाँ। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-11।

iii) चकमकी, सूर्यकांत, सिक्थस्फटिक तथा अकीक जैसे पत्थरों से बनाए गए लम्बे एवं पतले फलक। इन औज़ारों में काटने की धार चमकाई गयी प्रतीत होती है जिससे पता चलता है कि वह औज़ार फसल काटने के लिए प्रयोग किए जाते थे।

iv) आरंभिक चरणों में हाथ से बनाए गए बर्तन तथा बाद के चरणों में चाक पर बनाए जाने वाले बर्तन।

v) ज्वार बाजरे की खेती तथा गाय, बैल एवं भेड़-बकरियों के पालन पर आधारित अर्थव्यवस्था। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि पशुपालन पर आधारित है।

vi) भोजन की आवश्यकताएँ जंगली जानवरों से पूरी की जाती थीं।

7.8.1 सांस्कृतिक चरण

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर हम दक्षिण भारत में आरंभिक कृषक समुदाय के विकास के मोटे तौर पर तीन चरण इंगित कर सकते हैं।

चरण I

इन खेतिहर समुदायों की प्राचीनतम बस्तियाँ प्रथम चरण का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखरों अथवा पहाड़ियों के निकट समतल स्थानों अथवा दो या दो से अधिक पहाड़ियों के बीच की घाटियों में बनी थीं। इस चरण की भौतिक संस्कृति चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों का उद्योग, फलक, फलकयुक्त औज़ार तथा हाथों से गढ़े बर्तनों पर आधारित थी।

बर्तनों में धूसर अथवा सलेटी रंग के मिट्टी के बर्तनों की अधिकता है। चमकाए हुए चिकनी मिट्टी के लाल अथवा धारी वाले बर्तन कम संख्या में हैं। यह बर्तन अक्सर बैंगनी रंग से

अलंकृत किये जाते थे। यह प्राचीनतम बस्तियाँ राख के टीलों से संबंधित थी जिनमें से कुछ में खुदाई की गई हैं। उनमें प्रमुख – उत्तनूर, कूपगल, कोडेकल, पल्लावाय, पिकलीहल, मस्की, और ब्रह्मगिरी। यह स्थल इन कृषक पशुपालक समुदाय की बस्तियों के प्रथम चरण के विशिष्ट उदाहरण हैं। रेडियोकार्बन तिथियों के आधार पर इस चरण का काल 2500-1800 बी.सी.ई रखा जा सकता है।

चरण II

इस चरण में भी प्रथम चरण की बस्तियों की यथास्थिति बनी रहती है। अभी भी बस्तियाँ पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों से जुड़े समतल स्थान पर बसती थीं। तथापि कुछ महत्त्वपूर्ण प्रगति अवश्य दिखायी देती है। बस्तियों में गोलाकार झोंपड़ियाँ लकड़ी के ढांचे पर सरपत लगाकर बनाई जाती थी और उस पर लिपाई होती थी तथा फर्श मिट्टी के गारे से तैयार किया जाता था। नगार्जुनकोंडा (तटीय आंध्र) में मिले कुछ बड़े गड्ढे जो कि गोलाकार, चौकोर, तथा अनियमित हैं अर्धभूतलीय आवासी के रूप में देखे जाते हैं। भूतलीय आवासी पद्धति पय्यमपल्ली एवं वीरापुरम में मिलती है। इस चरण में नए प्रकार के बर्तन बनाने की परंपरा आरंभ होती है जैसे टोटी वाले तथा छिद्रित बर्तन। इस प्रकार के बर्तनों के प्राप्त होने से इस क्षेत्र के उत्तरी क्षेत्रों के साथ संबंध की ओर संकेत मिलता है क्योंकि इसी प्रकार के बर्तन उत्तरी क्षेत्रों में भी प्राप्त हुए हैं। इस चरण के बाह्य तल के खुरदरे करने की तकनीक आरंभिक हड़प्पा युग की तकनीक को अपनाए जाने का प्रतीक है। इस चरण में चमकाई हुई पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों के उद्योग का प्रसार हुआ। ताम्र एवं कांस्य की वस्तुएँ प्रथमतः इसी चरण में मिलती हैं जिनकी संख्या चरण की समाप्ति तक काफी बढ़ जाती है। कुछ स्थल जहाँ चरण द्वितीय की बस्तियाँ प्राप्त हुई हैं वे हैं, पिकलीहल, ब्रह्मागिरि, संगानाकल्लु,, टेक्कलकोटा, हल्लूर तथा टी. नारसीपुर। रेडियो कार्बन तिथियों के अनुसार इस चरण का काल 1800-1500 बी.सी.ई. निश्चित किया जा सकता है।

चरण III

इस चरण की महत्त्वपूर्ण प्रगति ताम्र तथा कांस्य के औज़ारों में वृद्धि है। यह वृद्धि टेक्कलकोटा, हल्लूर, पिकलीहल, संगनाकल्लु, ब्रह्मागिरी तथा पय्यमपल्ली में देखने को मिलती हैं। पत्थर की कुल्हाड़ियों एवं फलकों का उद्योग यथावत बना रहता है। बर्तनों में सख्त पार्श्व वाले सलेटी एवं धूसर बर्तनों का उपयोग काफी सामान्य प्रतीत होता है।

एक अन्य प्रकार के मृद्भाण्ड, जो कि चाक से बनाए गए हैं, बैंगनी रंग से रंगे गए तथा बगैर चमकाए गए रूप में मिलते हैं। यह बर्तन महाराष्ट्र के ताम्र पाषाण युगीन जोर्वे बर्तनों से मिलते-जुलते हैं। इस आधार पर इस चरण का काल 1400-1500 बी.सी.ई. रखा जा सकता है।

यह तीनों चरण दक्षिण भारत में आरम्भिक खेतिहर पशुपालक बस्तियों के उदय एवं विस्तार को दिखाते हैं। चरण प्रथम से चरण तृतीय के बीच व्यवसायों में निरंतरता दिखाई देती है (जैसा कि कई स्थलों पर खुदाई के प्रमाण मिले हैं) और अर्थव्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नजर नहीं आता। अंतर केवल इतना है कि चरण I में ताम्र एवं कांस्य के औज़ार नहीं मिलते। चूंकि चरण द्वितीय तथा चरण तृतीय के व्यवसायों में इन धातु औज़ारों का प्रथमतः प्रयोग किया गया अतः इन्हें नवपाषाण-ताम्र पाषाण युगीन कहा जाता है।

बस्तियों के फैलाव से पता चलता है कि निचली पहाड़ियों के निकट मुख्य जल स्रोतों से हट कर किंतु नदियों से निकट के स्थलों को प्राथमिकता दी जाती थी तथा गर्म काली मिट्टी वाली भूमि लाल तथा काली मिट्टी वाली बलुई उपजाऊ भूमि, बलुई उपजाऊ भूरी भूमि तथा डेल्टा की बाढ़ की मिट्टी वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी। जहाँ यह बस्तियाँ मौजूद

थीं वहाँ आज एक वर्ष में औसत वर्षा दर 600-1200 मिली मीटर है। यह स्थान सामान्यतः दीवारनुमा पहाड़ियों पर प्राकृतिक रूप से उभरे जगहों पर पाए जाते हैं तथा निवास स्थल पहाड़ियों के शिखर पर अथवा पहाड़ियों के एकदम नीचे होता है।

7.8.2 जीवन यापन अर्थव्यवस्था

प्राकृतिक दृष्टि से स्थलों के चुनाव में ऐसे क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाती थी जो ढलान वाले क्षेत्रों में हों जिससे कि सिंचाई की सुविधा स्वतः बनी रहे। तथापि ऐसे भी स्थल पाए गए हैं जहाँ नहर द्वारा सिंचाई करके पानी का उपयोग किया जा सकता था जैसे कृष्णा नदी के तट पर वीरपुरम, तुंगभद्र के तट पर हल्लूर, कावेरी तथा कपिला के *संगम* पर टी. नरसीपुर तथा कृष्णा के निकट बाढ़ की मिट्‌टी वाले क्षेत्र।

उपलब्ध पुरातत्व वानस्पतिक प्रमाणों से पता चलता है कि मुख्य फसलें बाजरा एवं दालें थीं। रामापुरम में हाल में ही बाजरे की विभिन्न किस्में जैसे ज्वार, चना, उड़द, मूंग, फलियाँ तथा जौ पायी गयी हैं।

जानवरों के संदर्भ में नवपाषाण तथा ताम्रपाषाण युग के स्थलों से खुदाई में प्राप्त सभी अवशेष पालतू एवं जंगली दोनों ही प्रकार के जानवरों के अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं।

पालतू जानवरों में गाय, बैल, भैंस, बकरी, सुअर, कुत्ते तथा मुर्गी शामिल हैं। बैल लगभग हर स्थान पर पाए गए हैं, जिससे इन समुदायों की अर्थव्यवस्था में इनके महत्त्व की ओर संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए, वीरापुरम के जानवरों के अवशेष जिन पर गहन अध्ययन किया गया है। यहाँ गाय, बैलों की संख्या कुल पालतू जानवरों की संख्या का 48.68 प्रतिशत है जबकि भेड़/बकरी केवल 5.4 प्रतिशत पाए गए हैं। यदि कृष्णा के दाहिने तट पर, जोकि सिंचाई वाली खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त स्थान है, यह स्थिति थी तो अपेक्षाकृत ऊपरी स्थानों पर बैलों का महत्त्व निश्चित रूप से और अधिक रहा होगा। चूँकि इन समुदायों की अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन (गाय, बैल अधिक तथा भेड़/बकरी कम) पर आधारित थी, इसलिए इस व्यवस्था को खेतिहर पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

इन पालतू जीवों के साथ-साथ इन बस्तियों से जंगली जानवरों के भी अवशेष मिलते हैं। यही जानवर साही, नीलगाय, चिंकारा, काले हिरन, सांबर और चीतल हैं। इससे यह पता चलता है कि भोजन में मांस की आवश्यकताएँ जंगली जानवरों से भी पूरी होती थी।

7.8.3 भौतिक संस्कृति

इस युग की भौतिक संस्कृति बर्तनों, पत्थर के औज़ारों, ताम्र/कांस्य की वस्तुओं तथा अन्य वस्तुओं पर आधारित थी।

i) **बर्तन : चरण I** (2500 से 1800 बी.सी.ई.) के बर्तन मुख्यतः हाथ से बनाए गए सलेटी अथवा मटमैले भूरे होते थे। सलेटी बर्तनों की विशेषता बर्तनों को पकाने के बाद उन पर लाल गेरू से रंगाई करना थी। रुचिकर तथ्य यह है कि इन बर्तनों में से कुछ ऐसे हैं जिनके पाए खोखले तथा वृत्ताकार हैं जो कि हड़प्पा पूर्व आमरी तथा कालीबंगन में मिले बर्तनों की किस्मों से मिलते-जुलते हैं। चरण प्रथम से संबंधित मृद्भाण्ड की एक अन्य किस्म में चमकाए हुए काले एवं लाल बाह्य भाग वाले बर्तन जो बैंगनी रंग से रंगे जाते थे, मिलते हैं।

चरण II (1800-1500 बी.सी.ई.) में चमकाए हुए काली एवं लालधारी वाले बर्तनों का चलन समाप्त हो जाता है और एक अन्य किस्म सामने आती है। यह किस्म छिद्रित तथा

टोटी वाले बर्तनों की है। मृद्भाण्ड तैयार करने में बाहरी भाग को खुरदरा बनाने की तकनीक अपनाई जाती थी जो कि हड़प्पा पूर्व बलूचिस्तान के इलाकों में सामान्य थी।

चरण III (1400-1050 बी.सी.ई.) में जो नए मृद्भाण्ड चलन में आए वे हैं :

अ) सख्त ऊपरी भाग वाले सलेटी एवं धूसर मृद्भाण्ड।

ब) चाक से बनाए गए बैंगनी रंग के बगैर चमकाए मृद्भाण्ड।

यह दूसरी किस्म के बर्तन महाराष्ट्र के जोर्वे किस्म से मिलते-जुलते हैं जो कि दक्षिणी दक्कन तथा उत्तरी दक्कन के बीच सांस्कृतिक संबंधों की ओर संकेत करता है। बर्तनों की किस्मों में विभिन्न प्रकार के प्याले (उड़ेलने के लिए विशिष्ट मुख वाले प्याले, टोंटी वाले प्याले, दस्ता लगे हुए तथा खोखले पाए वाले प्याले) जार, स्टैण्ड युक्त डोंगे तथा छिद्रित एवं टोंटी वाले बर्तन मिलते हैं।

ii) **पत्थर के औज़ार तथा हड्डियों की शिल्पकृति** : पत्थर के फलकों के उद्योग में लम्बे पतले, समानांतर दिशा वाले फलक, जिनमें से कुछ अतिरिक्त शिल्प कार्य के द्वारा अन्य रूप ले लेते थे, मिले हैं। अतिरिक्त शिल्प वाले इन रूपों में चांदनुमा फलक, 90 अंश के दो कोण बनाते फलक, त्रिकोणीय फलक तथा आरी वाले फलक शामिल हैं। सामानांतर दिशा वाले कुछ फलकों में काटने की धार पाई गई है। जिसका कारण यह है कि इन फलकों का फसल की कटाई में इस्तेमाल किया जाता था। कई पत्थर के औज़ारों पर पॉलिश की गई प्रतीत होती है। पॉलिश की गयी अथवा पत्थर की कुल्हाड़ी के उद्योग की सबसे सामान्य किस्म त्रिकोणीय कुल्हाड़ी है जिसका एक सिरा अंडाकार तथा दूसरा नुकीला है। अन्य किस्में हैं – बसुला, फाल, छेनी, रंदा तथा नुकीले औज़ार (जिन्हें कुदाल कहा गया है)

इनके अतिरिक्त पत्थर के अन्य औज़ार हैं – हथौड़े, फेंकने के पत्थर, पीसने वाले पत्थर, घिसाई के पत्थर तथा हस्तचलित चक्की। हस्तचलित चक्की खाद्य अनाज तैयार करने के काम आती थी।

हड्डियों के शिल्पकृति के शिल्पयुक्त हड्डियाँ, सींगें तथा प्रायः शाखायुक्त सींगें एवं सीप मिली हैं। सबसे सामान्य पुरावशेष नुकीले छेनी के उपकरणों का है, एक स्थान पर (पल्लावॉय) बैलों के कंधे की हड्डी को घिसकर तैयार की गयी हड्डी की कुल्हाड़ी भी प्राप्त हुई है।

iii) **धातु की वस्तुएँ**: जैसा कि पीछे देखा गया है, ताम्र एवं कांस्य औज़ार चरण द्वितीय में प्रकट होते हैं और चरण तृतीय तक उनकी संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हो जाती है। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सीधी कुल्हाड़ियों तथा छेनियाँ हैं जो मालवा एवं महाराष्ट्र की पद्धति का अवशेष हैं। अन्य रुचिकर उपलब्धि कल्लूर में मिली शृंगिका तलवार है जिस पर ताम्र भंडारों के संदर्भ में चर्चा की गयी है।

विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुई ताम्र/कांस्य की अन्य वस्तुएँ चूड़ियाँ, लच्छेदार कान की बालियाँ तथा सुरमें की सलाईयाँ हैं, हल्लूर से एक मछली पकड़ने का कांटा भी मिला है। टेक्कलकोटा में एक लच्छेदार कान की सोने की बाली भी मिली है।
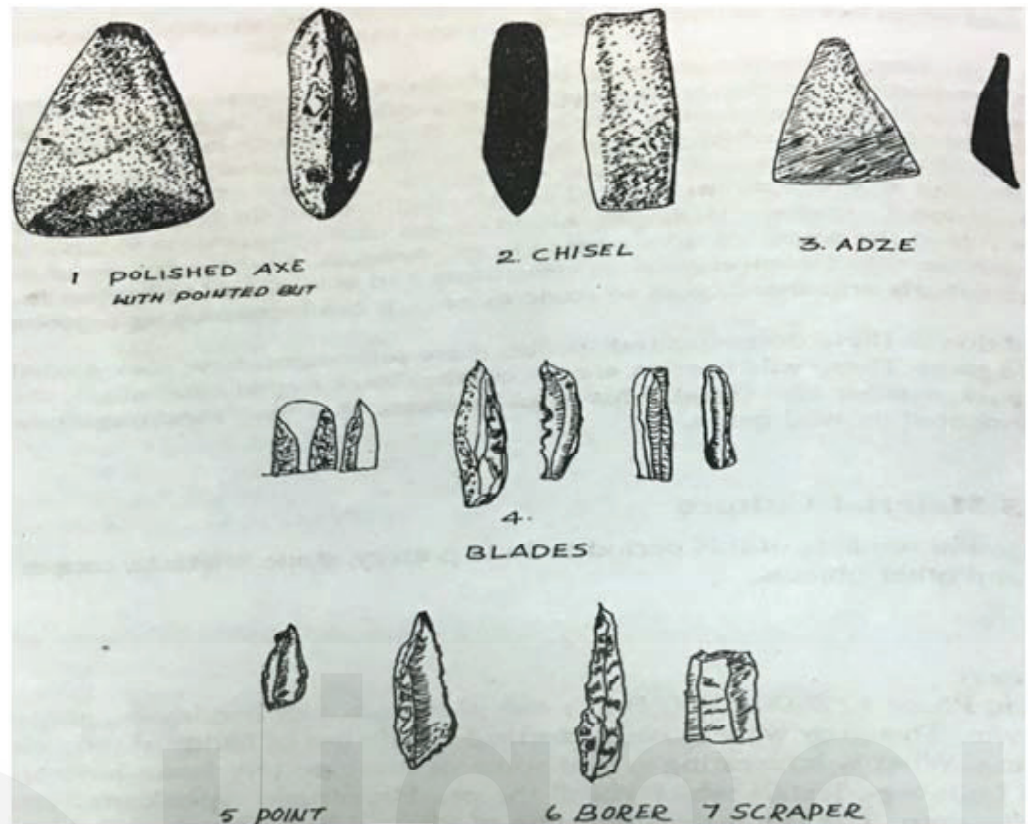
दक्षिण भारत में नव पाषाण युगीन पॉलिश किए गए पत्थर के औज़ारः 1. नुकीले दस्ते वाली पॉलिशदार कुल्हाड़ी, 2. छेनी, 3. बसूला, 4. ब्लेड, 5. नुकीले औज़ार, 6. बेधक, 7. खुरचनी।

स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-11।

iv) **मनके एवं मिट्टी की प्रतिमाएँ :** कुछ स्थानों पर अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिए, नागार्जुनकोंडा में लुगदी एवं स्टीटाइट पत्थर की चपटी गोलाकार मनकों की मालाएँ, मिट्टी की प्रतिमाएँ, जो कि हड़प्पा के उभरी हुई पीठ वाले बैलों की हैं पिकलीहल जैसे कुछ स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

इन्हें यदि कूपगल, मस्की, पिकलीहल आदि बस्तियों से प्राप्त बैलों के चित्रों के संदर्भ में देखा जाए तो इन संस्कृतियों में बैल के महत्त्व की ओर संकेत मिलता है। इन चित्रों में बैलों को समूह में प्रसन्न मुद्रा में दर्शाया गया है तथा उभरी पीठ वाले सांड एवं लम्बे सींगों वाले बैलों को चित्रित किया गया है। कुछ बैलों की पीठें अलंकृत की गयी दर्शायी गयी हैं।

7.8.4 दाह संस्कार के तरीके

सामान्यतः शव घर के अन्दर दफनाए जाते थे, वयस्क दाह संस्कार में और शिशु कलशों में दफनाए जाते थे। टेक्कलकोटा में खुदाई से (चरण III में) शवों को विभिन्न बर्तन के साथ दफनाने के प्रमाण मिले हैं जो कि महाराष्ट्र में जोर्वे दाह संस्कार के अनुरूप था। नागार्जुनकोंडा में नवपाषाण युगीन कब्रिस्तान की खोज की गयी है। कब्रों में शवों के साथ टोटी वाले बर्तनों सहित कुछ अन्य बर्तन तथा कुछ स्थानों पर पत्थर के फलक एवं कुल्हाड़ियाँ भी दफनाई जाती थीं।

7.9 दक्षिण भारत में सतह पर मिलने वाली नवपाषाण संस्कृति के अवशेष

बस्तियों के अतिरिक्त पॉलिश की गयी पत्थर की कुल्हाड़ियाँ जंगली इलाकों के निर्जन स्थानों पर जहाँ लोग कभी-कभी इकट्ठे होते होंगे मिली हैं। दक्षिण भारत में इस प्रकार के कई स्थान

मिले हैं, बहुधा ऐसे स्थानों के निकट बस्तियाँ भी होती थी। यह वस्तुस्थिति किस तथ्य की ओर संकेत करती हैं? संभवतः यह स्थान गतिविधि केंद्रों के रूप में प्रयोग होते होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि औज़ारों (जैसी पेड़ काटने की कुल्हाड़ियों) के इस्तेमाल को देखते हुए यह चयनित स्थल पहाड़ी जंगली क्षेत्रों को साफ करके खुश्क खेती योग्य बनाने के लिए चुने गए होंगे।

तमिलनाडु के जंगली पहाड़ी क्षेत्र जैसे – स्लेवॉरी, जवड़ी तथा तीरूमलाई पहाड़ी क्षेत्रों में इस प्रकार की नवपाषाण युगीन पत्थर की कुल्हाड़ियाँ पाया जाना सामान्य हैं। पश्चिमी तटों के दक्षिणी विस्तार के जंगली ढलानों से लेकर निचले तमिल मैदानों तक नवपाषाण युगीन कुल्हाड़ियों का समानरूप से पाया जाना, झूम खेती (shifting cultivation) के तरीकों जो कि अभी कुछ समय पूर्व तक पश्चिमी तटों के दक्षिणी भाग में प्रचलित थे, के प्रचलन का द्योतक है।

दक्षिण भारतीय नवपाषाण युग में भी राख के टीले मिलते हैं जो कि भीमा-कृष्णा तुंगभद्र दोआब के अर्ध ऊसर भागों तक फैले हुए हैं। 60 से अधिक राख के टीले खोजे जा चुके हैं और इनमें से कुछ काफी बड़े हैं। पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, राख के यह टीले नवपाषाण युगीन समुदायों द्वारा गाय के गोबर को जलाने के कारण बने। उनके कथनानुसार, ये वे स्थान थे जो गाय बैलों के बाड़ों के रूप में प्रयोग किए जाते थे जहाँ गोबर इकट्ठा किया जाता था। रेमंड अलचिन ने उत्तनूर (राख का एक टीला) की खुदाई से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह परिणाम निकाला कि राख के टीले नवपाषाण युगीन लोगों के जानवरों के जंगली पड़ाव थे तथा गोबर का जलाया जाना संभवतः कर्मकांडी महत्त्व रखता था।

जैसा कि पहले कहा गया है कि दक्षिण भारत में शिकारी संग्रहकर्ता अर्थव्यवस्था से ग्रामीण खेतिहर समुदाय की ओर विकास को प्रमाणित करने के लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। जैसा कि हमने देखा कि इन क्षेत्रों में तीसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के लगभग मध्य में अचानक ग्रामीण बस्तियाँ अस्तित्व में आ गयीं। यह खेतिहर बस्तियाँ कैसे अस्तित्व में आयी? कुछ पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार, धूसर मृद्भाण्ड उत्तरी-पूर्वी ईरान में तुरंग तेप तथा शाह तेप स्थलों व हिसार पर प्राप्त हुए मृद्भाण्ड से मिलते-जुलते हैं और लाल-एवं-काले चित्रित बर्तन बलूचिस्तान तथा हड़प्पा पद्धति से पूर्व हड़प्पा बर्तनों के समरूप हैं। इन समानताओं तथा कुछ अन्य विशिष्टताओं के आधार पर इन पुरातत्व शास्त्रियों ने माना है कि दक्षिण भारतीय नवपाषाण युगीन संस्कृतियों का संभवतः कुछ भारत ईरान सीमांती क्षेत्रों के साथ संबंध रहा होगा।

बोध प्रश्न 5

1) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़ें और उनके सामने सही (✓) अथवा गलत (x) का निशान लगाएँ।

   क) दक्षिण भारत की भौतिक संस्कृति को विभिन्न चरणों में विभाजित करना संभव नहीं है। ( )

   ख) पालतू जानवरों में गाय, बैल दक्षिण भारतीय आरंभिक कृषक समुदायों की अर्थव्यवस्था में काफी महत्त्वपूर्ण थे। ( )

   ग) शिशु तथा वयस्कों दोनों के दाह संस्कार के तरीके एक जैसे थे। ( )

   घ) किसी की खुदाई से हड्डी निर्मित उपकरणों के पाए जाने के प्रमाण नहीं मिले हैं। ( )

2) दक्षिण भारत के आरंभिक कृषक समुदायों के सांस्कृतिक चरणों पर पाँच पंक्तियाँ लिखें।

   ....

   ....

....

....

....

3) क्या दक्षिण भारतीय कृषक समुदाय की अर्थव्यवस्था को खेतिहर-पशुपालक अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है?

....

....

....

....

....

4) विभिन्न स्थानों पर मिले राख के टीले से क्या संकेत मिलते हैं? पाँच पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

7.10 दक्षिण भारत में लौह युग के अवशेष

दक्षिणी भारत में लोहे का प्रयोग लगभग 1100 बी.सी.ई. के आस-पास आरंभ हुआ। समय का यह अनुमान हल्लूर में प्राप्त वस्तुओं के रेडियो कार्बन विश्लेषण के आधार पर लगाया गया हैं तथापि कुछ अन्य स्थानों पर, जिनकी पीछे चर्चा की जा चुकी है, नवपाषाण तथा ताम्र पाषाण युगीन संस्कृतियाँ लौह युग तक अपना अस्तित्व बनाए रहती है। उत्तरी दक्कन (महाराष्ट्र) में भी कई ताम्र पाषाण युगीन बस्तियाँ लौह युग में भी बनी रही। दक्षिणी दक्कन के ब्रह्मागिरी, पिकलीहल, संगनाकल्लु, मस्की, हल्लूर, पय्यमपल्ली आदि में भी ऐसी ही स्थिति थी।

दक्षिण भारत के महत्त्वपूर्ण लौह युगीन स्थल। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-11।
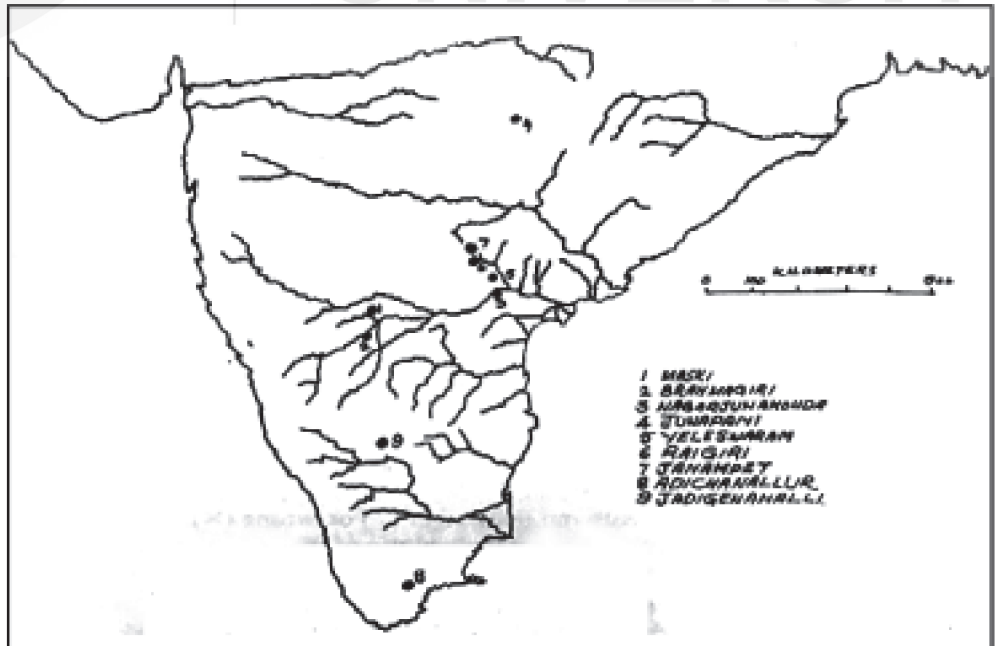
दक्षिण भारत में लौह युग का प्राचीनतम चरण पिकलीहल तथा हल्लूर की खुदाई और संभवतः ब्रह्मगिरी के शव दफनाने व गड्ढों के आधार पर निश्चित किया गया है। इन शवाधान के गड्ढों में पहली बार लोहे की वस्तुएँ काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड तथा फीके रगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड प्राप्त हुए। कुछ हद तक फीके रंगे भूरे एवं लाल मृद्भाण्ड जोर्वे मृद्भाण्डों के समरूप हैं। इसी प्रकार के प्रमाण टेकवाड़ा (महाराष्ट्र) से भी प्राप्त हुए हैं। कुछ बस्तियों में पत्थर की कुल्हाड़ियाँ एवं फलक प्रयोग में बने रहे हैं।

इसके बाद के चरण की विशेषता घिसकर चमकाए बगैर चित्रित काले एवं लाल मृद्भाण्डों तथा लाल एवं काले मृद्भाण्डों की बहुतायतता है।

7.10.1 महापाषाण युगीन संस्कृतियाँ

दक्षिण भारत में लौह युग के विषय में अधिकांश जानकारी महापाषाण कालीन कब्रों की खुदाई से मिलती है। महापाषाण से तात्पर्य उस काल से है, जब मृतकों को आबादी क्षेत्र से दूर कब्रिस्तानों में पत्थरों के बीच दफनाया जाता था। दक्षिण भारत में इस प्रकार के दफनाने की परंपरा लौह युग के साथ आरम्भ हुई। महापाषाण कालीन दफन करने के इस तरह की जानकारी बड़ी संख्या में निम्न स्थानों जैसे – महाराष्ट्र (नागपुर के पास), कर्नाटक (मस्की), आंध्र प्रदेश (नागार्जुनकोंडा), तमिलनाडु (आदिचनाल्लुर) तथा केरल में पायी गयी है।

महापाषाण कालीन शवों के दफनाने में कई तरीके देखने में आते हैं। कभी-कभी मृतकों की हड्डियाँ बड़े कलशों में जमा करके गड्ढे में दफनाई जाती थीं। इस गड्ढे के ऊपर पत्थरों से घेरा बनाया जाता था या केवल एक पत्थर से ढक दिया जाता था कभी-कभी दोनों ही चीजें की जाती थीं, कलश और गड्ढों में कुछ वस्तुएँ भी रखी जाती थीं। कुछ जगह शवों को पकाई हुई मिट्टी की शवपेटिकाओं में भी रखा गया है। कुछ ऐसे भी उदाहरण देखने में आते हैं, जहाँ मृतक दफनाने के गड्ढे पत्थरों से बनाये गये हैं। ग्रेनाइट पत्थर की पट्टिकाओं से बने ताबूतनुमा कब्रों में भी शवों को दफनाने के उदाहरण मिलते हैं। केरल में पत्थर की चट्टानों में शव दफनाने के कुछ उदाहरण मिले हैं। कुछ जगह पत्थर को सीधा गाढ़ कर आयताकार या वर्गाकार छेदों में भी शव दफनाये गये हैं।
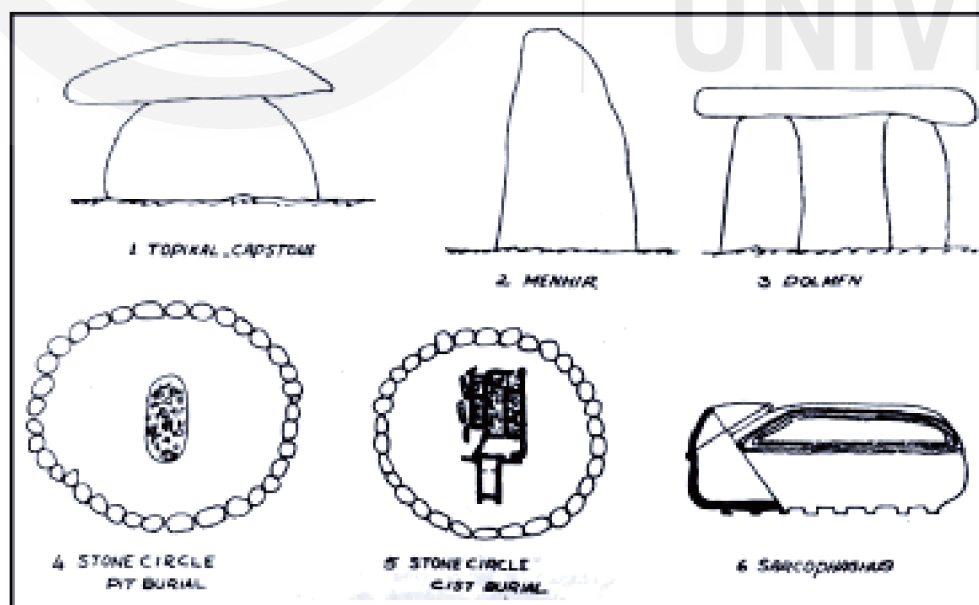
दक्षिण भारत में महापाषाणीय दफ़नाने के तरीके। स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-11।

7.10.2 महापाषाण युगीन संस्कृतियों की उत्पत्ति

महापाषाण कालीन संस्कृति का प्रारम्भ दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के अंत और प्रथम सहस्राब्दी बी.सी.ई. के प्रारम्भ में हुआ। बाद की कई शताब्दियों तक यह परम्परा जारी रही। कुछ विद्वानों का मत है कि महापाषाण युग के लोग एक ही सांस्कृतिक समूह के नहीं थे तथा दक्षिण भारतीय कब्रों पर कई क्षेत्रों के प्रभाव के कारण यह कब्रें कई संस्कृतियों का मिश्रण प्रतीत होती हैं। प्रथमतः महापाषाण युग के कुछ शवाधान मध्य एशिया, ईरान अथवा कॉकस्स क्षेत्र के जैसे हैं और इंडो-यूरोपीय भाषाएँ बोलने वाले इन क्षेत्रों के लोगों ने ऐसी परम्परा की शुरुआत की होगी। इसके अतिरिक्त कुछ शवाधानों में दक्कन के स्थानीय नवपाषाण युगीन-ताम्र पाषाण युगीन शवाधान के तरीके अपनाये गए प्रतीत होते हैं।

कुछ विद्वानों ने महापाषाण स्थलों को आर्यों अथवा द्रविड़ों के अवशेषों के रूप में माना है। परन्तु इस विचार को स्वीकार करना सम्भव नहीं है, यह तथ्य लगभग निश्चित है कि यह कब्र स्थल एक ऐसी स्थिति में अस्तित्व में आये जब उत्तर व दक्षिण भारत के विभिन्न समुदायों में मेल-जोल की प्रक्रिया काफी अधिक थी। जैसी कि पहले चर्चा की गई कि इन क्षेत्रों में खेतिहर पशुपालक समुदाय लोहे के प्रयोग से काफी पहले से मौजूद थे। इन समुदायों की मृतकों को दफनाने की बहुत सी रस्में लौह युग तक जारी रहीं, मिट्टी के पात्रों में शवों को दफनाने की परम्परा ताम्र पाषाण युगीन इनामगाँव में प्रचलित थी। महापाषाणीय दफनाने के बहुत से तरीके सम्भवतया स्थानीय सांस्कृतिक परम्पराओं से लिए गये थे। कब्रों से प्राप्त बहुत सी वस्तुएँ भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित क्षेत्रों के साथ संबंधों की ओर संकेत करती हैं। कुछ विशेष प्रकार के बर्तन जैसे कि पायों वाले प्याले जो इन कब्रों में पाये गये हैं बहुत कुछ उन प्यालों की तरह है जो भारत के उत्तर-पश्चिम में और ईरान में इससे भी पुरानी कब्रों में मिले हैं। इसी तरह घोड़ों की हड्डियाँ और घोड़ों के प्रयोग से संबंधित अन्य वस्तुओं का यहाँ मिलना इस ओर संकेत करता है कि घुड़सवारी करने वाले लोग इस क्षेत्र में पहुँच गये थे। निश्चित ही घोड़े मध्य एशिया से लाये गये होंगे क्योंकि भारत में जंगली घोड़े नहीं पाये जाते थे। घोड़ों को दफनाने के उदाहरण, नागपुर के निकट जूनापानी से प्राप्त होता है, मस्की और पिकलीहल से प्राप्त शिला चित्रों में बहुत से घुड़सवार धातु की कुल्हाड़ियाँ ले जाते दिखाए गए हैं। यह सब तथ्य इन क्षेत्रों को भारत के उत्तर-पश्चिम में रहने वाले समुदायों के साथ संबंधों पर प्रकाश डालते हैं। अतः लौह युग के मृतकों के अंतिम संस्कार के तरीके आंतरिक और विदेशी रस्मों का मिश्रण दर्शाते हैं।

7.10.3 भौतिक संस्कृति

पूर्व की भांति ही लौह की भौतिक संस्कृति लोहे तथा अन्य धातु की वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट किस्म के बर्तनों के आधार पर रेखांकित होती है।

1) **बर्तन** : कब्रों की खुदाई से प्राप्त बर्तन काले-एवं-लाल मृद्भाण्ड हैं। विशिष्ट बर्तनों में छिछली तश्तरी, प्याले, गहरे प्याले जो कि गोल आधार वाले तथा कोण के आकार वाले हैं जिनके ऊपर दस्ता अथवा घुंडी वाले ढक्कन थे, बर्तन रखने के गोलाकार स्टैण्ड तथा गोल आधार वाले पानी के मटके हैं।

2) **लोहे तथा अन्य धातुओं की वस्तुएँ** : महापाषाण युग के सभी स्थलों, विदर्भ (मध्य भारत) में नागपुर के समीप जूनापानी से लेकर दक्षिण में आदिचानालूर तक लगभग 1500 कि.मी. के क्षेत्र में लोहे की वस्तुएँ समान रूप से पायी गयी हैं। लोहे की विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ : चपटी लोहे की कुल्हाड़ियाँ जिसमें पकड़ने के लिए लोहे का दस्ता होता था, उभरे हुए चपटे किनारे के विभिन्न फावड़े, बेलचे, खुरची, कुदालें, हंसिए, फरसे, फान, सब्बल, बरछे, छुरे, छेनी, अथवा बसुले, तिपाइयाँ बर्तन के स्टैंड, तश्तरियाँ, लटकाने

वाले लैम्प, कटारें, तलवारें (जिनमें से कुछ के दस्तों में कांस्य के आभूषण जड़े हैं) तीर के फल तथा बरछे के फल जिनके पात्र खोखले हैं, विशेष अवसरों के लिए सीप जड़ी कुल्हाड़ियाँ, लोहे के त्रिशूल आदि हैं। इन औज़ारों के अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार की वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। जैसे घोड़े के सामान जिनमें लगाम का लोहे का वह हिस्सा जो घोड़े के मुंह में होता है तथा फंदे के आकार वाले किनारों वाली दो छड़ें (जो कि जूनापानी से प्राप्त हुई है), फंदे के आकार वाली नाक तथा मुंह पर लगाने वाली छड़ें (जो कि सनूर से प्राप्त हुई है) आदि। धातु की अन्य वस्तुओं में सबसे अधिक संख्या में ताम्र एवं कांस्य की घंटियाँ पाई गयी हैं जो कि घोड़े अथवा गाय, बैलों की घंटियों के रूप में इस्तेमाल की जाती रही होंगी, सोने अथवा अर्ध बहुमूल्य पत्थरों के मनके भी इन स्थानों से मिले हैं।

7.10.4 जीवन-यापन व्यवस्था

खुदाई में लौह युग की बस्तियाँ काफी कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। अतः दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था की स्पष्ट स्थिति का अनुमान लगाना कठिन है। कुछ स्थानों पर भेड़/बकरी तथा गाय, बैलों के अवशेष तथा बाजरा और दालें प्राप्त हुई हैं।

कब्रों की खुदाई से प्राप्त कब्रों में रखी जाने वाली लोहे की वस्तुओं की समरूपता इन वस्तुओं की विशेषता है। नागपुर के निकट जूनापानी से लेकर दक्षिण के आदिचानालूर तक एक ही प्रकार की लोहे की वस्तुओं का पाया जाना लोहे का काम करने वाले कारीगरों के काफी हद तक संगठित होने की संभावना को सिद्ध करता है। एक विद्वान के अनुसार, तमिलनाडु एवं कर्नाटक में यह मध्यपाषाण युगीन लोग कच्चे लोहे की खानों का पता लगाने तथा विभिन्न लोहे की वस्तुएँ तैयार करने में दक्ष थे, वे अन्य वस्तुओं के साथ लोहे की चीजों का व्यापार भी करते थे तथा धीरे-धीरे सामुदायिक जीवन के रूप में गाँवों में बस गए। लेकिन एक अन्य विद्वान का मत है कि यह समूह खानाबदोश पशुपालक समूह थे जो कि भेड़/बकरी पालने पर अधिक निर्भर थे।
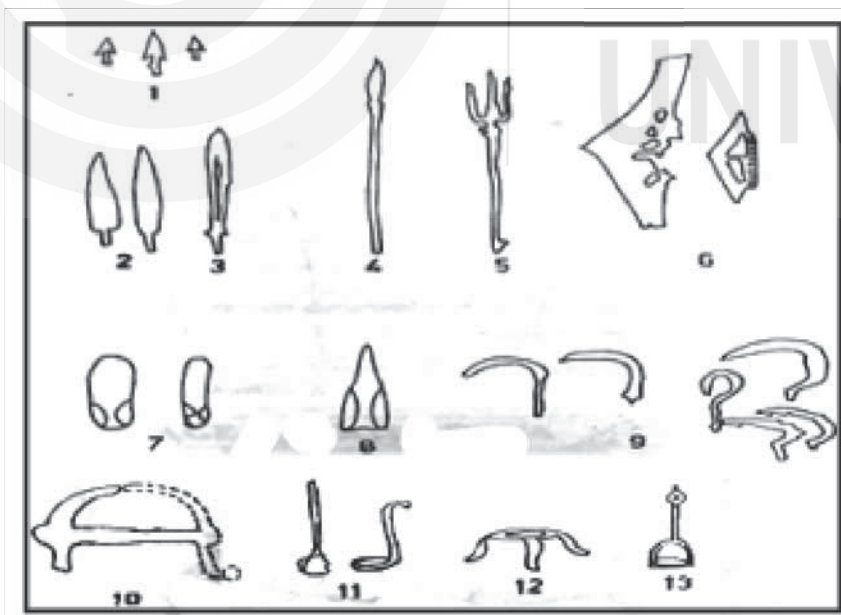
दक्षिण भारतीय महापाषाणीय कब्रों से प्राप्त लोहे के औज़ार।

स्रोत : ई.एच.आई.-02, खंड-3, इकाई-11।

महापाषाणीय स्थलों के पास जो बस्तियाँ पाई गई हैं उनमें पुरातात्विक अवशेष बहुत कम संख्या में मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ के लोग किसी एक स्थान पर बहुत कम

समय तक रहते थे। ऐसा भी संभव है कि लोहे की जानकारी होने के बाद यह लोग नये क्षेत्रों में बस गये। इस प्रकार यहाँ कुछ लोग तो घुमक्कड़ पशुपालकों का जीवन व्यतीत करते रहे जबकि कुछ लोग नये क्षेत्रों में बसकर स्थायी जीवन पद्धति पर चलने लगे। जहाँ भी नई बस्तियाँ पुरानी बस्तियों की परम्परा में बसी, लोग अपने पुराने तरीकों से ही रहते रहे। लोहे के औज़ारों के प्रयोग से यह लोग ग्रेनाइट पत्थर का उपयोग भी कब्रों के लिए कर सके। यही वह खेतिहर पशुपालक समुदाय है जिन्होंने सामान्य युग की प्रारभिक शताब्दियों के ऐतिहासिक चरण में प्रवेश किया। इनका प्रारंभिक विवरण हमें *संगम* साहित्य में मिलता था। कुछ कब्रों में रोमन सिक्के मिले हैं जिनसे ऐसा आभास होता है कि यह एक बड़े क्षेत्र में व्यापारिक गतिविधियों में भाग ले रहे थे।

बोध प्रश्न 6

1) दक्षिण भारत में लौह युग के विषय में लिखें।

....

....

....

....

....

2) दक्षिण भारतीय महापाषाण युग के निर्माताओं की अर्थव्यवस्था पर पाँच पंक्तियाँ लिखें।

....

....

....

....

....

7.11 सारांश

लगभग 2000 बी.सी.ई तक भारत के विभिन्न भागों में खेतिहर समुदाय स्थापित हो चुके थे। यह खेतिहर समुदाय ताम्बे और पत्थर से बने औज़ारों का प्रयोग करते थे। उत्तर भारत में यह समुदाय विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। विशेषकर गेरुए रंग वाले मिट्टी के बर्तन (ओसीपी)। विभिन्न प्रकार के तांबे के औज़ार भी प्राप्त हुए हैं। मध्य भारत और महाराष्ट्र के काली मिट्टी वाले क्षेत्रों की खुदाई से कायथा, मालवा और जोर्वे संस्कृतियों की उपस्थिति का पता चलता है। लगभग 750 बी.सी.ई. तक बहुत से खेतिहर समुदायों ने लोहे का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। ताम्र पाषाण समुदायों में मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग में भी बहुत भिन्नता दिखाई देती है। लौह युग के चित्रित धूसर वाले मृद्भाण्ड तथा उत्तर काली पॉलिश किए मृद्भाण्ड बहुत विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग किये जाते थे। उत्तरी काले पॉलिश किए मृद्भाण्ड लगभग पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में प्रयोग किये जाते थे इस काल में विभिन्न समुदायों के बीच आदान-प्रदान और एक दूसरे पर प्रभाव डालने की प्रक्रिया बढ़ी। इसी काल में शहरी सभ्यता का भी प्रारम्भ हुआ। विभिन्न संस्कृतियों के खुदाई स्थलों से प्राप्त वस्तुएँ बस्तियों की बनावट, व्यापारिक संबंध, औज़ारों की किस्मों, आभूषणों और धार्मिक विश्वासों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं।

तीसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. में दक्षिण भारत में खेतिहर समुदायों का उदय हुआ। इसी में बड़ी संख्या में घुमक्कड़ पशुपालक समुदायों का भी उदय हुआ। खेतिहर वर्ग अधिकांशतयाः चना, जौ और कई किस्मों का बाजरा उगाया करते थे, पशुपालक समुदाय भेड़, बकरी तथा गाय, बैल आदि पालते थे। लगभग दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के प्रारम्भिक काल में इन समुदायों ने तांबे और कांस्य के औज़ारों का प्रयोग आरंभ किया। इन लोगों के कांस्य के बहुत से औज़ार उत्तर पश्चिमी भारत के औज़ारों से मिलते हैं। दूसरी सहस्राब्दी बी.सी.ई. के अंत तक इस क्षेत्र में लोहे का प्रयोग भी होने लगा। इसी कारण में महापाषाणीय दफनाने के तरीके भी शुरू हुए। इसने बस्तियों की योजना को भी प्रभावित किया क्योंकि इन समुदायों ने अपने मृतकों को बस्तियों के अलग हट कर दफन करना शुरू किया। परन्तु खेतिहर उन्हीं फसलों को उगाते रहे और पशुपालक भी पुरानी जीवन पद्धति पर चलते रहे। लेखन की परम्परा शुरू होने पर धीरे-धीरे विकास के इस चरण का विलय दक्षिण भारत के इतिहास में हो गया।

7.12 शब्दावली

पुरातात्विक वनस्पति : पुरातात्विक खुदाई से प्राप्त पेड़-पौधों के अवशेषों का अध्ययन।

अर्थशास्त्र : एक ऐतिहासिक ग्रंथ जो परंपरागत रूप से चन्द्रगुप्त के (चौथी-तीसरी शती बी.सी.ई.) मंत्री कौटिल्य द्वारा रचित माना जाता है।

ब्रह्मी लिपि : भारत की प्राचीनतम ज्ञात लिपि। सम्राट अशोक के शिलालेख अधिकांशतया इसी लिपि में लिखे गये हैं। भारत की अधिकांश आधुनिक लिपियाँ जैसे – तमिल, देवनागरी आदि, इसी से ली गई हैं।

ताम्र-पाषाण युगीन समूह : वह समूह अथवा समुदाय जो तांबे और पत्थर के औज़ारों का प्रयोग करते थे।

***जातक* कथाएँ** : गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित कथाएँ।

पंचमार्कड सिक्के (आहत सिक्के) : तांबे और चांदी के सिक्के जो पाँचवीं, छठी शताब्दी बी.सी.ई. से प्रयोग हुए। यह भारत के प्राचीनतम् सिक्के हैं।

ताप संदीप्ति परीक्षा : मिट्टी के बर्तनों के निर्माण के काल को ज्ञात करने की एक वैज्ञानिक पद्यति।

मृद्भाण्ड : मिट्टी के बर्तन।

शुष्क कृषि : खेती की ऐसी पद्धति जिनमें ऊपरी भूमि की हमेशा गुड़ाई की जाती है, जिसमें थोड़ी वर्षा के पानी का लाभ पौधों को मिलता है और पानी को जल्दी भाप बनने से रोकता है, शुष्क देशों में यह पद्धति अधिक अपनाई जाती है।

जोर्वे बर्तन : द्वितीय सहस्राब्दी बी.सी.ई. के लाल चित्रित मिट्टी के बर्तन जो सबसे पहले महाराष्ट्र में जोर्वे नामक स्थान पर मिले।

आर्य : वह समुदाय जो इंडो यूरोपी (Indo European) भाषाएँ बोलते थे और जिन्होंने *वेदों* की संरचना की।

द्रविण : वह लोग जो दक्षिण की भाषाएँ बोलते थे।

7.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर के बर्तनों के प्रकार, इनकी विशेषताएँ, भवनों की बनावट, फसल और इस संस्कृति का प्रभाव क्षेत्र सम्मिलित होना चाहिए। देखें भाग 7.2

2) क) × ख) × ग) × (घ) ✓

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहिए। मिट्टी के बर्तनों का रंग, इनको बनाने की पद्धति, तथा विभिन्न क्षेत्रों के काले-व-लाल रंग के बर्तनों के अंतर जैसे कि दोआब के काले-व-लाल रंग के बर्तन सादे हैं जबकि गिलुन्द तथा अहार के काले-व-लाल चित्रित हुये हैं। देखें भाग 7.4।

2) यहाँ अर्ध-बहुमूल्य रत्नों के पाये जाने का उदाहरण ले सकते हैं। चूंकि यह रत्न यहाँ नहीं पाये जाते, अतः व्यापार द्वारा आये गये होंगे। देखें भाग 7.5।

बोध प्रश्न 3

1) उत्तरी काली पॉलिश किए बर्तनों की संस्कृति को यह नाम उन विशिष्ट बर्तनों के कारण मिला जो इस काल से जुड़े हुये हैं। देखें भाग 7.6

2) क) × ख) × ग) ✓ घ) ×

बोध प्रश्न 4

1) क) × ख) ✓ ग) ✓ घ) × घ) ✓

2) ये काफी बड़ी बस्तियाँ हैं जो योजनाबद्ध तरीके से बनायी गयी हैं। आप इनकी योजना और अन्य विशेषताएँ जैसे – अण्डाकार अग्निकाण्ड तथा जमीन के नीचे बनी अनाज की खत्तियों आदि की चर्चा करें। देखें उपभाग 7.7.3।

3) इसकी खोज संयोगवश हुई। यहाँ प्राप्त वस्तुओं और उनकी विशेषताओं के बारे में बताएँ। देखें उपभाग 7.7.4।

बोध प्रश्न 5

1) क) × ख) ✓ ग) × घ) ×

2) देखें उपभाग 7.8.1।

3) चूंकि अर्थव्यवस्था खेती तथा पशुपालन दोनों पर ही आधारित थी, अतः इसे पशुपालन अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है।

4) आपके उत्तर में निम्न तथ्य होने चाहिए :

ये टीले मूलतः बैलों के बाड़े थे जहाँ गोबर इकट्ठा होता था; टीले गोबर जलाए जाने के कारण बने तथा गोबर जलना संभवतः नवपाषाण युगीन समुदायों के कर्मकांड का एक अंग था। भाग 7.9 भी देखें।

बोध प्रश्न 6

1) देखें उपभाग 7.10.1 के चरण को दूसरे चरण से भिन्न करने वाली विशेषताएँ लिखें।

2) देखें उपभाग 7.10.3।

7.14 संदर्भ ग्रंथ

दियो, एस. बी. (1973). *प्रॉब्लम ऑफ साऊथ इंडियन मैगालिथिस्.* धारवाड़

धवलिकर, एम. के. (1988). *द् फर्स्ट फार्मर्स ऑफ द डेक्कन.* पुणे।

गुरुराजा राऊ, बी. के. (1981). *मेगालिथिक कल्चर इन साऊथ इंडिया.* प्रसारंगा।

केनेडी, के. ऐ. आर. एण्ड पौशेल, जी. एल. (ऐडिटेड) (1984). *स्टडीज इन द आर्कियोलॉजी एण्ड पैलियोऐन्थ्रोपोलोजी ऑफ साऊथ एशिया.* नई दिल्ली।

मूर्ती, यू. एस. (1994). *मेगालिथिक कल्चर ऑफ साऊथ इंडिया.* वाराणसी।